जिनेन्द्र अर्चना

सम्पादक :

डॉ. अखिल जैन 'बंसल'

एम.ए. (हिन्दी), पीएचडी, डिप्लोमा-पत्रकारिता

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर-302 015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

जिनेन्द्र अर्चना	:	डॉ. अखिल जैन 'बंसल'
प्रथम बावन संस्करण (6 अक्टूबर 1981 से अद्यतन)	:	2 लाख 33 हजार
तिरेपनवाँ संस्करण (4 मई 2022) अक्षय तृतीया	:	3 हजार
योग	:	**2 लाख 36 हजार**

मूल्य : पचास रुपए

ISBN No.
978-93-91136-37-6

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

1.	श्री महेश जे. पारेख, मुम्बई	11000.00
2.	श्री रमेश कुमार जैन, दिल्ली	3100.00
3.	श्री निर्मलकुमार स्वर्णलता जैन, भागलपुर	2200.00
4.	श्री सचित विशाखा जैन, कोटा	1100.00
5.	अदिती जैन, बड़ौत	1100.00
6.	श्री प्रखर जैन, जबलपुर	1000.00
	कुल राशि –	**19,500.00**

सभी सहयोगियों को आभार!

मुद्रक :
देशना कम्प्यूटर
जयपुर (राज.)

प्रकाशकीय

(तिरेपनवाँ पुनर्सम्पादित संस्करण)

देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान की अर्चना में समर्पित सर्वाधिक बिक्रीवाली कृति 'जिनेन्द्र अर्चना' को नये परिवेश में प्रस्तुत करते हुए हम अत्यधिक गौरव एवं प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

जिनेन्द्र पूजन गृहस्थ/श्रावक के षट् आवश्यक कर्तव्यों में सर्वप्रथम कर्तव्य है। पापों से बचने हेतु तथा वीतराग भाव के पोषण हेतु यही एकमात्र आलम्बन है, अतः समाज में हजारों वर्षों से भाव एवं द्रव्यपूजन की परम्परा चली आ रही है।

आद्य-स्तुतिकार आचार्य समन्तभद्र ने स्वयंभू-स्तोत्र जैसी अमर कृतियों में जैन न्याय सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए उत्कृष्टतम स्तुतियों की रचना की है। अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन कवियों ने भी अपनी काव्यप्रतिभा से विभिन्न प्रकार की पूजाएँ रचकर पूजन साहित्य को समृद्ध किया है, जिनमें पण्डित द्यानतराय एवं पण्डित बृन्दावनदासजी विशेष उल्लेखनीय हैं।

मुद्रण प्रणाली के विकास ने पूजन संग्रहों के प्रकाशनों को सुलभ अवसर प्रदान किये हैं; अतः समाज में सैकड़ों पूजन संग्रह उपलब्ध हैं। इस संकलन का प्रथम संस्करण ६ अक्टूबर १९८१ को प्रकाशित किया गया था। तब से अबतक इसके इक्यावन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, जो इसकी उपयोगिता एवं लोकप्रियता का प्रबल प्रमाण हैं। समाज ने अपनी जिनेन्द्र भक्ति की अभिव्यक्ति और पुष्टि में इस संकलन का भरपूर उपयोग करके हमें प्रोत्साहित किया है, अतः हम उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

हमारे अनेक सुधी पाठकों द्वारा इसके संबंध में समय-समय पर अनेक सुझाव प्राप्त होते रहे हैं, जिन्हें ध्यान में रखते हुए आवश्यक संशोधन कर दिये गये हैं तथा आवश्यक सामग्री जोड़कर इसे और भी अधिक उपयोगी बना दिया गया है।

डॉ. अखिल जैन 'बंसल' इस कृति के आद्य सम्पादक हैं। कृति के नवीन संस्करण के परिमार्जन तथा इसे आकर्षक कलेवर में प्रस्तुत करने में उनका विशेष योगदान रहा है; अतः हम उनके आभारी हैं।

तत्त्वार्थसूत्र, भक्तामर एवं जिनेन्द्र वन्दना के समावेश से यह संकलन विशेष उपयोगी तो था ही, बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' कृत नीरव निर्झर तथा सिद्ध पूजन और श्री राजमलजी पवैया कृत प्रमुख पर्व पूजनों को सम्मिलित किये जाने से कृति की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गई है। डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल कृत प्रक्षाल पाठ, विनय पाठ, स्वस्ति मंगल पाठ, चौबीस तीर्थंकर पूजन, भरत-बाहुबली पूजन तथा शांतिपाठ को भी इस संस्करण में समाहित किया गया है। डॉ. अखिल बंसल द्वारा रचित पूजनें व भक्तामर काव्य कलश भी जोड़ा गया है। पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल कृत जिनपूजन रहस्य तो इसमें विगत अनेक संस्करणों से था ही इसमें भक्ति खण्ड को भी पुनर्सम्पादित किया गया है। प्रत्येक पूजन को नये पृष्ठ से आरम्भ करने का प्रयास किया गया है तथा खाली स्थानों में महत्त्वपूर्ण भक्तियाँ दी गई हैं। भक्तियों को वर्गीकृत करके उनकी सूची भी अलग से दी गई है, अतः उनका उपयोग जिनेन्द्र भक्ति में सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

यद्यपि पूजनों, स्तवनों एवं जिनवाणी संग्रह की समाज में कमी नहीं है, फिर भी इस संकलन की अपनी एक अलग विशेषता है। यही कारण है कि समाज की प्रबल माँग निरन्तर बनी रहती है और इसकी पूर्ति में हमें लगभग हर वर्ष ही इसे प्रकाशित करना पड़ता है। अबतक यह कृति २ लाख ३३ हजार की संख्या में जन-जन तक पहुँच चुकी है तथा ३ हजार का यह संस्करण आपके समक्ष प्रस्तुत है जो इसकी लोकप्रियता को दर्शाती है। इस कृति को और अधिक उपयोगी बनाने हेतु आपके सुझाव सादर आमंत्रित हैं। इस कृति की सुन्दर टाईप सैटिंग के लिए श्री कमल शर्मा का आभार।

आशा है, प्रस्तुत तिरेपनवाँ संस्करण पाठकों को अधिकतम सन्तुष्ट करते हुए उनकी साधना में विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

परमात्मप्रकाश भारिल्ल
कार्यकारी महामंत्री
पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

विषय-सूची

(स्तवन खण्ड)

विषय		लेखक	पृष्ठ संख्या
१.	जिनपूजन रहस्य	पं. रतनचंद भारिल्ल	९
२.	जिनेन्द्र वंदना	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	४७
३.	दर्शन पाठ	-	५१
४.	देवस्तुति (प्रभु पतितपावन...)	श्री बुधजन	५२
५.	दर्शनस्तुति (अतिपुण्य उदय...)	श्री अमरचन्दजी	५३
६.	दर्शन स्तुति (सकलज्ञेय...)	पं. दौलतरामजी	५४
७.	दर्शन पाठ (दर्शन श्री देवाधिदेव का...)	श्री युगलजी	५६
८.	आराधना पाठ (मैं देव नित...)	पं. द्यानतराय	५७
९.	देव स्तुति (वीतराग सर्वज्ञ हितंकर...)	-	५८
	(पूजन खण्ड)		
१०.	जलाभिषेक पाठ	श्री हरजसरायजी	५९
११.	प्रक्षाल पाठ	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	६२
१२.	प्रतिमा प्रक्षाल पाठ	पं. अभयकुमारजी	६४
१३.	विनयपाठ	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	६७
१४.	विनय पाठ	-	६९
१५.	पूजा पीठिका (संस्कृत)	-	७१
१६.	पूजा पीठिका (हिन्दी)	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	७४
१७.	स्वस्ति मंगल पाठ	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	७७
१८.	देव-शास्त्र-गुरु पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	७९
१९.	देव-शास्त्र-गुरु पूजन	श्री युगलजी	८३
२०.	देव-शास्त्र-गुरु पूजन	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	८७
२१.	देव-शास्त्र-गुरु पूजन	डॉ. अखिल बंसल	९१
२२.	समुच्चय पूजन	ब्र. सरदारमलजी	९४
२३.	पंच परमेष्ठी पूजन	श्री राजमलजी पवैया	९७
२४.	सिद्धपूजन	आचार्य पद्मनन्दि	१००
२५.	सिद्धपूजन	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	१०५
२६.	सिद्धपूजन	श्री युगलजी	१०९
२७.	विदेहक्षेत्र स्थित विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	११३
२८.	चौबीस तीर्थंकर पूजन	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	११६
२९.	श्री वर्तमान चौबीसी पूजन	कविवर वृन्दावनदासजी	१२१
३०.	सीमन्धर पूजन	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	१२४
३१.	दशलक्षण धर्म पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	१२८
३२.	सम्यक्रत्नत्रय धर्म पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	१३४
३३.	सोलहकारण पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	१४२
३४.	पंचमेरु पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	१४५

३५.	नन्दीश्वरद्वीप पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	१४८
३६.	श्री आदिनाथ जिनपूजन	पण्डित जिनेश्वरदासजी	१५२
३७.	श्री आदिनाथ जिनपूजन	डॉ. अखिल बंसल	१५६
३८.	श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजन	पण्डित वृन्दावनदासजी	१५९
३९.	चैतन्य वन्दना	पं. अभयकुमारजी	१६३
४०.	श्री शान्तिनाथ जिनपूजन	पण्डित वृन्दावनदासजी	१६४
४१.	श्री शान्तिनाथ पूजन	डॉ. अखिल बंसल	१६८
४२.	श्री पार्श्वनाथ जिनपूजन	पण्डित बख्तावरमलजी	१७२
४३.	श्री पार्श्वनाथ जिनपूजन	डॉ. अखिल बंसल	१७७
४४.	श्री वर्धमान जिनपूजन	पण्डित वृन्दावनदासजी	१८१
४५.	श्री महावीर पूजन	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	१८५
४६.	श्री महावीर पूजन	डॉ. अखिल बंसल	१८९
४७.	श्री पंच बालयति जिनपूजन	पं. अभयकुमारजी	१९२
४८.	श्री भरत-बाहुबली पूजन	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	१९६
४९.	श्री बाहुबली पूजन	श्री राजमल पवैया	२०१
५०.	श्री सप्तऋषि पूजन	पण्डित रंगलालजी	२०५
५१.	सरस्वती पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	२०८
५२.	अक्षय तृतीया पर्व पूजन	श्री राजमलजी पवैया	२११
५३.	रक्षाबन्धन पर्व पूजन	श्री राजमलजी पवैया	२१५
५४.	वीरशासन जयन्ती पर्व पूजन	श्री राजमलजी पवैया	२२०
५५.	क्षमावाणी पूजन	श्री राजमलजी पवैया	२२४
५६.	दीपमालिका पर्व पूजन	श्री राजमलजी पवैया	२३०
५७.	श्रुतपंचमी पर्व पूजन	श्री राजमलजी पवैया	२३५
५८.	निर्वाणक्षेत्र पूजन	पण्डित द्यानतरायजी	२३९
५९.	निर्वाण काण्ड भाषा	भैया भगवतीदासजी	२४२
६०.	स्वयंभू-स्तोत्र (भाषा)	श्री द्यानतरायजी	२४४
६१.	चौबीस तीर्थंकरों के अर्घ्य	-	२४६
६२.	कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालयों के अर्घ्य	-	२५२
६३.	अर्घ्यावलि	-	२५४
६४.	शान्ति पाठ (संस्कृत)	-	२६१
६५.	शान्ति पाठ (भाषा)	-	२६३
६६.	शान्ति पाठ (लघु)	-	२६५
६७.	शान्ति पाठ	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल	२६६

(आध्यात्मिक पाठ एवं भावना खण्ड)

६८.	नीरव निर्झर (सामायिक पाठ)	श्री युगलजी	२६८
६९.	अमूल्य तत्त्व विचार	अनुवाद - श्री युगलजी	२७१
७०.	आलोचना पाठ	श्री जौहरीलालजी	२७२
७१.	मेरी भावना	श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार	२७५

७२.	वैराग्य भावना (वज्रनाभ चक्रवर्ती)	अनु. पण्डित भूधरदासजी	२७७
७३.	छहढाला	पण्डित दौलतरामजी	२८०
७४.	भक्तामर-स्तोत्र	आचार्य मानतुंग	२९२
७५.	भक्तामर-स्तोत्र (हिन्दी)	पण्डित हेमराजजी	२९९
७६.	भक्तामर : काव्य कलश	डॉ. अखिल बंसल	३०६
७७.	महावीराष्टक स्तोत्र	कविवर भागचन्द	३१६
७८.	मंगलाष्टक	-	३१७
७९.	समाधिमरण (हिन्दी)	पण्डित सूरचन्दजी	३१९
८०.	बारह भावना	पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा	३२८
८१.	बारह भावना	पण्डित भूधरदासजी	३२९
८२.	तत्त्वार्थ सूत्र	आचार्य उमास्वामी	३३०

(भक्ति खण्ड)

देव भक्ति

८३.	एक तुम्हीं आधार हो जग में...	सौभाग्यमलजी	३४२
८४.	तिहारे ध्यान की मूरत...	-	३४२
८५.	मेरे मन मन्दिर में आन...	-	३४३
८६.	निरखो अंग-अंग जिनवर...	-	३४३
८७.	आओ जिन मन्दिर में आओ...	-	३४४
८८.	धन्य धन्य आज घड़ी कैसी सुखकार है...	सौभाग्यमलजी	३४५
८९.	वीर प्रभु के ये बोल तेरा प्रभु...	-	३४५

शास्त्र भक्ति

९०.	हे जिनवाणी माता तुमको लाखों...	शिवरामजी	३४६
९१.	जिनवर चरण भक्ति वर गंगा...	मानिकचंदजी	३४७
९२.	जिनवाणी माता रत्नत्रय...	जयकुमारजी	३४७
९३.	जिन-वैन सुनत मोरी भूल...	पं. दौलतरामजी	३४८
९४.	जिनवाणी माता दर्शन की...	-	३४८
९५.	महिमा है अगम जिनागम की...	पं. भागचंदजी	३४८
९६.	चरणों में आ पड़ा...	सुदर्शनजी	३४८
९७.	नित पीज्यो धीधारी...	पं. दौलतरामजी	३४९
९८.	साँची तो गंगा यह...	पं. भागचन्दजी	३४९
९९.	धन्य धन्य है घड़ी आज की...	पं. भागचन्दजी	३५०
१००.	केवलि-कन्ये...	ज्ञानानन्दजी	३५०
१०१.	धन्य-धन्य जिनवाणी माता...	-	३५१
१०२.	धन्य-धन्य वीतराग वाणी...	-	३५२
१०३.	सुनकर वाणी जिनवर की म्हारे...	पं. बुधजन	३५२
१०४.	मुख ओंकार धुनि...	पं. बनारसीदास	३५२
१०५.	भ्रात जिनवाणी सम नहिं आन...	नन्दलालजी	३५३

गुरु भक्ति

१०७. ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं...	पं. भागचन्दजी	३५४
१०८. धन-धन जैनी साधु जगत के...	पं. भागचन्दजी	३५४
१०९. परम गुरु बरसत ज्ञान झरी...	पं. द्यानतरायजी	३५४
११०. वे मुनिवर कब मिलि हैं...	पं. भूधरदासजी	३५५
१११. ऐसे मुनिवर देखे वन में...	-	३५५
११२. परम दिगम्बर मुनिवर...	-	३५५
११३. संत साधु बन के विचरूँ...	-	३५६
११४. धन्य मुनीश्वर आतम हित में...	-	३५६
११५. म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर आया...	सौभाग्यमलजी	३५७
११६. मैं परम दिगम्बर साधु के...	सौभाग्यमलजी	३५८
११७. नित उठ ध्याऊँ, गुण गाऊँ...	सौभाग्यमलजी	३५८
११८. हे परम दिगम्बर यति महागुण...	सौभाग्यमलजी	३५९
११९. है परम दिगम्बर मुद्रा जिनकी...	पं. अभयकुमारजी	३५९
१२०. होली खेलें मुनिराज शिखर वन में...	पं. भूधरदासजी	३६०

विविध

१२१. अब प्रभु चरण छोड़ कित जाऊँ...	-	८२
१२२. प्रभु पै यह वरदान सुपाऊँ...	पं. भागचन्दजी	९०
१२३. अशरीरी सिद्ध भगवान...	-	१०८
१२४. मैं महापुण्य उदय से...	-	११५
१२५. करलो जिनवर का गुणगान...	-	१२३
१२६. देखो जी आदीश्वर स्वामी...	पं. दौलतरामजी	१३३
१२७. श्री अरिहन्त छवि लखि...	जिनेश्वरदासजी	१४१
१२८. रोम-रोम पुलकित हो जाय...	-	१५१
१२९ चैतन्य वन्दना	-	१६३
१३०. आज हम जिनराज...	पंकजजी	१७१
१३१. चाह मुझे है दर्शन की...	--	१७६
१३२. जिन प्रतिमा जिनवर-सी कहिए...	भैया भगवतीदासजी	१८८
१३३. चरखा चलता नाहीं...	पं. भूधरदासजी	१९५
१३४. निरखत जिन चन्द्र-वदन...	पं. दौलतरामजी	२१४
१३५. वन्दों अद्भुत चन्द्रवीर जिन...	पं. दौलतरामजी	२२९
१३६. हे जिन तेरो सुजस उजागर...	पं. दौलतरामजी	२४१
१३७. दरबार तुम्हारा मनहर है...	वृद्धिचंदजी	२५२
१३८. नाथ तुम्हारी पूजा में सब...	-	२६४
१३९. दया दान पूजा शील...	-	३०५
१४०. ऐसै जिनराज ताहि वंदत बनारसी	पं. बनारसीदासजी	३१५
१४१. श्री सिद्धचक्र माहात्म्य...	पं. रतनचन्दजी	३२७
१४२. हमको भी बुलवालो स्वामी सिद्धों...	-	३४१

जिनपूजन रहस्य

● पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

देवपूजा : क्या/क्यों/कैसे?

"देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने-दिने।।[१]

देवपूजा, गुरु-उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान - ये छह आवश्यक कार्य गृहस्थों को प्रतिदिन करना चाहिए।"

यह पावन आदेश आचार्य पद्मनन्दि का है। इसमें देवपूजा को प्रथम स्थान प्राप्त है।

वह देव पूजा क्या है? कितने प्रकार की है? किस देव की की जाती है? क्यों की जाती है? कैसे की जाती है? पूजन का वास्तविक प्रयोजन क्या है? और मोक्षमार्ग में इसका क्या स्थान है? आदि बातें सभी धर्मप्रेमी बन्धुओं को जानने योग्य हैं।

पूजन शब्द का अर्थ आज बहुत ही संकुचित हो गया है। पूजन को आज एक क्रिया विशेष से जोड़ दिया गया है; जबकि पूजन में पंच परमेष्ठी की वंदना, नमस्कार, स्तुति, भक्ति तथा जिनवाणी की सेवा व प्रचार-प्रसार करना, जैनधर्म की प्रभावना करना, जिनमन्दिर एवं जिनप्रतिमा का निर्माण करना-कराना आदि अनेक कार्य सम्मिलित हैं।

जिनमार्ग में सच्ची श्रद्धा ही वास्तविक जिनपूजन है।

भक्ति और पूजा का स्वरूप दर्शाते हुए आचार्य अपराजित लिखते हैं -

"का भक्ति पूजा? अर्हदादि गुणानुरागो भक्तिः। पूजा द्विप्रकारा- द्रव्यपूजा भावपूजा चेति। गन्धपुष्पधूपाक्षतादिदानं अर्हदाद्युद्दिश्य द्रव्यपूजा,

---

१. पद्मनन्दि पंचविशति (उपासक संस्कार), पृष्ठ १२८, श्लोक सं. - ७।

अभ्युत्थान– प्रदक्षिणीकरणप्रणमनादिका कायक्रिया च वाचा गुणसंस्तवनं च। भावपूजा मनसा तद्‌गुणानुस्मरणम्।''[1]

प्रश्न – भक्ति और पूजा किसे कहते हैं?

उत्तर – अरहन्त आदि के गुणों में अनुराग भक्ति है। पूजा के दो प्रकार हैं – द्रव्यपूजा और भावपूजा।

अरहन्त आदि का उद्देश्य करके गंध, पुष्प, धूप, अक्षतादि अर्पित करना द्रव्यपूजा है तथा उनके आदर में खड़े होना, प्रदक्षिणा करना, प्रणाम करना आदि शारीरिक क्रिया और वचन से गुणों का स्तवन भी द्रव्यपूजा है तथा मन से उनके गुणों का स्मरण भावपूजा है।''

द्रव्यपूजा व भावपूजा के सम्बन्ध में पं. सदासुखदासजी लिखते हैं :–

''अरहन्त के प्रतिबिम्ब का वचन द्वार से स्तवन करना, नमस्कार करना, तीन प्रदक्षिणा देना, अंजुलि मस्तक चढ़ाना, जल–चन्दनादिक अष्टद्रव्य चढ़ाना; सो द्रव्यपूजा है।

अरहन्त के गुणों में एकाग्रचित्त होकर, अन्य समस्त विकल्प छोड़कर गुणों में अनुरागी होना तथा अरहन्त के प्रतिबिम्ब का ध्यान करना; सो भावपूजा है।''[2]

उक्त कथन में एक बात अत्यन्त स्पष्ट रूप से कही गई है कि – अष्टद्रव्य से की गई पूजन तो द्रव्यपूजन है ही, साथ ही देव–शास्त्र–गुरु की वन्दना करना, नमस्कार करना, प्रदक्षिणा देना, स्तुति करना आदि क्रियायें भी द्रव्यपूजन हैं।

जिनेन्द्र भगवान की पूजन भगवान को प्रसन्न करने के लिए नहीं, अपने चित्त की प्रसन्नता के लिए की जाती है; क्योंकि जिनेन्द्र भगवान तो वीतरागी होने से किसी से प्रसन्न या नाराज होते ही नहीं हैं। हाँ, उनके गुणस्मरण से हमारा मन अवश्य पवित्र हो जाता है।

इस सन्दर्भ में आचार्य समन्तभद्र का निम्न कथन द्रष्टव्य है–

१. भगवती आराधना, गाथा ४६ की विजयोदया टीका।
२. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक ११९ की टीका, पृष्ठ २०८।

"न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ! विवान्त वैरे।
तथापि ते पुण्य गुणस्मृतिर्नः, पुनाति चित्तं दुरिताज्जनेभ्यः ।।[१]

यद्यपि जिनेन्द्र भगवान वीतराग हैं, अतः उन्हें अपनी पूजा से कोई प्रयोजन नहीं है तथा वैर रहित हैं, अतः निन्दा से भी उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है; तथापि उनके पवित्र गुणों का स्मरण पापियों के पापरूप मल से मलिन मन को निर्मल कर देता है।"

कुछ लोग कहते हैं कि – यद्यपि भगवान कुछ देते नहीं हैं, तथापि उनकी भक्ति से कुछ न कुछ मिलता अवश्य है। इसप्रकार वे जिनपूजा को प्रकारान्तर से भोगसामग्री की प्राप्ति से जोड़ देते हैं; किन्तु उक्त छन्द में तो अत्यन्त स्पष्ट रूप से कहा गया है कि – उनकी भक्ति से भक्त का मन निर्मल हो जाता है। मन का निर्मल हो जाना ही जिनपूजा–जिनभक्ति का सच्चा फल है। ज्ञानीजन तो अशुभभाव व तीव्रराग से बचने के लिए ही भक्ति करते हैं।

इस सन्दर्भ में आचार्य अमृतचन्द की निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

"अयं हि स्थूललक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। उपरितन–भूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानरागनिषेधार्थं तीव्ररागज्वर–विनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति।

इसप्रकार का राग मुख्यरूप से मात्र भक्ति की प्रधानता और स्थूल लक्ष्यवाले अज्ञानियों को होता है। उच्चभूमिका में स्थिति न हो तो तब तक अस्थान का राग रोकने अथवा तीव्ररागज्वर मिटाने के हेतु से कदाचित् ज्ञानियों को भी होता है।"[२]

उक्त दोनों कथनों पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट होती है कि आचार्य अमृतचन्द्र तो कुस्थान में राग के निषेध और तीव्ररागज्वर निवारण की बात कहकर नास्ति से बात करते हैं और उसी बात को आचार्य समन्तभद्र चित्त की निर्मलता की बात कहकर अस्ति से कथन करते हैं।

---

१. स्वयंभू स्तोत्र, छन्द ५७।
२. पंचास्तिकाय, गाथा १३६ की टीका।

इसप्रकार पूजन एवं भक्ति का भाव मुख्यरूप से अशुभराग व तीव्रराग से बचाकर शुभराग व मंदरागरूप निर्मलता प्रदान करता है।

यद्यपि यह बात सत्य है कि भक्ति और पूजन का भाव मुख्यरूप से शुभभाव है, तथापि ज्ञानी धर्मात्मा मात्र शुभ की प्राप्ति के लिए पूजन-भक्ति नहीं करता, वह तो जिनेन्द्र की मूर्ति के माध्यम से मूर्तिमान जिनेन्द्र देव को एवं जिनेन्द्र देव के माध्यम से निज परमात्मस्वभाव को जानकर, पहिचान कर, उसी में रम जाना, जम जाना चाहता है।

तिलोयपण्णत्ती आदि ग्रन्थों में सम्यक्त्वोत्पत्ति के कारणों में जिनबिम्ब दर्शन को भी एक कारण बताया है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि जिनपूजा अशुभभाव से बचने के साथ-साथ सम्यक्त्वोत्पत्ति, भेदविज्ञान, आत्मानुभूति एवं वीतरागता की वृद्धि में भी निमित्तभूत है। स्तुतियों और भजनों की निम्न पंक्तियों से यह बात स्पष्ट है-

"तुम गुण चिन्तत निज-पर विवेक प्रकटै, विघटें आपद अनेक।

× × ×

जय परम शान्त मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।[१]

हे भगवन्! आपके निर्मल गुणों के चिन्तन-स्मरण करने से अपने व पराये की पहचान हो जाती है, निज क्या है और पर क्या है - ऐसा भेदज्ञान प्रकट हो जाता है और उससे अनेक आपत्तियों का विनाश हो जाता है।

हे प्रभो! आपकी परम शान्त मुद्रा भव्यजीवों को आत्मानुभूति में निमित्त कारण है।"

इस सन्दर्भ में निम्नांकित भजन की पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं-

"निरखत जिनचन्द्र-वदन स्व-पद सुरुचि आई।
प्रकटी निज-आन की पिछान ज्ञान-भान की
कला उदोत होत काम जामिनी पलाई ।।निरखत.।। [२]

---

१. पण्डित दौलतराम कृत देवस्तुति

२. पण्डित दौलतराम कृत आध्यात्मिक भजन।

जिनेन्द्र भगवान का भक्त जिनप्रतिमा के दर्शन के निमित्त से हुई अपूर्व उपलब्धि से भावविभोर होकर कहता है कि – जिनेन्द्र भगवान के मुखचन्द्र के निरखते ही मुझे अपने स्वरूप को समझने की रुचि जागृत हो गई तथाज्ञानरूपी सूर्य की कला के प्रकट होने से मेरा मोह एवं काम भी पलायन कर गया है।''

ज्ञानीजन यद्यपि लौकिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिए जिनेन्द्र-भक्ति कदापि नहीं करते, तथापि मूल प्रयोजनों की पूर्ति के साथ-साथ उनके लौकिक प्रयोजनों की पूर्ति भी होती है; क्योंकि शुभभाव और मन्दराग की स्थिति में नहीं चाहते हुए भी जो पुण्य बँधता है, उसके उदयानुसार यथासमय थोड़ी-बहुत लौकिक अनुकूलतायें भी प्राप्त होती ही हैं। लौकिक अनुकूलता का अर्थ मात्र अनुकूल भोगसामग्री की प्राप्ति ही नहीं है, अपितु धर्मसाधन और आत्मसाधन के अनुकूल वातावरण की प्राप्ति भी है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि जिनेन्द्र भगवान का भक्त भोगों का भिखारी तो होता ही नहीं है, वह भगवान से भोगसामग्री की माँग तो करता ही नहीं है; साथ में उसकी भावना मात्र शुभभाव की प्राप्ति की भी नहीं होती, वह तो एकमात्र वीतरागभाव का ही इच्छुक होता है; तथापि उसे पूजन और भक्ति के काल में सहज हुए शुभभावानुसार पुण्य-बंध भी होता है और तदनुसार आत्मकल्याण की निमित्तभूत पारमार्थिक अनुकूलताएँ व अन्य लौकिक अनुकूलताएँ भी प्राप्त होती हैं।

पूजा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है। पूजा में पूज्य, पूजक एवं पूजा – ये तीन अंग प्रमुख हैं। जिसतरह सफल शिक्षा के लिए सुयोग्य शिक्षक, सजग शिक्षार्थी एवं सार्थक शिक्षा का सु-समायोजन आवश्यक है; उसी तरह पूजा का पूरा फल प्राप्त करने के लिए पूज्य, पूजक एवं पूजा का सुन्दर समायोजन जरूरी है। इसके बिना पूजा की सार्थकता संभव नहीं है। पूज्य सदृश पूर्णता एवं पवित्रता प्राप्त करना ही पूजा की सार्थकता है।

जब पूजक पूजा करते समय पूज्य परमात्मा के गुणगान करता है, उनके गुणों का स्मरण करता है, उनके परमात्मा बनने की प्रक्रिया पर विचार करता है, परमात्मा के जीवनदर्शन का आद्योपान्त अवलोकन करता है, अरहन्त, सिद्ध और साधुओं के स्वरूप से अपने स्वभाव को समझने का प्रयत्न करता है; तब उसे सहज ही समझ में आने लगता है कि – ''अहो! मैं भी तो स्वभाव से परमात्मा की भाँति ही अनन्त असीम शक्तियों का संग्रहालय हूँ, अनन्त गुणों का गोदाम हूँ, मेरा स्वरूप भी तो सिद्ध-सदृश ही है। मैं स्वभाव की सामर्थ्य से सदा भरपूर हूँ। मुझ में परलक्ष्यी ज्ञान के कारण जो मोह-राग-द्वेष हो रहे हैं, वे दुःखरूप हैं – इसप्रकार सोचते-विचारते उसका ध्यान जब भगवान की पूर्व पर्यायों पर जाता है, तब उसे ख्याल आता है कि – ''जब शेर जैसा क्रूर पशु भी कालान्तर में परमात्मा बन सकता है तो मैं क्यों नहीं बन सकता? सभी पूज्य परमात्मा अपनी पूर्व पर्यायों में तो मेरे जैसे ही पामर थे! जब वे अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेकर परमात्मा बन गये तो मैं भी अपने स्वभाव के आश्रय से पूर्णता व पवित्रता प्राप्त कर परमात्मा बन सकता हूँ।'' इसप्रकार की चिन्तनधारा ही भक्त को जिनदर्शन से निजदर्शन कराती है, यही आत्मदर्शन होने की प्रक्रिया है, पूजन की सार्थक प्रक्रिया है।

यद्यपि पूजा स्वयं में एक रागात्मक वृत्ति है, तथापि वीतराग देव की पूजा करते समय पूजक का लक्ष्य यदा-कदा अपने वीतराग स्वभाव की ओर भी झुकता है। बस, यही पूजा की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।

पूजा में शुभराग की मुख्यता रहने से पूजक अशुभरागरूप तीव्रकषायादि पाप परिणति से बचा रहता है तथा वीतरागी परमात्मा की उपासना से सांसारिक विषय-वासना के संस्कार भी क्रमशः क्षीण होते जाते हैं और स्वभाव-सन्मुखता की रुचि से आत्मबल में भी वृद्धि होती है; क्योंकि रुचि-अनुयायी वीर्य स्फुरित होता है। अन्ततोगत्वा पूजा के रागभाव का भी अभाव करके पूजक वीतराग-सर्वज्ञ पद प्राप्त कर स्वयं पूज्य हो जाता है। इसी अपेक्षा से जिनवाणी में पूजा को परम्परा से मुक्ति का कारण कहा गया है।''[१]

---

१. भुक्ति-मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर। (चौबीस तीर्थंकर पूजा)

निश्चयपूजा

निश्चयनय से तो पूज्य-पूजक में कोई भेद ही दिखाई नहीं देता। अतः इस दृष्टि से तो पूजा का व्यवहार ही संभव नहीं है। निश्चयपूजा के सम्बन्ध में आचार्यों ने जो मंतव्य प्रकट किये हैं, उनमें कुछ प्रमुख आचार्यों के विचार द्रष्टव्य हैं –

आचार्य योगीन्दु देव लिखते हैं –

''मणु मिलियउ परमेसरहं परमेसरु वि मणस्स।
बीहि वि समरसि हूवाहूँ पूज्ज चढावहु कस्स।।[१]

विकल्परूप मन भगवान आत्मा से मिल गया, तन्मय हो गया और परमेश्वरस्वरूप भगवान आत्मा भी मन से मिल गया। जब दोनों ही सम-रस हो गये तो अब कौन/किसकी पूजा करे? अर्थात् निश्चयदृष्टि से देखने पर पूज्य-पूजक का भेद ही दिखाई नहीं देता तो किसको अर्घ्य चढ़ाया जाये?''

इसीतरह आचार्य पूज्यपाद लिखते हैं –

''यः परात्मा स एवाऽहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः।।[२]

स्वभाव से जो परमात्मा है, वही मैं हूँ तथा जो स्वानुभवगम्य मैं हूँ, वही परमात्मा है; इसलिए मैं ही मेरे द्वारा उपास्य हूँ, दूसरा कोई अन्य नहीं।''

इसी बात को कुन्दकुन्दाचार्य देव ने अभेदनय से इसप्रकार कहा है-

''अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।।[३]

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु – ये जो पंच परमेष्ठी हैं; वे आत्मा में ही चेष्टारूप हैं, आत्मा ही की अवस्थायें हैं; इसलिए मेरे आत्मा ही का मुझे शरण है।''

इसप्रकार यह स्पष्ट होता है कि अपने आत्मा में ही उपास्य-उपासक भाव घटित करना निश्चयपूजा है। ●

---

१. परमात्मप्रकाश १/१२३/२ २. समाधितंत्र ३१ ३. अष्टपाहुड़ : मोक्ष पाहुड़, मूल श्लोक १०४

व्यवहारपूजा : भेद–प्रभेद

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव; पूज्य, पूजक, पूजा; नाम, स्थापना आदि तथा इन्द्र, चक्रवर्ती आदि द्वारा की जानेवाली पूजा की अपेक्षा व्यवहार पूजन के अनेक भेद–प्रभेद हैं।

पूजा को द्रव्यपूजा और भावपूजा में विभाजित करते हुए आचार्य अमितगति उपासकाचार में लिखते हैं––

''वचो विग्रहसंकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते।
तत्र मानससंकोचो भावपूजा पुरातनैः।।[१]

वचन और काय को अन्य व्यापारों से हटाकर स्तुत्य (उपास्य) के प्रति एकाग्र करने को द्रव्यपूजा कहते हैं और मन की नाना प्रकार से विकल्पजनित व्यग्रता को दूर करके उसे ध्यान तथा गुण–चिन्तनादि द्वारा स्तुत्य में लीन करने को भावपूजा कहते हैं।''

आचार्य अमितगति ने अमितगति श्रावकाचार में एवं आचार्य वसुनन्दि ने वसुनन्दि श्रावकाचार में द्रव्यपूजा के निम्नांकित तीन भेद किये हैं[२] –

(१) सचित्त पूजा (२) अचित्त पूजा (३) मिश्र पूजा।

१. सचित्त पूजा – प्रत्यक्ष उपस्थित समवशरण में विराजमान जिनेन्द्र भगवान और निर्ग्रन्थ गुरु का यथायोग्य पूजन करना सचित्त द्रव्यपूजा है।

२. अचित्त पूजा – तीर्थंकर के शरीर (प्रतिमा) की और द्रव्यश्रुत (लिपिबद्ध शास्त्र) की पूजन करना अचित्त द्रव्यपूजा है।

३. मिश्र पूजा – उपर्युक्त दोनों प्रकार की पूजा मिश्र द्रव्यपूजा है।

सचित्त फलादि से पूजन करनेवालों को उपर्युक्त कथन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसमें अत्यन्त स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सचित्तता सामग्री की नहीं, आराध्य की होना चाहिए। सचित्त माने साक्षात् सशरीर जिनेन्द्र भगवान और अचित्त माने उनकी प्रतिमा।

१. स्तुतिविद्या, प्रस्तावना, पृष्ठ १० : जुगलकिशोर मुख्तार।
२. अमितगति श्रावकाचार, १२–१३ एवं वसुनन्दि श्रावकाचार, श्लोक ४४९–५०

महापुराण में द्रव्यपूजा के पाँच प्रकार बताये हैं[1] –

१. सदार्चन (नित्यमह) २. चतुर्मुख ३. कल्पद्रुम ४. आष्टाह्निक ५. ऐन्द्रध्वज।

१. सदार्चन पूजा – इसे नित्यमह तथा नित्यनियम पूजा भी कहते हैं। यह चार प्रकार से की जाती है।

(अ) अपने घर से अष्ट द्रव्य ले जाकर जिनालय में जिनेन्द्रदेव की पूजा करना।

(आ) जिन प्रतिमा एवं जिन मन्दिर का निर्माण करना।

(इ) दानपत्र लिखकर ग्राम–खेत आदि का दान देना।

(ई) मुनिराजों को आहार दान देना।

२. चतुर्मुख (सर्वतोभद्र) पूजा – मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा महापूजा करना।

३. कल्पद्रुम पूजा – चक्रवर्ती राजा द्वारा किमिच्छिक दान देने के साथ जिनेन्द्र भगवान का पूजोत्सव करना।

४. आष्टाह्निक पूजा – आष्टाह्निक पर्व में सर्व साधारण के द्वारा पूजा का आयोजन करना।

५. ऐन्द्रध्वज पूजा – यह पूजा इन्द्रों द्वारा की जाती है।

उपर्युक्त पाँच प्रकार की पूजनों में हम लोग सामान्यजन प्रतिदिन केवल सदार्चन (नित्यमह) का 'अ' भाग ही करते हैं। शेष पूजनें भी यथा–अवसर यथायोग्य व्यक्तियों द्वारा की जाती हैं।

वसुनन्दि श्रावकाचार में नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से द्रव्यपूजा के छह भेद कहे हैं –

१. नाम पूजा – अरिहन्तादि का नाम उच्चारण करके विशुद्ध प्रदेश में जो पुष्पक्षेपण किये जाते हैं, वह नाम पूजा है।

---

१. महापुराण श्रावकाचार, सर्ग ३८/२६–३३

२. स्थापना पूजा – यह दो प्रकार की है – सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना। आकारवान वस्तु में अरहन्तादि के गुणों का आरोपण करना सद्भाव स्थापना है तथा अक्षतादि में अपनी बुद्धि से वह परिकल्पना करना कि यह अमुक देवता है, असद्भाव स्थापना है। असद्भाव स्थापना मूर्ति की उपस्थिति में नहीं की जाती।[१]

३. द्रव्य पूजा – अरहन्तादि को गंध, पुष्प, धूप, अक्षतादि समर्पण करना तथा उठकर खड़े होना, नमस्कार करना, तीन प्रदक्षिणा देना आदि शारीरिक क्रियाओं तथा वचनों से स्तवन करना द्रव्य पूजा है।

४. भाव पूजा – परमभक्ति से अनन्त चतुष्टयादि गुणों के कीर्तन द्वारा त्रिकाल वन्दना करना निश्चय भावपूजा है। पंच नमस्कार मंत्र का जाप करना तथा जिनेन्द्र का स्तवन अर्थात् गुणस्मरण करना भी भाव पूजा है तथा पिण्डस्थ, पदस्थ आदि चार प्रकार के ध्यान को भी भाव पूजा कहा गया है।

५. क्षेत्र पूजा – तीर्थंकरों की पंचकल्याणक भूमि में स्थित तीर्थक्षेत्रों की पूर्वोक्त प्रकार से पूजा करना क्षेत्र पूजा है।

६. काल पूजा – तीर्थंकरों की पंचकल्याणक तिथियों के अनुसार पूजन करना तथा पर्व के दिनों में विशेष पूजायें करना काल पूजा है।[२]

जिनपूजा में अन्तरंग भावों की ही प्रधानता है; क्योंकि वीतरागी होने से भगवान को तो पूजा से कोई प्रयोजन ही नहीं है। पूजक के जैसे परिणाम होंगे, तदनुसार ही उसे फल की प्राप्ति होती है। ●

> अहो! देव-गुरु-धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं, इनके आधार से धर्म है। इनमें शिथिलता रखने से अन्य धर्म किसप्रकार होगा? इसलिए बहुत कहने से क्या? सर्वथा प्रकार से कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का त्यागी होना योग्य है। **– मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ १९२**

---

१. वसुनन्दि श्रावकाचार, ३८३-३८४

२. भगवती आराधना, गाथा ४६ विजयोदया टीका एवं वसुनन्दि श्रावकाचार, ४५६ से ४५८।

पूजन विधि और उसके अंग

पूजन विधि और उसके अंगों में देश, काल और वातावरण के अनुसार यत्किंचित् परिवर्तन होते रहे हैं, परन्तु उन परिवर्तनों से पूजन की मूलभूत भावना, प्रयोजन और उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं आया। उद्देश्य में अन्तर आने का कारण पूजन की विभिन्न पद्धतियाँ नहीं, बल्कि तद्विषयक अज्ञान होता है। जहाँ पूजन ही साध्य समझ ली गई हो या किसी विधि विशेष को अपने पंथ की प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया गया हो, वहाँ मूलभूत प्रयोजन की पूर्ति की संभावनायें क्षीण हो जाती हैं।

वर्तमान पूजन–विधि में पूजन के कहीं पाँच अंगों का और कहीं छह अंगों का उल्लेख मिलता है। दोनों ही प्रकार के अंगों में कुछ–कुछ नाम साम्य होने पर भी व्याख्याओं में मौलिक अन्तर है। दोनों ही मान्यतायें व विधियाँ वर्तमान में प्रचलित हैं। अतः दोनों ही विधियाँ विचारणीय हैं।

पण्डित सदासुखदासजी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार की टीका में पूजन के पाँच अंगों का निर्देश किया है।[१] इस सन्दर्भ में वे लिखते हैं :–

''व्यवहार में पूजन के पाँच अंगनि की प्रवृत्ति देखिये है–

(१) आह्वानन (२) स्थापन (३) सन्निधापन या सन्निधिकरण (४) पूजन (५) विसर्जन।

सो भावनि के जोड़वा वास्ते आह्वाननादिकनि में पुष्पक्षेपण करिये हैं। पुष्पनि कूँ प्रतिमा नहीं जानैं हैं। ए तो आह्वाननादिकनि का संकल्प तैं पुष्पांजलि क्षेपण है। पूजन में पाठ रच्या होय तो स्थापना करले, नाहीं होय तो नहीं करे। अनेकान्तिनि के सर्वथा पक्ष नाहीं। भगवान परमात्मा तो सिद्ध लोक में हैं, एक प्रदेश भी स्थान तैं चले नाहीं, परन्तु तदाकार प्रतिबिम्ब सूँ ध्यान जोड़ने के अर्थि साक्षात् अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु रूप का प्रतिमा में निश्चय करि प्रतिबिम्ब में ध्यान स्तवन करना।''[२]

---

१. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पण्डित सदासुखदासजी, श्लोक ११९, पृष्ठ २१४

२. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक ११९ की टीका पृष्ठ २१४

इसी सन्दर्भ में जैन निबन्ध रत्नावलि का निम्नलिखित कथन भी द्रष्टव्यहै-

''सोमदेव ने यशस्तिलक चम्पू में और पद्मनन्दि पंचविंशति में अर्हदादि की पूजा में सिर्फ अष्ट द्रव्यों से पूजा तो लिखी है, किन्तु आह्वानन, स्थापन, सन्निधिकरण व विसर्जन नहीं लिखा है। ये सर्वप्रथम पं. आशाधरजी के प्रतिष्ठा पाठ में और अभिषेक पाठ में मिलते हैं, किन्तु अरहन्तपूजा में विसर्जन उन्होंने भी नहीं लिखा। आगे चलकर इन्द्रनन्दि ने अरहन्तादि का विसर्जन भी लिख दिया है।

इसी शृंखला में इसी काल के आस-पास यशोनन्दि कृत संस्कृत की पंचपरमेष्ठी पूजन में भी पूजन के चार अंग ही मिलते हैं, विसर्जन उसमें भी नहीं है।''[१]

इसप्रकार प्राचीन और अर्वाचीन दोनों की पूजन पद्धतियों में पूजन के उपर्युक्त पाँचों अंगों का यत्किंचित् फेर-फार के साथ प्रचलन पाया जाता है।

यद्यपि सिद्धलोक में विराजमान वीतराग भगवान की पूजन में तार्किक दृष्टि से विचार करने पर इनका औचित्य प्रतीत नहीं होता, परन्तु भक्तिभावना के स्तर का यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य व व्यावहारिक सत्य है। यह पूजन पद्धति की एक सहज प्रक्रिया है, जो भावनाओं से ही अधिक सम्बन्ध रखती है। पूजा में पूजक के मन में पूज्य के प्रति एक ऐसी सहज परिकल्पना या मनोभावना होती है कि मानो पूज्य मेरे सामने ही खड़े हैं, अतः यह आह्वाननादि के द्वारा 'ॐ ह्रीं.....अत्र अवतर-अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्' बोलकर उन्हें बुलाने, सम्मान सहित बिठाने तथा सन्निकट लाने की भावना भाता है, मनमन्दिर के सिंहासन पर बिठाकर पूज्य की पूजा-अर्चना करना चाहता है।

जिनमन्दिर में तदाकार स्थापना के रूप में जिनप्रतिमा विद्यमान होती है। उसी एक तदाकार स्थापना में सभी पूज्य परमात्माओं की तदाकार परिकल्पना कर ली जाती है। ठोना में पुष्पों का क्षेपण तो केवल पुष्पांजलि अर्पण करना है।

१. जैन निबन्ध रत्नावली : मिलापचन्द रतनलाल कटारिया, पृष्ठ २६५

पाँच अँगों का सामान्य अर्थ इसप्रकार है –

(१) **आह्वानन :** पूज्य को बुलाने की मनोभावना।

(२) **स्थापन :** बुलाये गये पूज्य को ससम्मान उच्चासन पर विराजमान करने की मनोभावना।

(३) **सन्निधिकरण :** भावना के स्तर पर अत्यन्त भक्तिपूर्वक उच्चासन पर बिठाने पर भी तृप्ति न होने से अतिसन्निकट अर्थात् हृदय के सिंहासन पर बिठाने की तीव्र उत्कण्ठा या मनोभावना।

(४) **पूजन :** पूजन वह क्रिया है, जिसमें भक्त भगवान की प्रतिमा के समक्ष अष्ट द्रव्य आदि विविध आलम्बनों द्वारा कभी तो उन अष्ट द्रव्यों को परमात्मा के गुणों के प्रतीक रूप देखता हुआ क्रमशः एक-एक द्रव्य का आलम्बन लेकर भगवान का गुणानुवाद करता है। कभी उन अष्टद्रव्यों को विषयों में अटकाने में निमित्तभूत भोगों का प्रतीक मानकर उन्हें भगवान के समक्ष त्यागने की भावना भाता है। कभी अनर्घ्य (अमूल्य) पद की प्राप्ति हेतु अर्घ्य (बहुमूल्य) सामग्री के रूप में पुण्य से प्राप्त सम्पूर्ण वैभव की समर्पणता करने को उत्सुक दिखाई देता है। भक्त की इसी क्रिया/प्रक्रिया को पूजन कहते हैं।

(५) **विसर्जन :** पूजा की समाप्ति पर पूजा के समय हुई द्रव्य एवं भाव सम्बन्धी त्रुटियों के लिए अत्यन्त विनम्र भावों से क्षमा-प्रार्थना के साथ भक्तिभाव प्रकट करते हुए पूज्य की चरण-शरण सदा प्राप्त रहे- ऐसी कामना करना विसर्जन है। ●

> ✻ **पर्याय की क्रमबद्धता की स्वीकृति में पुरुषार्थ का लोप नहीं, वरन् पर्याय के प्रति उदासीनता होने पर अक्षय चैतन्य की अनुभूति का सशक्त पुरुषार्थ जागृत होता है।**

अभिषेक या प्रक्षाल

सर्वप्रथम यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि उक्त पाँचों अंगों में अभिषेक या प्रक्षाल सम्मिलित नहीं है। इससे यह तो स्पष्ट ही है कि अभिषेक या प्रक्षाल के बिना भी पूजन अपूर्ण नहीं है। प्रत्येक पूजक को अभिषेक करना अनिवार्य नहीं है, आवश्यक भी नहीं है। बार-बार प्रक्षाल करने से प्रतिमा के अंगोपांग अल्पकाल में ही घिस जाते हैं, पाषाण भी खिरने लगता है; अतः प्रतिमा की सुरक्षा की दृष्टि से भी प्रतिदिन दिन में एक बार ही शुद्ध प्रासुक जल से प्रक्षाल होना चाहिए। मूर्तिमान तो त्रिकाल पवित्र ही है, केवल मूर्ति में लगे रजकणों की स्वच्छता हेतु प्रक्षाल किया जाता है। मूर्ति को स्वच्छ रखने में शिथिलता न आने पाये, एतदर्थ प्रतिदिन प्रक्षाल करने का नियम है।

वर्तमान में अभिषेक के विषय में दो मत पाये जाते हैं। प्रथम मत के अनुसार पंचकल्याणक प्रतिष्ठा होने के बाद जिनप्रतिमा समवशरण के प्रतीक जिनमन्दिर में विराजमान अरहंत व सिद्ध परमात्मा की प्रतीक मानी जाती है। इसलिए उस अरहंत की प्रतिमा का अभिषेक जन्मकल्याणक के अभिषेक का प्रतीक नहीं हो सकता।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में अरहंत परमात्मा की प्रतिमा के अभिषेक के विषय में लिखा है – ''यद्यपि भगवान के अभिषेक का प्रयोजन नाहीं, तथापि पूजक के प्रक्षाल करते समय ऐसा भक्तिरूप उत्साह का भाव होता है – जो मैं अरहंत कूँ ही साक्षात् स्पर्श करूँ हूँ।''[१]

कविवर हरजसराय कृत अभिषेक पाठ में तो यह भाव और सशक्त ढंग से व्यक्त हुआ है। वे लिखते हैं–

''पापाचरण तजि नह्वन करता, चित्त में ऐसे धरूँ।
साक्षात् श्री अरहंत का, मानो नह्वन परसन करूँ॥
ऐसे विमल परिणाम होते, अशुभ नशि शुभबन्धतैं।
विधि[२] अशुभ नसि शुभ बन्धतैं, ह्वै शर्म[३] सब विधि[४] नासतैं।''

---

१. रत्नकरण्ड श्रावकाचार : पं. सदासुखदासजी की टीका पृष्ठ २०८
२. कर्म ३. सुख ४. सब प्रकार से

आगे अभिषेक करता हुआ पूजक अपनी पर्याय को पवित्र व धन्य अनुभव करता हुआ कहता है –

"पावन मेरे नयन भये तुम दरस तैं। पावन पान[1] भये तुम चरनन परस तैं।।
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यान तैं। पावन रसना मानी तुम गुन–गान तैं।।
पावन भई परजाय मेरी, भयो मैं पूरन धनी।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्ण भक्ति नहीं बनी।।
धनि धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिवघर की धरी।
वर क्षीरसागर आदि जल मणिकुंभ भरि भक्ति करी।।"

इसके भी आगे पूजक प्रक्षाल का प्रयोजन प्रगट करता हुआ कहता है–

"तुम तो सहज पवित्र, यही निश्चय भयो। तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन[2] ठयो।।
मैं मलीन रागादिक मल करि ह्वै रह्यो। महामलिन तन में वसुविधि वश दुःख सह्यो।।[3]

इसके साथ–साथ प्रतिदिन प्रक्षाल करने का दूसरा प्रयोजन परम–शान्त मुद्रा युक्त वीतरागी प्रतिमा की वीतरागता, मनोज्ञता व निर्मलता बनाये रखने के लिए यत्नाचारपूर्वक केवल छने या लोंग आदि द्वारा प्रासुक पानी से प्रतिमा को परिमार्जित करके साफ–सुथरा रखना भी है।

दुग्धाभिषेक करने वालों को यदि यह भ्रम हो कि देवेन्द्र क्षीरसागर के दुग्ध से भगवान का अभिषेक करते हैं तो उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि क्षीरसागर में त्रस–स्थावर जन्तुओं से रहित शुद्ध निर्मल जल ही होता है, दूध नहीं। क्षीरसागर तो केवल नामनिक्षेप से उस समुद्र का नाम है।

द्वितीय मत के अनुसार अभिषेक जन्मकल्याणक का प्रतीक माना गया है। सोमदेवसूरि (जो मूलसंघ के आचार्य नहीं हैं) द्वितीय मत का अनुकरण करने वाले जान पड़ते हैं; क्योंकि उन्होंने अभिषेक विधि का विधान करते समय वे सब क्रियायें बतलाई हैं, जो जन्माभिषेक के समय होती हैं। यह जन्माभिषेक भी इन्द्र और देवगण द्वारा क्षीरसागर के जीव–जन्तु रहित निर्मल जल से ही किया जाता है, दूध–दही आदि से नहीं।

यहाँ ज्ञातव्य यह है कि दोनों ही मान्यताओं के अनुसार जिनप्रतिमा का अभिषेक या प्रक्षाल केवल शुद्ध प्रासुक निर्मल जल से ही किया जाना चाहिए।

●

१. ज्ञान, २. परिमार्जन करना, अंगोछे से पोंछना, ३. वृहज्जिनवाणी संग्रह : टोडरमल स्मारक, पृष्ठ ६२

पूजन के लिए प्रासुक अष्ट द्रव्य

पूजन के विविध आलम्बनों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आलम्बन अष्ट द्रव्य माने जाते हैं। अष्ट द्रव्य चढ़ाने के सम्बन्ध में वर्तमान में स्पष्ट दो मत हैं। प्रथम पक्ष के अनुसार तो अचित्त प्रासुक द्रव्य ही पूजन के योग्य हैं। यह पक्ष सचित्त द्रव्य को हिंसामूलक होने से स्वीकार नहीं करता तथा दूसरा पक्ष पूजन सामग्री में सचित्त अर्थात् हरितकाय फल-फूल एवं पकवान व मिष्ठान्न को भी पूजन के अष्ट द्रव्य में सम्मिलित करता है।

इस सम्बन्ध में यदि हम अपना पक्षव्यामोह छोड़कर साम्यभाव से आगम का अध्ययन करें और उनकी नय विवक्षा को समझने का प्रयत्न करें तो हमें बहुत कुछ समाधान मिल सकता है।

पूजन के छन्दों के आधार पर जिन लोगों का यह आग्रह रहता है कि- जब हम विविध फलों और पकवानों के नाम बोलते हैं तो फिर उन्हें ही क्यों न चढ़ायें? भले ही वे सचित्त हों, अशुद्ध हों।

उनसे हमारा अनुरोध है कि हमारी पूजा में आद्योपान्त एक वस्तु भी तो वास्तविक नहीं है। स्वयं हमारे पूज्य परमात्मा की स्थापना एक पाषाण की प्रतिमा में की गई है। देवकृत दिव्य समवशरण की स्थापना सीमेंट, ईंट-पत्थर के बने मन्दिर में की गई है। स्वयं पूजक भी असली इन्द्र कहाँ है? जब आद्योपान्त सभी में स्थापना निक्षेप से काम चलाया गया है तो अकेले अष्ट द्रव्य के सम्बन्ध में ही हिंसामूलक सचित्त मौलिक वस्तु काम में लेने का हठाग्रह क्यों?

सचित्त पूजा करनेवाले क्या कभी पूजा में उल्लिखित सामग्री के अनुसार पूरा निर्वाह कर पाते हैं? जरा विचार करें - पूजाओं के पदों में तो कंचन-झारी में क्षीरसागर का जल एवं रत्नदीप समर्पित करने की तथा नाना प्रकार के सरस व्यंजनों से पूजा करने की बात आती है; पर आज क्षीरसागर का जल तो क्या कुएँ का पानी कठिन हो रहा है और रत्नदीप तो हमने केवल

पुस्तकों में ही देखे हैं।[१] आखिर में जब सभी जगह कल्पना से ही काम चलाना पड़ता है, तब हम क्यों नहीं अहिंसामूलक शुद्ध वस्तु से ही काम चलायें? आगमानुसार भी पूजा में तो भावों की ही मुख्यता होती है, द्रव्य की नहीं। द्रव्य तो आलम्बन मात्र है। जैसे विशुद्ध परिणाम होंगे, फल तो वैसा ही मिलेगा।

कहा भी है–

''जीवन के परिणामन की अति विचित्रता देखहु प्राणी।
बन्ध–मोक्ष परिणामन ही तैं कहत सदा है जिनवाणी।।''

यद्यपि यह बात सच है कि पद्मपुराण, वसुनन्दि श्रावकाचार, सागार धर्मामृत, तिलोयपण्णत्ति और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पाठों में सचित्त द्रव्यों द्वारा की गई पूजा की खूब खुलकर चर्चा है, परन्तु क्या कभी आपने यह देखने व समझने का भी प्रयास किया है कि ये पूजायें किसने, कब, कहाँ कीं और किन–किन द्रव्यों से कीं?

लगभग सभी चर्चायें इन्द्रध्वज, अष्टाह्निका, कल्पद्रुम, सदार्चन एवं चतुर्मुख पूजाओं से सम्बन्धित हैं, जो सर्वशक्तिसम्पन्न इन्द्रगण, देवगण, पुराणपुरुष, चक्रवर्ती एवं मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा दिव्य निर्जन्तुक सामग्री से की जाती हैं। हम सब स्वयं अकृत्रिम चैत्यालयों के अंत में अंचलिका के रूप में पढ़ते हैं– ''चहुविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं अच्चन्ति पुज्जन्ति वन्दन्ति णमस्संति। अहमवि इह सन्तोतत्थ संताई णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वन्दामि णमस्सामि'' अर्थात् सभी सामग्री देवोपनीत कल्पवृक्षों से प्राप्त दिव्य प्रासुक निर्जन्तुक होती है।[२]

इस सम्बन्ध में पण्डित सदासुखदासजी के निम्नांकित विचार दृष्टव्य हैं–

''इस कलिकाल में भगवान प्ररूप्या नयविभाग तो समझे नाहीं, अर शास्त्रनि में प्ररूपण किया तिस कथनी कूं नयविभाग तैं जाने नाहीं, अर अपनी कल्पना तैं ही पक्षग्रहण करि यथेच्छ प्रवर्ते हैं।''[३]

---

१. ''वर नीर क्षीर समुद्र घट भरि अग्र तसु वहु विधि नचूँ' - देव-शास्त्र-गुरु पूजा : कविवर द्यानतराय
२. तिलोयपण्णत्ति ३/२२३–२२६ में भी इसी तरह का उल्लेख है।
३. रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका, पण्डित सदासुखदास, श्लोक १११, पृष्ठ–२११

सचित्त द्रव्यों से पूजन करने का निषेध करते हुए वे आगे लिखते हैं–

''इस दुषमकाल में विकलत्रय जीवनि की उत्पत्ति बहुत है, अर पुष्पनि में बेंद्री, तेन्द्री, चौइन्द्री, पंचेन्द्री त्रस जीव प्रगट नेत्रनि के गोचर दौड़ते देखिये हैं... । अर पुष्पादि में त्रस जीव तो बहुत ही हैं। अर बादर निगोद जीव अनंत हैं... । तातैं ज्ञानी धर्म बुद्धि हैं ते तो समस्त कार्य यत्नाचार तैं करो.... ।''[1]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि आगम में सचित्त व अचित्त द्रव्य से पूजन का विधान है, वह कहाँ किस अपेक्षा है – यह समझकर हमें अचित्त द्रव्य से ही पूजा करना चाहिए। पण्डित सदासुखदासजी के ही शब्दों में –

''जे सचित्त के दोष तैं भयभीत हैं, यत्नाचारी हैं, ते तो प्रासुक जल,गन्ध, अक्षत कूं चन्दन कुमकुमादि तैं लिप्त करि, सुगन्ध रंगीन चावलों में पुष्पनि का संकल्प कर पुष्पनि तैं पूजैं हैं तथा आगम में कहे सुवर्ण के पुष्प व रूपा के पुष्प तथा रत्नजटित सुवर्ण के पुष्प तथा लवंगादि अनेक मनोहर पुष्पनि करि पूजन करें हैं, बहुरि रत्ननि के दीपक व सुवर्ण रूपामय दीपकनि करि पूजन करें हैं तथा बादाम, जायफल, पूंगीफलादि विशुद्ध प्रासुक फलनि तैं पूजन करैं हैं।''[2]

यद्यपि पूजन में सर्वत्र भावों की ही प्रधानता है, तथापि अष्ट द्रव्य भी हमारे उपयोग की विशेष स्थिरता के लिए अवलम्बन के रूप में पूजन के आवश्यक अंग माने गये हैं। आगम में भी पूजन के अष्ट द्रव्यों का विधान है, किन्तु पूजन–सामग्री में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि ऐसी कोई वस्तुपूजन के अष्ट द्रव्य में सम्मिलित न हो, जो हिंसामूलक हो और जिसके कारण लोक की जगत की संचालन व्यवस्था में कोई बाधा या अवरोध उत्पन्न होता हो।

यही कारण है कि गेहूँ, चना, जौ आदि अनाजों को पूजन–सामग्री में सम्मिलित नहीं किया गया है; क्योंकि वे बीज हैं, बोने पर उगते हैं। देश की आवश्यकता की पूर्ति के साथ–साथ समृद्धि के भी साधन हैं। इसी हेतु से दूध दही–घी आदि का भी अभिषेक, पूजन एवं हवन आदि में उपयोग नहीं होना चाहिए। तथा

---

१. रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका, पण्डित सदासुखदास, श्लोक ११९, पृष्ठ २११
२. रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका, पण्डित सदासुखदास, श्लोक ११९, पृष्ठ २०६

इसीकारण निष्तुष-निर्मल-शुभ्र तण्डुल और जल-चन्दन-नैवेद्य-दीप-धूप-फल आदि प्राकृतिक व सूखे-पुराने प्रासुक पदार्थ ही पूजन के योग्य कहे गये हैं।

भले ही जल-चन्दन-नैवेद्य-दीप-धूप और फल आदि लौकिक दृष्टि से सोना-चाँदी एवं जवाहरात की भाँति बहुमूल्य नहीं हों, किन्तु जीवनोपयोगी होने से ये पदार्थ बहुमूल्य ही नहीं, बल्कि अमूल्य भी हैं। जल भले ही बिना मूल्य के मिल जाता हो, परन्तु जल के बिना जीवन संभव नहीं है, इसीकारणउसे जीवन भी कहा है। तथा चन्दन, अक्षत, दीप, धूप, पुष्प, फलादि सामग्री भले ही जल की भाँति जीवनोपयोगी न हो, तथापि ''कर्पूरं घनसारं च हिमं सेवते पुण्यवान्'' की उक्त्यनुसार इसका सेवन (उपभोग) पुण्यवानों को हीप्राप्त होता है। इसतरह यद्यपि ये पदार्थ भी सम्मानसूचक होने से पूजन के योग्य माने गये हैं, किन्तु अहिंसा की दृष्टि से इन सबका प्रासुक व निर्जन्तुक होना आवश्यक है।

जब हमारे यहाँ कोई विशिष्ट अतिथि (मेहमान) आते हैं तो हम उनके स्वागत में अपने घर में उपलब्ध उत्कृष्टतम पदार्थ उनकी सेवा में समर्पित करते हैं। स्वयं तो स्टील की थाली में भोजन करते हैं किन्तु उन्हें चाँदी की थाली में कराते हैं। स्वयं पुराने कम्बल-चादर ओढ़ते-बिछाते हैं और मेहमान के लिए नये-नये वस्त्र-बर्तन आदि काम में लेते हैं। उसीतरह जिनेन्द्र भगवान की पूजन के लिए आचार्यों ने उत्तमोत्तम बहुमूल्य जीवनोपयोगी और सम्मानसूचक पदार्थों को समर्पण करने की भावना प्रकट की है।

परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि जो-जो पदार्थ पूजनों में लिखे हैं, वे सभी पदार्थ उसी रूप में पूजन में अनिवार्य रूप से होने ही चाहिए। जिसके पास जो संभव हो, अपनी शक्ति और साधनों के अनुसार प्राप्त पूजन सामग्री द्वारा पूजन की जा सकती है। इतना अवश्य है कि वह पूजन सामग्री अचित्त, निर्जन्तुक-प्रासुक व पवित्र हो।

मोक्षमार्गप्रकाशक में श्री टोडरमलजी ने भी यह लिखा है -

''केवली के व प्रतिमा के आगे अनुराग से उत्तम वस्तु रखने का दोष नहीं है। धर्मानुराग से जीवन का भला होता है।''[१]

---

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पाँचवाँ अधिकार, पृष्ठ १६४, पंक्ति ९

इसी अभिप्राय से आचार्यों ने अष्टद्रव्यों में उत्तमोत्तम कल्पनायें की हैं- मणिजड़ित सोने की झारी और उसमें क्षीरसागर या गंगा का निर्मल जल, रत्नजड़ित मणिदीप, उत्तमोत्तम पकवान एवं सुस्वादु सरस फल आदि।

यही कारण है कि अब तक उपलब्ध प्राचीन पूजन साहित्य में अधिकांशतः यही धारा प्राप्त होती है। सब कुछ बढ़िया होने पर भी इसमें कभी-कभी ऐसा लगने लगता है कि हम जिनेन्द्र देव के नहीं, उन्हें चढ़ाई जानेवाली सामग्री के गीत गा रहे हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि हम जल-फल आदि की प्रशंसा में इतने मग्न हो जाते हैं कि भगवान को भी भूल जाते हैं।

शायद हमारी इसी कमजोरी को ध्यान में रखकर आज जो नई आध्यात्मिक धारायें विकसित हो रहीं हैं, उनमें जल-फलादि सामग्री के गुणगान की अपेक्षा उनको प्रतीक बनाकर जिनेन्द्र भगवान के अधिक गुण गाये गये हैं तथा जीवनोपयोगी बहुमूल्य सुन्दरतम जलादि सामग्री की अनुशंसा की अपेक्षा सुख और शान्ति की प्राप्ति में उनकी निरर्थकता अधिक बताई गई है; इसी कारण उसके त्याग की भावना भी भायी गई है।

यह बात भी नहीं है कि यह धारा आधुनिक युग की ही देन हो। क्षीण रूप में ही सही, पर यह प्राचीन काल में भी प्रवाहित थी। इस युग में यह मूलधारा के रूप में चल रही है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान में हिन्दी पूजन साहित्य में मुख्यरूप से तीन धारायें प्रवाहित हो रही हैं :-

१. पहली तो चढ़ाये जानेवाले द्रव्य की विशेषताओं की निरूपक।

२. दूसरी द्रव्यों के माध्यम से पूज्य परमात्मा के गुणानुवाद करने वाली।

३. तीसरी लौकिक जीवनोपयोगी एवं सम्मानसूचक बहुमूल्य पदार्थों की आध्यात्मिक जीवन की समृद्धि में निरर्थकता बताकर उन्हें त्यागने की भावना व्यक्त करनेवाली।

प्रथम धारा की बात तो स्पष्ट हो ही चुकी। दूसरी धारा में कविवर द्यानतराय का निम्नांकित छन्द द्रष्टव्य है :-

"उत्तम अक्षत जिनराज पुंज धरें सोहें।
सब जीते अक्ष समाज तुम-सम अरु को है।।"[१]

उक्त छन्द में अक्षतों (सफेद चावलों) के अवलम्बन से जिनराज को ही उत्तम अक्षत कहा गया है।

यहाँ कवि का कहना है कि - हे जिनराज! अनन्तगुणों के समूह (पुंज) से शोभायमान, कभी भी नाश को प्राप्त न होनेवाले अक्षय स्वरूप होने से आप ही वस्तुतः उत्तम अक्षत हो। आपने समस्त अक्षसमाज (इन्द्रिय समूह) को जीत लिया है; अतः हे जितेन्द्रियजिन! आपके समान इस जगत में और कौन हो सकता है? सचमुच देखा जाये तो आप ही सच्चे अक्षत हो, अखण्ड व अविनाशी हो।

उक्त सन्दर्भ में निम्नांकित पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं :-

सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर तुम ही अखण्ड अविनाशी हो।[२]
प्रभुवर तुम जल-से शीतल हो, जल-से निर्मल अविकारी हो।
मिथ्यामल धोने को प्रभुवर, तुम ही तो मल परिहारी हो।।[३]

तीसरी धारा में आनेवाली सर्वस्व समर्पण की भावना से ओत-प्रोत निम्नांकित प्राचीन पूजन की पंक्तियाँ भी अपने आप में अद्भुत हैं :-

यह अरघ कियो निज हेत, तुम को अरपत हों।
द्यानत कीनो शिवखेत, भूमि समरपत हों।।[४]

इस सन्दर्भ में आधुनिक पूजन की निम्न पंक्तियाँ भी दृष्टव्य हैं -

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे! पूर्णता पाने में, क्या इसकी है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।[५]

श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' कृत देव-शास्त्र-गुरु-पूजन में यह भावना भी सशक्त रूप में व्यक्त हुई है :-

---

१. कविवर द्यानतराय : नन्दीश्वर पूजन।
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : सिद्ध पूजन।
३. वही : सीमन्धर पूजन।
४. कविवर द्यानतराय : नन्दीश्वर पूजन।
५. हुकमचन्द भारिल्ल : देव-शास्त्र-गुरु-पूजन।

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु भूख न मेरी शांति हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही।।
युग-युग से इच्छा-सागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
पंचेन्द्रिय मन के षट्रस तज, अनुपम रस पीने आया हूँ।।

× × ×

जग के जड़ दीपक को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
झँझा के एक झकोरे में, जो बनता घोर तिमिर कारा।।*
अत एव प्रभो ! यह ज्ञान-प्रतीक, समर्पित करने आया हूँ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर दीप जलाने आया हूँ।।

डॉ. भारिल्ल की पूजनों में यह ध्वनि लगभग सर्वत्र ही सुनाई देती है। सिद्ध पूजन के अर्घ्य के छन्द में यह बात सटीक रूप में व्यक्त हुई है :-

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
पहनीं, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की।।
सुरभी धूपायन की फैली, शुभ कर्मों का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया।।
जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ।।
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

पूजन पढ़ते समय जब तक उसका भाव पूरी तरह ध्यान में न आये, तब तक उसमें जैसा मन लगना चाहिए, वैसा लगता नहीं है। इसके लिए आवश्यक यह है कि पूजन साहित्य सरल और सुबोध भाषा में लिखा जाये। यद्यपि प्राचीन पूजनें अपने युग की अत्यन्त सरल एवं सुबोध ही हैं, तथापि काल परिवर्तन के प्रवाह से उनकी भाषा वर्तमान युग के पाठकों को सहज ग्राह्य नहीं रही है। ऐसी स्थिति में आवश्यकता इस बात की है कि अधिक से अधिक पूजनें आज की सरल-सुबोध भाषा में भी लिखी जायें और उनका भी प्रचार-

---

* लेखक द्वारा उक्त छन्द में परिवर्तन कर निम्नप्रकार कर दिया गया है।

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु! चिर व्याप्त भयंकर अँधियारा।
श्रुत-दीप बुझा हे करुणानिधि! बीती नहिं कष्टों की कारा।।

प्रसार हो; साथ ही यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि नये और सरल-सुबोध के व्यामोह में हम अपनी पुरातन निधि को भी न बिसर जायें। आवश्यकता समुचित सन्तुलन की है। न तो हम प्राचीनता के व्यामोह में विकास को अवरुद्ध करें और न ही सरलता के व्यामोह में पुरातन को विस्मृति के गर्त में डाल दें। नई पूजनें बनाने के व्यामोह में आगम-विरुद्ध रचना न हो जाये - इसका भी ध्यान रखना अत्यावश्यक है।

प्राचीन इतिहास सुरक्षित रखने के साथ-साथ हर युग में नया इतिहास भी बनना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि भविष्य के लोग कहें कि इस युग में ऐसे भक्त ही नहीं थे, जो पूजनें लिखते। नवनिर्माण की दृष्टि से भी युग को समृद्ध होना चाहिए और प्राचीनता को सँजोने में भी पीछे नहीं रहना चाहिए।

प्राचीन भक्ति साहित्य में समागत कुछ कथनों पर आज बहुत नाक-भौंह सिकोड़ी जाती है। कहा जाता है कि उस पर कर्तावाद का असर है; क्योंकि उसमें भगवान को दीन-दयाल, अधम-उधारक, पतित-पावन आदि कहा गया है। भगवान से पार लगाने की प्रार्थनायें भी कम नहीं की गई हैं; पर ये सब व्यवहार के कथन हैं। व्यवहार से इसप्रकार के कथन जिनागम में भी पाये जाते हैं; पर उन्हें औपचारिक कथन ही समझना चाहिए।

मूलाचार के पाँचवें अधिकार की १३७वें गाथा में ऐसे कथनों को असत्य-मृषा भाषा के प्रभेदों में याचिनी भाषा बतलाया है। जिस भाषा के द्वारा किसी से याचना-प्रार्थना की जाती है। जो न सत्य हो और न झूठ हो।[१] पाँचवें अधिकार की १२९वीं गाथा के अर्थ में भाषा समिति के रूप में भी यही बताया है।[२] इससे ये कथन निर्दोष ही सिद्ध होते हैं।

उक्त सन्दर्भ में पण्डित टोडरमलजी का निम्नांकित कथन भी द्रष्टव्य है-

''तथा उन अरहन्तों को स्वर्ग-मोक्षदाता, दीनदयाल, अधम-उधारक, पतित-पावन मानता है; उसीप्रकार यह भी कर्तृत्व बुद्धि से ईश्वर को मानता

१. मूलाचार, पृष्ठ १८९ (शास्त्रागार प्रति, शोलापुर)
२. मूलाचार, पृष्ठ १८६

है। ऐसा नहीं जानता कि फल तो अपने परिणामों का लगता है, अरहन्त तो उनको निमित्तमात्र है; इसलिए उपचार द्वारा वे विशेषण सम्भव होते हैं।

अपने परिणाम शुद्ध हुए बिना अरहन्त ही स्वर्ग-मोक्षादि के दाता नहीं हैं। तथा अरहन्तादिक के नामादिक से श्वानादिक ने स्वर्ग प्राप्त किया, वहाँ नामादिक का ही अतिशय मानते हैं; परन्तु बिना परिणाम के नाम लेनेवाले को भी स्वर्ग प्राप्ति नहीं होती, तब सुननेवाले को कैसे होगी? श्वानादिक को नाम सुनने के निमित्त से कोई मन्दकषाय रूप भाव हुए हैं, उनका फल स्वर्ग हुआ; उपचार से नाम ही की मुख्यता की है।

तथा अरहन्तादिक के नाम-पूजनादि से अनिष्ट सामग्री का नाश तथा इष्ट सामग्री की प्राप्ति मानकर रोगादि मिटाने के अर्थ व धनादिक की प्राप्ति के अर्थ नाम लेता है व पूजनादि करता है। सो इष्ट-अनिष्ट का कारण तो पूर्व कर्म का उदय है, अरहन्त तो कर्ता हैं नहीं। अरहन्तादिक की भक्ति रूप शुभोपयोग परिणामों से पूर्व पाप के संक्रमणादि हो जाते हैं, इसलिए उपचार से अनिष्ट के नाश का व इष्ट की प्राप्ति का कारण अरहन्तादिक की भक्ति कही जाती है; परन्तु जो जीव प्रथम से ही सांसारिक प्रयोजन सहित भक्ति करता है, उसके तो पाप ही का अभिप्राय हुआ कांक्षा, विचिकित्सारूप भाव हुए; उनसे पूर्वपाप के संक्रमणादि कैसे होंगे? इसलिए उसका कार्य सिद्ध नहीं हुआ।

तथा कितने ही जीव भक्ति को मुक्ति का कारण जानकर वहाँ अति अनुरागी होकर प्रवर्तते हैं। वह तो अन्यमती जैसे भक्ति से मुक्ति मानते हैं, वैसा ही इनके भी श्रद्धान हुआ; परन्तु भक्ति तो रागरूप है और राग से बन्ध है, इसलिए मोक्ष का कारण नहीं है। जब राग का उदय आता है, तब भक्ति न करें तो पापानुराग हो, इसलिए अशुभ राग छोड़ने के लिए ज्ञानी भक्ति में प्रवर्तते हैं और मोक्षमार्ग का बाह्य निमित्त मात्र भी जानते हैं; परन्तु यहाँ ही उपादेयपना मानकर संतुष्ट नहीं होते, शुद्धोपयोग के उद्यमी रहते हैं।''[१]

---

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २२२

पुजारी को पूज्य के स्वरूप का भी सच्चा परिज्ञान होना चाहिए। जिसकी पूजा की जा रही है, उसके स्वरूप की सच्ची जानकारी हुए बिना भी पूजा और पुजारियों की भावना में अनेक विकृतियाँ पनपने लगती हैं।

प्रसन्नता की बात है कि आधुनिक युग में लिखी जानेवाली पूजनों में इस बात का भी ध्यान रखा जा रहा है। पूज्यों में मुख्यतः देव-शास्त्र-गुरु ही आते हैं। आधुनिक युग में लिखी गई देव-शास्त्र-गुरु पूजनों की जयमालाओं में उनकी भक्ति करते हुए उनके स्वरूप पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

गुरु के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाली निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

हे गुरुवर! शाश्वत सुख-दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा दिग्दर्शन करने वाला है।।
जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विषकंटक बोता हो।।
हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिन्तन करते हो।।
करते तप शैल नदी तट पर, तरु तल वर्षा की झड़ियों में।
समता रस पान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में।।[१]
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु सम्भाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रकट हो रहा अन्तर्मन।।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो।
ज्ञानी ध्यानी समरस सानी, द्वादश विधि तप नित करते जो।।[२]

सच्चे देव के स्वरूप को समझने में हमसे क्या भूल हो जाती है और उसका क्या परिणाम निकलता है? यह बात निम्नांकित पंक्तियों में कितनी सहजता से व्यक्त हो गई है -

---

१. श्री जुगलकिशोर 'युगल' : देव-शास्त्र-गुरु पूजन, जयमाला।
२. वही।

करुणानिधि तुम को समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहचाना।।[1]

इसीप्रकार शास्त्र के यथार्थ स्वरूप को दर्शानेवाली निम्नांकित पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं -

महिमा है अगम जिनागम की, महिमा है........।।टेक।।
जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूरति आतम की।
रागादिक दुःख कारन जानैं, त्याग दीनि बुद्धि भ्रम की।
ज्ञान ज्योति जागी उर अन्तर, रुचि वाढ़ी पुनि शम-दम की।।[2]
वीतरागता की पोषक ही जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर जो हमको दिखलाती है।।[3]
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूँथे बारह सुअंग।
रवि-शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति लाय।।[4]

देखो, शास्त्र का स्वरूप लिखते हुए सभी कवियों ने इसी बात पर ही जोर दिया है कि जिनवाणी रूपी गंगा वह है जो - अनेकान्तमय वस्तुस्वरूप को दर्शानेवाली हो, भेदविज्ञान प्रकट करनेवाली हो, मिथ्यात्वरूप महातम का विनाश करनेवाली हो, विविध नयों की कल्लोलों से विमल हो, स्याद्वादमय व सप्तभंग से सहित हो और वीतरागता की पोषक हो। जो राग-द्वेष को बढ़ाने में निमित्त बने, वह वीतराग वाणी नहीं हो सकती।

जिनवाणी की परीक्षा उपर्युक्त लक्षणों से ही होनी चाहिए। किसी स्थान विशेष से प्रकाशित होने से उसमें भक्ति या अभक्ति प्रकट करना या सच्चे-झूठे का निर्णय करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। ●

---

१. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : देव-शास्त्र-गुरु-पूजन, जयमाला।
२. कविवर भागचन्दजी : जिनवाणी स्तुति।
३. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : देव-शास्त्र-गुरु पूजन, जयमाला।
४. कविवर द्यानतराय : देव-शास्त्र-गुरु पूजन, जयमाला।

सिद्धचक्र-मण्डल विधान : अनुशीलन

हिन्दी पूजन-भक्ति साहित्य में एक विधा मंडल पूजन-विधान की भी है। ये मंडल पूजन-विधान विशेष अवसरों पर विशेष आयोजनों के साथ किये जाते हैं। इस विधा के कवि संतलाल, टेकचन्द, स्वरूपचन्द, वृन्दावन आदि हैं।

पूजा-विधानों में सिद्धचक्रविधान का सर्वाधिक महत्त्व है; क्योंकि सिद्धचक्रविधान का प्रयोजन सिद्धों के गुणों का स्मरण करते हुए अपनी आत्मा को सिद्धदशा तक पहुँचाना होता है और आत्मा के लिए इससे उत्कृष्ट अन्य उद्देश्य नहीं हो सकता।

हिन्दी विधानों में सिद्धचक्रमंडल विधान के रचयिता कविवर संतलाल का नाम सर्वोपरि है; क्योंकि उनकी यह रचना साहित्यिक दृष्टि से तो उत्तम है ही, साथ ही भक्ति काव्य होते हुए भी आध्यात्मिक एवं तात्त्विक भावों सेभरपूर है। एक-एक अर्घ्य के पद का अर्थगांभीर्य एवं विषयवस्तु विचारणीय है।

तत्त्वज्ञानपरक, जाग्रतविवेक, विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि एवं निष्काम भक्ति की त्रिवेणी जैसी इसमें प्रवाहित हुई है, वैसी अन्यत्र दिखाई नहीं देती। निश्चय ही हिन्दी विधान-पूजा साहित्य में कविवर संतलाल का उल्लेखनीय योगदानहै।

इस विधान की आठों जयमालायें एक से बढ़कर एक हैं। सभी में सिद्धों का विविध आयामों से तत्त्वज्ञानपरक गुणगान किया गया है। इनमें न तो कहीं लौकिक कामनाओं की पूर्ति विषयक चाह ही प्रकट की गई है और न प्रलोभन ही दिया गया है।

पहली जयमाला में ही सिद्धभक्ति के माध्यम से गुणस्थान क्रम में संसारी से सिद्ध बनने की सम्पूर्ण प्रक्रिया अति संक्षेप में जिस खूबी से दर्शाई गई है, वह द्रष्टव्य है :-

जय करण कृपाण सु प्रथम वार, मिथ्यात्व-सुभट कीनो प्रहार।
दृढ़ कोट विपर्ययमति उलंघि, पायो समकित थल थिर अभंग॥१॥
निजपर विवेक अन्तर पुनीत, आतमरुचि वरती राजनीत।
जगविभव विभाव असार एह, स्वातम सुखरस विपरीत देह॥२॥
तिन नाशन लीनो दृढ़ सँभार, शुद्धोपयोग चित्त चरण सार।
निर्ग्रन्थ कठिन मारग अनूप, हिंसादिक टारन सुलभ रूप॥३॥
लखि मोह शत्रु परचण्ड जोर, तिस हनन शुकल दल ध्यान जोर।
आनन्द वीररस हिये छाय, क्षायिक श्रेणी आरम्भ थाय॥४॥

सांगरूपक के रूप में इसमें जीवराजा और मोहराजा के मध्य हुए घमासान युद्ध का चित्रण किया गया है। सर्वप्रथम जीवरूप राजा अधःकरण, अपूर्वकरण एवं अनिवृत्तिकरण गुणस्थान रूप कृपाण से मिथ्यात्व रूप सुभट पर प्रहार करता है तथा विपरीत बुद्धिरूप ऊँचे कोट को लाँघकर सम्यग्दर्शन रूप सुखद, समतल स्थित भूमि पर अधिकार कर लेता है और आत्मरुचि एवं स्वपर-भेदविज्ञान की सात्विक राजनीति आरम्भ हो जाती है तथा आत्मस्वभाव के विपरीत जगत के वैभव और विभावभावों के अभाव के लिए शुद्धोपयोग को दृढ़ता से धारण करता है।

अन्त में आनन्दरूप वीर रस से उत्साहित होकर जीवराजा ने मोहरूप राजा को सदा के लिए मृत्यु की गोद में सुला दिया और तेरहवें गुणस्थान की पावन भूमि में प्रवेश कर अनंत आनंद का अनुभव करते हुए अपनी सनातन रीति के अनुसार मोहराजा के उपकरणरूप शेष अघातिया कर्मों का भी अभाव करके अनंतकाल के लिए सिद्धपुर का अखण्ड साम्राज्य प्राप्त कर लिया।

इसप्रकार हम देखते हैं कि इस पूजन में तत्त्वज्ञान तो पद-पद में दर्शनीय है ही, भक्ति-भावना की भी कहीं कोई कमी नहीं है। तत्त्वज्ञान या अध्यात्म के कारण भक्ति रस के प्रवाह में कहीं कोई अवरोध या व्यवधान नहीं आने पाया है। इसप्रकार संत कवि कृत सिद्धचक्र मण्डल विधान पूजन-विधान साहित्य में अभूतपूर्व-अद्वितीय उपलब्धि है। इसको जितने अधिक ध्यान से पढ़ा व सुना जा सके, उतना ही अधिक लाभ होगा।

जैनदर्शन अकर्त्तावादी दर्शन है। इसके अनुसार प्रत्येक आत्मा स्वभाव से स्वयं भगवान है और यदि जिनागम में बताये मार्ग पर चले, स्वयं को जाने, पहचाने और स्वयं में ही समा जाये तो प्रकट रूप से पर्याय में भी परमात्मा बन जाता है।

जैनदर्शन के अनुसार परमात्मा बनने की प्रक्रिया पूर्णतः स्वावलम्बन पर आधारित है। किसी की कृपा से दुःखों से मुक्ति संभव नहीं है; अतः जैनदर्शन का भक्ति साहित्य अन्य दर्शनों के समान कर्त्तावाद का पोषक नहीं हो सकता।

प्रायः देखा जाता है कि इस विधान को करनेवाले अधिकांश व्यक्ति अपने मन में व्यक्त या अव्यक्त रूप में कोई न कोई मनौती या लौकिक प्रयोजन की पूर्ति की भावना संजोये रहते हैं, जो कभी-कभी उनकी वाणी में भी व्यक्त हो जाती है।

वे कहते हैं-''जब हमारा बच्चा बीमार पड़ा था, बचने की आशा नहीं रही, डॉक्टरों ने जवाब दे दिया तो हमने भगवान से मन ही मन यह प्रार्थना की- हे प्रभु! यदि बच्चा अच्छा हो गया तो सिद्धचक्र मण्डल विधान रचायेंगे।''

''जब हमारे यहाँ आयकर वालों की रेड़ पड़ी (छापा पड़ा) और हमारा सारा सोना-चाँदी एवं जवाहरात जब्त हो गया, तब हमने यह संकल्प किया था कि- यदि माल वापस मिल गया तो....।''

''जब गुस्से में आकर हमारे बच्चे से गोली चल जाने से किसी की मौत हो गई और उससे फौजदारी का केस दायर हो गया, तब हमने यह भावना भायी कि हे भगवान! यदि बेटा बरी हो गया, हम केस जीत गये तो हम....।''

फिर उनमें से कोई कहेगा-''अरे भाई! सिद्धचक्र विधान में बड़ी सिद्धि है, हमारा बच्चा तो एकदम ठीक हो गया। ऑपरेशन में एक लाख रुपया लग गया तो क्या हुआ, पर भगवान की कृपा से वह बिलकुल ठीक है; अतः हमें विधान तो कराना ही है।''

दूसरा कहेगा - ''हमने तो विधान में पैसा पानी की तरह बहाया, परन्तु क्या बतायें जब्त हुए माल का एक फुल्टा भी तो वापस नहीं मिला, उल्टा जुर्माना और भरना पड़ा। इसकारण अपनी तो भाई! अब पूजा-पाठ में कुछ श्रद्धा नहीं रही।''

तीसरा कहेगा – "भाई! विधान में पैसा तो हमने भी कम खर्च नहीं किया था, परन्तु हम तो यह समझते हैं कि जब अपना भाग्य खोटा हो तो बेचारे भगवान भी क्या कर सकते हैं? – जैसी करनी, वैसी भरनी। फिर भी भाई! हमारा तो भगवान की दया से जो भी हुआ अच्छा ही हुआ। विधान न करते तो केस तो फाँसी का ही था, फाँसी से बच भी जाते तो जन्मभर की जेल तो होती ही, परन्तु विधान का ही प्रताप है कि तीन साल की सजा से पल्ला छूट गया। धन्य है भाई! भगवान की महिमा.... ।"

इसप्रकार जो सिद्धचक्र विधान हमें सिद्धचक्र में सम्मिलित करा सकता है, आत्मा के अनादिकालीन मिथ्यात्व, अज्ञान एवं कषायभावों के कोढ़ को कम कर सकता है, मिटा सकता है; हमने अपनी मान्यता में उसकी महिमा को मात्र शारीरिक रोग मिटाने या अपनी अत्यन्त तुच्छ-लौकिक विषय-कषाय जनित कामनाओं की पूर्ति करने तक ही सीमित कर दिया है तथा वीतराग भगवान को पर के सुख-दुःख का कर्ता-हर्ता मानकर अपने अज्ञान व मिथ्यात्व का ही पोषण किया है।

और मजे की बात तो यह है कि – अपने इस अज्ञान के पोषण में प्रथमानुयोग की शैली में लिखी गई श्रीपाल-मैनासुन्दरी की पौराणिक कथा को निमित्त बनाया है। परमपवित्र उद्देश्य से लिखी गई उस धर्मकथा का प्रयोजन तो केवल अज्ञानी-मिथ्यादृष्टि अव्युत्पन्न जीवों की पाप प्रवृत्ति को छुड़ाकर मोक्षमार्ग में लगाने का था, जिसे हमने मिथ्यात्व की पोषक बना दिया है। इससे ज्ञात होता है कि अज्ञानी शास्त्र को शस्त्र कैसे बना लेते हैं?

क्या उपर्युक्त विचार मिथ्यात्व व अज्ञान के पोषक नहीं हैं और क्या सिद्धचक्र विधान की महिमा को कम नहीं करते? अरे! सिद्धों की आराधना का सच्चा फल तो वीतरागता की वृद्धि है; क्योंकि वे स्वयं वीतराग हैं। सिद्धों का सच्चा भक्त उनकी पूजा-भक्ति के माध्यम से किसी भी लौकिक लाभ की चाह नहीं रखता; क्योंकि लौकिक लाभ की चाह तीव्रकषाय के बिना सम्भव नहीं है और ज्ञानी भक्त को तीव्रकषाय रूप पाप भाव नहीं होता।

मैना सुन्दरी ने सिद्धचक्र विधान किया था, किन्तु पति का कोढ़ मिटाने के लिए नहीं किया था; बल्कि पति का दुःख देखकर उसे जो आकुलता होती थी, उससे बचने के लिए एवं पति का उपयोग जो बारम्बार पीड़ा चिन्तन रूप आर्तध्यानमय होता था, उससे बचाने के लिए सिद्धचक्र का पाठ किया था; क्योंकि मैना सुन्दरी तत्त्वज्ञानी तो थी ही और अगले भव में मोक्षगामी भी थी। कोटिभट राजा श्रीपाल भी तत्त्वज्ञानी व तद्भव मोक्षगामी महापुरुष थे। क्या वे यह नहीं जानते थे कि वीतरागी सिद्ध भगवान किसी का कुछ भला-बुरा नहीं करते? फिर भी अपनी आकुलता रूप पाप भाव से बचने के लिए एवं समता भाव बनाये रखने के लिए इससे बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है, अतः ज्ञानीजन भी यही सब करते हैं, पर कोई लौकिक सुख की कामना नहीं करते।

आगम में भी यही कहा है कि लौकिक अनुकूलताओं के लक्ष्य से वीतराग देव-गुरु-धर्म की आराधना से भी पापबन्ध ही होता है।

मोक्षमार्गप्रकाशक में पण्डित टोडरमलजी लिखते हैं -

"पुनश्च, इस (इन्द्रियजनित सुख की प्राप्ति एवं शारीरिक दुःख के विनाश रूप) प्रयोजन के हेतु अरहन्तादिक की भक्ति करने से भी तीव्र कषाय होने के कारण पापबन्ध ही होता है, इसलिए अपने को इस प्रयोजन का अर्थी होना योग्य नहीं है।"[१]

अतः हमें वीतराग देव-गुरु-धर्म (शास्त्र) का सही स्वरूप समझकर एवं उनकी भले प्रकार से पहचान व प्रतीति करके सभी पूजन-विधान के माध्यम से एक वीतराग भावों का ही पोषण करना चाहिए। ●

लौकिक सुख सेवा के लिए है, भोगों के लिए नहीं;
दुख विवेक के लिए है, भयातुर होने के लिए नहीं।

---

१. मोक्षमार्गप्रकाशक : प्रथम अध्याय, पृष्ठ ७

नवग्रह विधान : एक संभावना यह भी

जैनधर्म में एक वीतराग देव के सिवाय और कोई भी देव-देवी अष्ट्रद्रव्य द्वारा पूज्य नहीं हैं। नवदेव और कोई नहीं, प्रकारान्तरसे वीतराग देव के ही विविध रूप हैं। अरहंत व सिद्ध तो साक्षात् वीतराग हैं ही, आचार्य उपाध्याय व साधु भी वीतरागता के ही उपासक हैं तथा स्वयं भी एकदेश वीतरागी हैं। तथा जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा व जिनालय भी वीतराग के ही प्रतीक हैं। उक्तं च-

''अरहंत सिद्ध साहू तिदयं जिणधम्म वयण पडिमाहू ।।
जिणणिलया इदराए, णव देवा दिंतु मे बोहि ।।''

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर - ये नवदेव मुझे रत्नत्रय की पूर्णता देवें।

उपर्युक्त नवदेवों को एक जिनप्रतिमा में ही गर्भित बताते हुए रत्नकरण्ड श्रावकाचार में पं. सदासुखदासजी कहते हैं -

''सो जहाँ अरहंतनि का प्रतिबिम्ब है, तहाँ नवरूप गर्भित जानना; क्योंकि आचार्य, उपाध्याय व साधु तो अरहंत की पूर्व अवस्थायें हैं। अर सिद्ध पहले अरहंत होकर सिद्ध हुए हैं। अरहंत की वाणी सो जिनवचन है और वाणी द्वारा प्रकाशित हुआ अर्थ (वस्तु स्वरूप) सो जिनधर्म है। तथा अरहंत का स्वरूप (प्रतिबिम्ब) जहाँ तिष्ठै, सो जिनालय है। ऐसे नवदेवतारूप भगवान अरहंत के प्रतिबिम्ब का पूजन नित्य ही करना योग्य है।''[१]

नवग्रह विधान के आद्योपान्त अध्ययन से ऐसा लगता है कि इसकी रचना उन परिस्थितियों में हुई होगी, जब जैनेतर लोग ज्योतिष विद्या में अधिक विश्वास रखते थे तथा ग्रहों की चाल से ही अपने भले-बुरे भविष्य का निर्णय करते थे एवं ग्रहों के निमित्त से होनेवाले अरिष्टों (अनिष्टों) के निवारणार्थ ज्योतिषयों के निर्देशानुसार ग्रहों की शान्ति के लिए देवी-देवताओं की आराधना एवं मन्त्रों-तन्त्रों की साधना किया करते थे।

---

१. पं. सदासुखदास : रत्नकरण्ड श्रावकाचार वचनिका, पृष्ठ २०८

जब देखा कि जैनेतरों की भाँति जैन भी जिनेन्द्रदेव की आराधना छोड़कर उन्हीं देवी-देवताओं की ओर आकर्षित होकर अपने वीतराग धर्म से विमुख होते जा रहे हैं तो कतिपय विचारकों ने धर्म वात्सल्य एवं करुण भाव से नवग्रह विधान की रचना करके यह मध्यम मार्ग निकाला होगा, जिसमें उन्होंने स्पष्ट कहा कि- ग्रह शान्ति के लिए अन्य देवी-देवताओं के द्वार खटखटाने की जरूरत नहीं है, जिनेन्द्र देव की आराधना से ही अनिष्ट का निवारण होगा। कहा भी है-

"अर्क चन्द्र कुज सौम्य गुरु, शुक्र शनिश्चर राहु।
केतु ग्रहारिष्ट नाशनें, श्री जिनपूज रचाहु॥"[१]

× × ×

"श्री जिनवर पूजा किये, ग्रह अनिष्ट मिट जाय।
पंच ज्योतिषी देव सब, मिलि सेवें प्रभु पाय॥"[२]

यद्यपि सभी धर्मों में निष्काम भक्ति ही उत्कृष्ट मानी गई है, तथापि इसप्रकार की पूजा बनाने का मुख्य प्रयोजन यह था कि पूजक पहले देवी-देवताओं की पूजा छोड़कर जिनपूजा करना आरम्भ करे, जिससे गृहीत मिथ्यात्व से बच सके। तदर्थ यह बताना जरूरी था कि जिस फल की प्राप्ति के लिए तुम देवी-देवताओं को पूजते हो, वही सब फल जिनपूजा से प्राप्त हो जायेगा; अन्यथा वे उस गलत मार्ग को छोड़कर जिनमार्ग में नहीं आते। जिनेन्द्र पूजा से लौकिक फलों की पूर्ति की बात सर्वथा असत्यार्थ भी तो नहीं है; क्योंकि मन्दकषाय होने से जो सहज पुण्यबंध होता है, उससे सभी प्रकार की लौकिक अनुकूलतायें भी प्राप्त तो हो ही जाती हैं? तथापि कामना के साथ की गई पूजा-भक्ति निष्काम भक्ति की तुलना में हीन तो है ही - इस ध्रुव सत्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता।

कुछ लोग तो ग्रहों की शान्ति हेतु ग्रहों की भी पूजा करने लगे थे, उनकी दृष्टि से उपर्युक्त दूसरे दोहे में बताया गया है कि नवग्रहों की पूजा करना योग्य

१. नवग्रह विधान : प्रथम समुच्चय पूजा की स्थापना का दोहा।
२. नवग्रह विधान : प्रथम पूजा की जयमाला का प्रथम दोहा।

नहीं है; क्योंकि नवग्रहों के रूप में जो ये ज्योतिषीदेव हैं, वे स्वयं भी सब मिलकर जिनेन्द्र के चरणों की सेवा करते हैं।

नवग्रह विधान में इन्हीं उपर्युक्त नवदेवताओं की पूजन की जाती है, नवग्रहों की नहीं। जहाँ तक नवग्रहों की शान्ति का सवाल है, सो वह तो अपने पुण्य-पाप के आधीन है, किन्तु इतना अवश्य है कि वीतराग देव की निष्कामभक्ति करने से सहज ही पापकर्म क्षीण होते हैं और पुण्यकर्म बँधता है, इससे बाह्य अनुकूलता भी सहज ही प्राप्त हो जाती है। इस संबंध में पण्डित टोडरमलजी का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है :-

''यहाँ कोई कहे कि- जिससे इन्द्रियजनित सुख उत्पन्न हो तथा दुःख का विनाश हो- ऐसे भी प्रयोजन की सिद्धि इनके द्वारा होती है या नहीं? उसका समाधान :- जो अरहंतादि के प्रति स्तवनादि रूप विशुद्ध परिणाम होते हैं, उनसे अघातिया कर्मों की साता आदि पुण्य प्रकृतियों का बन्ध होता है और यदि वे (भक्ति-स्तवनादि) के परिणाम तीव्र हों तो पूर्वकाल में जो असाता आदि पाप-प्रकृतियों का बन्ध हुआ था, उन्हें भी मन्द करता है अथवा नष्ट करके पुण्यप्रकृतिरूप परिणमित करता है और पुण्य का उदय होने पर स्वयमेव इन्द्रियसुख की कारणभूत सामग्री प्राप्त होती है। तथा पाप का उदय दूर होने पर स्वयमेव दुःख की कारणभूत सामग्री दूर हो जाती है। इसप्रकार इस प्रयोजन की भी सिद्धि उनके द्वारा होती है। अथवा जो जिनशासन के भक्त देवादिक हैं, वे उस पुरुष को अनेक इन्द्रिय सुख की कारणभूत सामग्रियों का संयोग कराते हैं और दुःख की कारणभूत सामग्रियों को दूर करते हैं- इसप्रकार भी इस प्रयोजन की सिद्धि उन अरहंतादिक द्वारा होती है, परन्तु इस प्रयोजन से कुछ भी अपना हित नहीं होता, क्योंकि यह आत्मा कषाय भावों से बाह्य सामग्रियों में इष्ट-अनिष्टपना मानकर स्वयं ही सुख-दुःख की कल्पना करता है। कषाय बिना बाह्य सामग्री कुछ सुख-दुःख की दाता नहीं है। इसलिए इन्द्रियजनित सुख की इच्छा करना और दुःख से डरना- यह भ्रम है।''[१] ●

---

१. मोक्षमार्गप्रकाशक : पृष्ठ ६

आरती का अर्थ

'पूजन' शब्द की भाँति ही 'आरती' शब्द का अर्थ भी आज बहुत संकुचित हो गया है। आरती को आज एक क्रिया विशेष से जोड़ दिया गया है, जबकि आरती पंचपरमेष्ठी के गुणगान को कहते हैं। जिनदेव का गुणगान करना ही जिनेन्द्रदेव की वास्तविक आरती है।

पूजन साहित्य में 'आरती' शब्द जहाँ-जहाँ भी आया है, सभी जगह उसका अर्थ गुणगान करना ही है। इस संदर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण उद्धरण द्रष्टव्य हैं :-

देव-शास्त्र-गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न-भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार।।[१]

देखिए! इस पद्य में देव-शास्त्र-गुरु को तीन रत्न कहा गया है तथा इन तीनों रत्नों को क्रमशः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप तीनों रत्नों का कर्ता (निमित्त) कहा गया है। तथा 'भिन्न-भिन्न कहुँ आरती' कहकर तीनों का भिन्न-भिन्न गुणानुवाद करने का संकल्प किया गया है।

इसीप्रकार पंचमेरु पूजा, गुरु पूजा, दशलक्षणधर्म पूजा, क्षमावाणी पूजा, सिद्धचक्रमण्डल विधान आदि के निम्नांकित पदों से भी 'आरती' का अर्थ गुण-गान करना ही सिद्ध होता है।

पंचमेरु की 'आरती', पढ़ै सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभु, तुरत महासुख होय।।[२]

तीन घाटि नव कोड़ि सब, बन्दों शीश नवाय।
गुण तिन अट्ठाईस लों, कहूँ 'आरती' गाय।।[३]

दशलक्षण बन्दौ सदा, मनवांछित फलदाय।
कहों 'आरती' भारती, हम पर होहु सहाय।।[४]

उनतिस[५] **अंग की 'आरती', सुनो भविक चित लाय।**
मन-वच-तन सरधा करो, उत्तम नरभव पाय।।[६]

१. देव-शास्त्र-गुरु पूजन : कविवर द्यानतराय, जयमाला।
२. पंचमेरु पूजन (जयमाला का अन्तिम छन्द) : कविवर द्यानतराय।
३. गुरु पूजन : कविवर द्यानतराय, जयमाला का प्रथम छन्द।
४. दशलक्षण धर्म पूजा : जयमाला का प्रथम छन्द।
५. सम्यग्दर्शन के ८, सम्यग्ज्ञान के ८ व सम्यक्चारित्र के १३ : कुल २९ अंग हुए।
६. कविवर मल्ल, क्षमावाणी पूजन : जयमाला का प्रथम छन्द।

यह क्षमावाणी 'आरती', पढ़ै–सुनै जो कोय।
कहै 'मल्ल' सरधा करो, मुक्ति श्रीफल होय।।[१]

जग आरत भारत महा, गारत करि जय पाय।
विजय 'आरती' तिन कहूँ, पुरुषारथ गुण गाय।।[२]

मंगलमय तुम हो सदा, श्री सन्मति सुखदाय।
चाँदनपुर महावीर की, कहूँ 'आरती' गाय।।[३]

इसप्रकार पूजन साहित्य में आये उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि 'आरती' शब्द का अर्थ केवल स्तुति (गुणगान) करना है, अन्य कुछ नहीं। तथा उक्त सभी कथनों में – 'आरती' को पढ़ने, सुनने या कहने की ही बात कही गई है, इससे भी यही सिद्ध होता है कि 'आरती' पढ़ने, सुनने या कहने की ही वस्तु है, क्रियारूप में कुछ करने की वस्तु नहीं।

वैसे तो दीपक से आरती का दूर का भी सम्बन्ध नहीं है, परन्तु प्राचीनकाल में जिनालयों में न तो कोई बड़ी खिड़कियाँ होती थीं और न ऐसे रोशनदान ही, जिनसे पर्याप्त प्रकाश अन्दर आ सके। दरवाजे भी बहुत छोटे बनते थे तथा बिजली तो थी ही नहीं। इसकारण उन दिनों प्रकाश के लिए जिनालयों में दिन में भी दीपक जलाना अति आवश्यक था। तथा भले प्रकार दर्शन के लिए दीपक को हाथ में लेकर प्रतिमा के अंगोपांगों के निकट ले जाना भी जरूरी था क्योंकि दूर रखे दीपक के टिमटिमाते प्रकाश में प्रतिमा के दर्शन होना संभव नहीं था।

किन्तु आज जब जिनालयों में प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था है तो फिर दीपक की आवश्यकता नहीं रह जाती, तथापि या तो हमारी पुरानी आदत के कारण या फिर अनभिज्ञता के कारण आज अनावश्यक रूप से अखण्ड दीप जल रहा है तथा आरती का भी दीपक अभिन्न अंग बन बैठा है – इस कारण अब बिना दीपक के आरती आरती–सी ही नहीं लगती।

अतः आज के संदर्भ में दीपक व आरती का यथार्थ अभिप्राय व प्रयोजन जानकर प्रचलित प्रथा को सही दिशा देने का प्रयास करना चाहिए।

●

---

१. कविवर मल्ल, क्षमावाणी पूजन : जयमाला का अन्तिम छन्द।
२. संत कवि : सिद्धचक्र विधान : प्रथम पूजन, जयमाला।
३. चाँदनपुर महावीर पूजन : कवि पूरनमल जैन।

स्तुति (स्तोत्र) साहित्य

जैनदर्शन में विशाल पूजन साहित्य है, परन्तु उतना प्राचीन नहीं; जितना प्राचीन स्तुति साहित्य है। आचार्य समन्तभद्र के स्तोत्र जैनदर्शन के आद्य भक्ति साहित्य में गिने जा सकते हैं।

वर्तमान में सम्पूर्ण स्तोत्र साहित्य में भक्तामर स्तोत्र सर्वाधिक प्रचलित स्तोत्र है। लाखों लोग इस स्तोत्र द्वारा प्रतिदिन परमात्मा की आराधना करते हैं। सहस्रों मातायें-बहिनें तो ऐसी भी है, जो इस स्तोत्र का पाठ किये या सुने बिना जल तक ग्रहण नहीं करती हैं।

यद्यपि जिनेन्द्र भक्ति का स्तोत्र साहित्य भी एक सशक्त माध्यम रहा है, किन्तु कालान्तर में उक्त स्तोत्र के साथ कुछ ऐसी कल्पित कथायें जुड़ गयी हैं, जिससे भ्रमित होकर भक्त लोगों ने इसको लौकिक कामनाओं की पूर्ति से जोड़ लिया है। स्व. पण्डित मिलापचन्द कटारिया ने अपने शोधपूर्ण लेख में लिखाहै-

''इस सरल और वीतराग स्तोत्र को भी मन्त्र-तन्त्रादि और कथाओं के जाल से गूँथकर जटिल व सराग बना दिया है। इसके निर्माण के सम्बन्ध में भी मनगढ़न्त कथायें रच डाली हैं।''[१]

मुनि श्री मानतुंगाचार्य द्वारा यह केवल भक्तिभाव से प्रेरित होकर निष्काम भावना से रचा गया भक्तिकाव्य है। इसमें कर्म बन्धन से मुक्त होकर संसारचक्र से छूटने के सिवाय कहीं कोई ऐसा संकेत भी नहीं है, जिसमें भक्त ने भगवान से कुछ लौकिक कामना की हो।

जहाँ भय व रोग निवारण की परोक्ष चर्चा आई है, वह कामना के रूप में नहीं है; बल्कि वहाँ तो यह कहा है कि परमात्मा की शरण में रहनेवालों को जब विषय-कषायरूप काम नागों का भी विष नहीं चढ़ता तो उसके सामने बेचारे सर्पादि जन्तुओं की क्या कथा? जब आत्मा का अनादिकालीन मिथ्यात्व का महारोग मिट जाता है तो तुच्छ जलोदरादि दैहिक रोगों की क्या बात करें?

---

१. जैन निबन्ध रत्नावली, पृष्ठ ३३७; वीरशासन संघ, कलकत्ता।

ज्ञानी धर्मात्मा की भक्ति में लौकिक स्वार्थसिद्धि की गन्ध नहीं होती, कंचन-कामिनी की कामना नहीं होती, यश की अभिलाषा नहीं होती और भीरुता भी नहीं होती।

भय, आशा, स्नेह व लोभ से या लौकिक कार्यों की पूर्ति के लिए की गई भक्ति तो अप्रशस्तरूप राग होने से पापभाव ही है, उसका नाम भक्ति नहीं है।

जब अनेक संस्कृतियाँ मिलती हैं, तब उनका एक-दूसरे पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। जैन पूजन साहित्य पर भी अन्य भारतीय भक्ति साहित्य का प्रभाव देखा जा सकता है, परन्तु जितने भी कर्तृत्वमूलक कथन हैं, उन सभी को अन्य दर्शनों की छाप कहना उचित प्रतीत नहीं होता; क्योंकि जैनदर्शन में व्यवहारनय से उक्त सम्पूर्ण कथन संभव है, परन्तु उसकी मर्यादा औपचारिक ही है।

अतः जिनभक्तों का यह मूल कर्तव्य है कि वे जिनभक्ति के स्वरूप को पहिचानें, भक्ति साहित्य में समागत कथनों के वजन को जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में समझें। औपचारिक कथनों एवं वास्तविक कथनों के भेदों को अच्छी तरह पहिचानें; सभी को एक समान सत्य स्वीकार करना उचित नहीं है।

पूजन साहित्य मात्र पढ़ लेने या बोल लेने की वस्तु नहीं है, उसका अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

जैन पूजन और भक्ति साहित्य इतना विशाल है कि उस पर अनेक दृष्टियों से स्वतंत्र रूप से अनुशीलन अपेक्षित है। विविध दृष्टिकोण से उसे वर्गीकृत कर यदि उसकी मीमांसा और समीक्षा की जाये तो एक विशाल ग्रन्थ का निर्माण सहज ही हो सकता है। लगता है कि अभी विद्वानों का ध्यान इस ओर नहीं गया है। पूजन साहित्य पर समीक्षात्मक शोध-खोज की महती आवश्यकता है।

मैंने तो यह अल्प प्रयास किया है। यदि शोधी-खोजी विद्वानों का ध्यान इस ओर गया और साधारण पाठकों को इससे अल्प लाभ भी मिला तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा। ●

ॐ

णमोकार-मंत्र

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

जिनेन्द्र-वन्दना

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(दोहा)

चौबीसों परिग्रह रहित, चौबीसों जिनराज।
वीतराग सर्वज्ञ जिन, हितकर सर्व समाज।।

(हरिगीतिका)

श्री आदिनाथ अनादि मिथ्या मोह का मर्दन किया।
आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान का दर्शन किया।।
निज आतमा को जानकर निज आतमा अपना लिया।
निज आतमा में लीन हो निज आतमा को पा लिया।।१।।
जिन अजित जीता क्रोध रिपु निज आतमा को जानकर।
निज आतमा पहिचान कर निज आतमा का ध्यान धर।।
उत्तम क्षमा की प्राप्ति की बस एक ही है साधना।
आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना।।२।।
सम्भव असम्भव मान मार्दव धर्ममय शुद्धात्मा।
तुमने बताया जगत को सब आतमा परमातमा।।
छोटे-बड़े की भावना ही मान का आधार है।
निज आतमा की साधना ही साधना का सार है।।३।।

निज आतमा को आतमा ही जानना है सरलता।
निज आतमा की साधना आराधना है सरलता।।
वैराग्य-जननी नन्दिनी अभिनन्दिनी है सरलता।
है साधकों की संगिनी आनन्द-जननी सरलता।।४।।
हे सर्वदर्शी सुमति जिन! आनन्द के रसकन्द हो।
हो शक्तियों के संग्रहालय ज्ञान के घनपिण्ड हो।।
निर्लोभ हो निर्दोष हो निष्क्रोध हो निष्काम हो।
हो परम-पावन पतित-पावन शौचमय सुखधाम हो।।५।।
मानता आनन्द सब जग हास में परिहास में।
पर आपने निर्मद किया परिहास को परिहास में।।
परिहास भी है परिग्रह जग को बताया आपने।
हे पद्मप्रभ परमातमा, पावन किया जग आपने।।६।।
पारस सुपारस है वही पारस करे जो लोह को।
वह आतमा ही है सुपारस जो स्वयं निर्मोह हो।।
रति-राग वर्जित आतमा ही लोक में आराध्य है।
निज आतमा का ध्यान ही बस साधना है साध्य है।।७।।
रति-अरतिहर श्री चन्द्र जिन तुम ही अपूरव चन्द्र हो।
निश्शेष हो निर्दोष हो निर्विघ्न हो निष्कंप हो।।
निकलंक हो अकलंक हो निष्ताप हो निष्पाप हो।
यदि हैं अमावस अज्ञजन तो पूर्णमासी आप हो।।८।।
विरहित विविधविधि सुविधि[1] जिन निज आतमा में लीन हो।
हो सर्वगुण सम्पन्न जिन सर्वज्ञ हो स्वाधीन हो।।
शिवमग बतावनहार हो शत इन्द्रकरि अभिवन्द्य हो।
दुख-शोकहर भ्रम-रोगहर सन्तोषकर सानन्द हो।।९।।
आपका गुणगान जो जन करें नित अनुराग से।
सब भय भयंकर स्वयं भयकरि भाग जावें भाग से।।

1. पुष्पदंत

तुम हो स्वयंभू नाथ निर्भय जगत को निर्भय किया।
हो स्वयं शीतल मलयगिरि से जगत को शीतल किया।।१०।।
नरतन विदारन मरन-मारन मलिन भाव विलोक के।
दुर्गन्धमय मलमूत्रमय नरकादि थल अवलोक के।।
जिनके न उपजे जुगुप्सा समभाव महल-मसान में।
वे श्रेय श्रेयस्कर शिरि (श्री) श्रेयांस विचरें ध्यान में।।११।।
निज आतमा के भान बिन सुख मानकर रति-राग में।
सारा जगत नित जल रहा है वासना की आग में।।
तुम वेद-विरहित वेदविद् जिन वासना से दूर हो।
वसुपूज्यसुत बस आप ही आनन्द से भरपूर हो।।१२।।
बस आतमा ही बस रहा जिनके विमल श्रद्धान में।
निज आतमा बस एक ही नित रहे जिनके ध्यान में।।
सब द्रव्य-गुण-पर्याय जिनके नित्य झलकें ज्ञान में।
वे वेद विरहित विमल जिन विचरें हमारे ध्यान में।।१३।।
तुम हो अनादि अनन्त जिन तुम ही अखण्डानन्त हो।
तुम वेद विरहित वेदविद् शिवकामिनी के कन्त हो।।
तुम सन्त हो भगवन्त हो तुम भवजलधि के अन्त हो।
तुम में अनन्तानन्त गुण तुम ही अनन्तानन्त हो।।१४।।
हे धर्म जिन सद्धर्ममय सत् धर्म के आधार हो।
भवभूमि का परित्याग कर जिन भवजलधि के पार हो।।
आराधना आराधकर आराधना के सार हो।
धरमातमा परमातमा तुम धर्म के अवतार हो।।१५।।
मोहक महल मणिमाल मण्डित सम्पदा षट्खण्ड की।
हे शान्ति जिन तृण-सम तजी ली शरण एक अखण्ड की।।
पायो अखण्डानन्द दर्शन ज्ञान बीरज आपने।
संसार पार उतारनी दी देशना प्रभु आपने।।१६।।

मनहर मदन तन वरन सुवरन सुमन सुमन-समान ही।
धन-धान्य पूरित सम्पदा अगणित कुबेर-समान थी।।
थीं उर्वशी सी अंगनाएँ संगिनी संसार की।
श्री कुन्थु जिन तृण-सम तजीं ली राह भवदधि पार की।।१७।।
हे चक्रधर! जग जीतकर षट्खण्ड को निज वश किया।
पर आतमा निज नित्य एक अखण्ड तुम अपना लिया।।
हे ज्ञानघन अरनाथ जिन! धन-धान्य को ठुकरा दिया।
विज्ञानघन आनन्दघन निज आतमा को पा लिया।।१८।।
हे द्रुपद-त्यागी मल्लिजिन! मन-मल्ल का मर्दन किया।
एकान्त पीड़ित जगत को अनेकान्त का दर्शन दिया।।
तुमने बताया जगत को क्रमबद्ध है सब परिणमन।
हे सर्वदर्शी सर्वज्ञानी! नमन हो शत-शत नमन।।१९।।
मुनिमनहरण श्री मुनीसुव्रत चतुष्पद परित्याग कर।
निजपद विहारी हो गये तुम अपद पद परिहार कर।।
पाया परमपद आपने निज आतमा पहिचान कर।
निज आतमा को जानकर निज आतमा का ध्यान धर।।२०।।
निजपद विहारी धरमधारी धरममय धरमातमा।
निज आतमा को साध पाया परमपद परमातमा।।
हे यान-त्यागी नमी! तेरी शरण में मम आतमा।
तूने बताया जगत को सब आतमा परमातमा।।२१।।
आसन बिना आसन जमा गिरनार पर घनश्याम तन।
सद्बोध पाया आपने जग को बताया नेमि जिन।।
स्वाधीन है प्रत्येक जन स्वाधीन है प्रत्येक कन।
परद्रव्य से है पृथक् पर हर द्रव्य अपने में मगन।।२२।।
तुम हो अचेलक पार्श्वप्रभु! वस्त्रादि सब परित्याग कर।
तुम वीतरागी हो गये रागादिभाव निवार कर।।

तुमने बताया जगत को प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्ता न धर्ता कोई है अणु-अणु स्वयं में लीन है।।२३।।
हे पाणिपात्री वीर जिन! जग को बताया आपने।
जग-जाल में अबतक फँसाया पुण्य एवं पाप ने।।
पुण्य एवं पाप से है पार मग सुख-शान्ति का।
यह धर्म का है मरम यह विस्फोट आतम क्रान्ति का।।२४।।

(सोरठा)

पुण्य-पाप से पार, निज आतम का धर्म है।
महिमा अपरम्पार, परम अहिंसा है यही।।

विशेष :– इस जिनेन्द्र-वन्दना में चौबीस परिग्रहों से रहित चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना की गई है। एक-एक तीर्थंकर की स्तुति में क्रमशः एक-एक परिग्रह के अभाव को घटित किया गया है।

दर्शन-पाठ

दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम्।।१।।
दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं छिद्रहस्ते यथोदकम्।।२।।
वीतराग-मुखं दृष्ट्वा पद्मराग-समप्रभम्।
जन्म-जन्मकृतं पापं दर्शनेन विनश्यति।।३।।
दर्शनं जिनसूर्यस्य संसारध्वान्तनाशनम्।
बोधनं चित्त-पद्मस्य समस्तार्थ-प्रकाशनम्।।४।।
दर्शनं जिन-चन्द्रस्य सद्धर्मामृत-वर्षणम्।
जन्म-दाहविनाशाय वर्धनं सुख-वारिधेः।।५।।
जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणाश्रयाय।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय देवाधिदेवाय नमो जिनाय।।६।।
चिदानन्दैक-रूपाय जिनाय परमात्मने।
परमात्म-प्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः।।७।।

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्य-भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वरः ।।८ ।।
नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ।।९ ।।
जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे।।१०।।
जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिन-धर्मानुवासितः ।।११ ।।
जन्म-जन्मकृतं पापं जन्म-कोटिमुपार्जितम्।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं हन्यते जिन-दर्शनात् ।।१२ ।।

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,
देवः ! त्वदीय-चरणाम्बुजवीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलकः ! प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधिरयं चुलुकं प्रमाणम् ।।१३ ।।

देव-स्तुति

(पं. बुधजन कृत)

(हरिगीतिका)

प्रभु पतित पावन, मैं अपावन, चरन आयो सरन जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन-मरन जी।।
तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी।।
भव विकट वन में करम वैरी, ज्ञान धन मेरो हर्यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्यो।।
धन घड़ी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो।।
छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण जुत, कोटि रविछवि को हरैं।।

मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो।।
मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊँ तुव चरन जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन-तरन जी।।
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथ जी।
'बुध' जाचहुँ तुव भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी।।

दर्शन-स्तुति

(श्री अमरचन्दजी कृत)

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने।।
पाये अनंते दुःख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर।।
भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि-सुधा नहिं पानकर।।१।।
तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी।।
रुचि लगी हित में आत्म के, सत्संग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रँगा।।
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगै।।२।।
कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर।।
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दस धारन करूँ।।
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु को निर्जरूँ।।३।।

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ।।
कर दूर रागादिक निरन्तर आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ।।
आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवे 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुखद भवसागर तरूँ।।४।।

दर्शन-स्तुति

(पं. दौलतरामजी कृत)

(दोहा)

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन।।१।।

(पद्धरि छन्द)

जय वीतराग-विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरजमण्डित अपार।।२।।
जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।
भवि भागन वचजोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय।।३।।
तुम गुण चिंतत निजपर विवेक, प्रकटै, विघटैं आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषणविमुक्त, सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त।।४।।
अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ-अशुभविभाव-अभाव कीन, स्वाभाविकपरिणतिमय अछीन।।५।।
अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर।
मुनिगणधरादि सेवत महंत, नव केवललब्धिरमा धरंत।।६।।
तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को और न आप टारि।।७।।
यह लखि निजदुखगद हरणकाज, तुम ही निमित्तकारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय।।८।।

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधि-फल पुण्य-पाप।
निज को पर को करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान।।९।।
आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।
तन परिणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार।।१०।।
तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नर सुरगति मँझार, भव धर-धर मर्‍यो अनंत बार।।११।।
अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द्व, चाख्यो स्वातमरस दुख निकंद।।१२।।
तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुव चरण साथ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुव विरद एव।।१३।।
आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन।।१४।।
मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप।।१५।।
शशि शांतिकरन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय।।१६।।
त्रिभुवन तिहुँ काल मँझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जहाज।।१७।।

(दोहा)

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूँ त्रियोग सँभार।।१८।।

देवाधिदेव अरहंत के चरणों का पूजन समस्त दुःखों का नाश करनेवाला है तथा इन्द्रियों के विषयों की कामना का नाश करके मोक्षरूप सुख की कामना को पूर्ण करनेवाला है; इसलिए अन्य की आराधना छोड़कर जिनेन्द्रदेव की ही नित्य आराधना करो।

– पण्डित सदासुखदासजी : रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका, पृष्ठ 205

दर्शन-पाठ

(श्री युगलजी कृत)

दर्शन श्री देवाधिदेव का, दर्शन पाप विनाशन है।
दर्शन है सोपान स्वर्ग का, और मोक्ष का साधन है।।१।।
श्री जिनेन्द्र के दर्शन औ, निर्ग्रन्थ साधु के वंदन से।
अधिक देर अघ नहीं रहै, जल छिद्रसहित कर में जैसे।।२।।
वीतराग-मुख के दर्शन की, पद्मराग-सम शांतप्रभा।
जन्म-जन्म के पातक क्षण में, दर्शन से हों शांत विदा।।३।।
दर्शन श्री जिनदेव सूर्य, संसार-तिमिर का करता नाश।
बोधि-प्रदाता चित्त पद्म को, सकल अर्थ का करे प्रकाश।।४।।
दर्शन श्री जिनेन्द्रचन्द्र का, सद्धर्मामृत बरसाता।
जन्मदाह को करे शांत औ, सुख वारिधि को विकसाता।।५।।
सकल तत्त्व के प्रतिपादक, सम्यक्त्व आदि गुण के सागर।
शांत दिगम्बररूप नमूँ, देवाधिदेव तुमको जिनवर।।६।।
चिदानन्दमय एकरूप, वंदन जिनेन्द्र परमात्मा को।
हो प्रकाश परमात्म नित्य, मम नमस्कार सिद्धात्मा को।।७।।
अन्य शरण कोई न जगत में, तुम्हीं शरण मुझको स्वामी।
करुण भाव से रक्षा करिये, हे जिनेश अन्तर्यामी।।८।।
रक्षक नहीं शरण कोई नहिं, तीन जगत में दुखत्राता।
वीतराग प्रभु-सा न देव है, हुआ न होगा सुखदाता।।९।।
दिन-दिन पाऊँ जिनवरभक्ति, जिनवरभक्ति, जिनवरभक्ति।
सदा मिले वह सदा मिले, जब तक न मिले मुझको मुक्ति।।१०।।
नहीं चाहता जैनधर्म के बिना, चक्रवर्ती होना।
नहीं अखरता जैनधर्म से सहित, दरिद्री भी होना।।११।।
जन्म-जन्म के किये पाप ओ बन्धन कोटि-कोटि भव के।
जन्म-मृत्यु औ, जरा रोग, सब कट जाते जिनदर्शन से।।१२।।
आज युगल दृग हुए सफल, तुम चरण-कमल से हे प्रभुवर।
हे त्रिलोक के तिलक! आज, लगता भवसागर चुल्लू भर।।१३।।

आराधना पाठ

(पं. द्यानतरायजी कृत)

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं।
मैं सूर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं।।
मैं धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना।।१।।
चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदितैं पातक नसैं।।
गिरनार शिखर समेद चाहूँ, चम्पापुर पावापुरी।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्रम जुरी।।२।।
नव तत्त्व का सरधान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासों भय हरों।।
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव नहीं कदा।
तिहुँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागे कदा।।३।।
सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित, सदा चाहूँ भाव सों।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हरख उछाव सों।।
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सों।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों।।४।।
मैं वेद चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों।
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाह सों।
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ।
आराधना मैं चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ।।५।।
भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं।।
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोह ना।।६।।

मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनही सों करौं।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, और आरँभ परिहरौं।।
इस दुखद पंचमकाल माहीं, सुकुल श्रावक मैं लह्यौ।
अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यौ।।७।।
आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी।।
वसुकर्म नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिये।
करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये।।८।।

देव-स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आस।
ज्ञान-भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास।।
जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहिं कहें कदा।
परधन कबहुँ न हरहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा।।
तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा, तोष-सुधा नित पिया करें।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें।।
दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल-मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रसार।।
सुख-दुख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल।
न्यायमार्ग को लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतमबल।।
अष्ट करम जो दुःख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न-शोक सब ही टल जाय।।
आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप-मैल नहिं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हम में, धर्म ज्ञान हू बढ़े सदा।।
हाथ जोड़कर शीश नवायें, तुम को भविजन खड़े-खड़े।
यह सब पूरो आस हमारी, चरण-शरण में आन पड़े।।

जलाभिषेक पाठ

(श्री हरजसरायजी कृत)

(दोहा)

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान।।

(अडिल्ल और गीता)

श्री जिन जग में ऐसो को बुधवंत जू।
जो तुम गुण वरननि करि पावै अन्त जू।।
इन्द्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनि।
कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवन धनी।।
अनुपम अमित तुम गुणनि वारिधि ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरै हम उर कोष में सो अकथ गुण-मणिराश है।।
निज प्रयोजनसिद्धि की तुम नाम ही में शक्ति है।
यह चित्त में सरधान यातैं नाम ही में भक्ति है।।१।।

ज्ञानावरणी दर्शन-आवरणी भने।
कर्म मोहनी अन्तराय चारों हने।।
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में।
इन्द्रादिक के मुकुट नये सुरथान में।।
तब इन्द्र जान्यो अवधि तैं, उठि सुरनयुत वंदत भयौ।
तुम पुण्य को प्रेरयौ हरि ह्वै मुदित धनपति सौं कह्यो।।
अब वेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपद को करौ।
साक्षात् श्री अरहंत के दर्शन करौ कल्मष हरौ।।२।।

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपति।
चल आयो तत्काल मोद धारैं अति।।
वीतराग छबि देखि शब्द जय-जय कह्यो।
देय प्रदच्छिना बार-बार वंदत भयौ।।
अति भक्ति भीनो नम्रचित ह्वै समवशरण रच्यो सही।
ताकी अनूपम शुभ गति को कहन समरथ कोउ नहीं।।

प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजही।
नगजड़ित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजही।।३।।
सिंहासन तामध्य बन्यौ अद्‌भुत दिपै।
ता पर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै।।
तीन छत्र सिर शोभित चौंसठ चमरजी।
महाभक्तियुत ढोरत हैं तहाँ अमरजी।।
प्रभु तरनतारन कमल ऊपर, अन्तरीक्ष विराजिया।
यह वीतराग दशा प्रतच्छ विलोकि, भविजन सुख लिया।।
मुनि आदि द्वादश सभा के, भवि जीव मस्तक नायकैं।
बहुभाँति बारम्बार पूजैं, नमैं गुणगण गायकैं।।४।।
परमौदारिक दिव्य देह पावन सही।
क्षुधा तृषा चिन्ता भय गद दूषण नहीं।।
जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसैं।
राग रोष निद्रा मद मोह सबैं खसैं।।
श्रम बिना श्रम जलरहित पावन, अमल ज्योति स्वरूप जी।
शरणागतनि की अशुचिता हरि, करत विमल अनूप जी।।
ऐसे प्रभु की शांतमुद्रा को न्हवन जलतैं करैं।
'जस' भक्तिवश मन उक्ति तैं, हम भानु ढिंग दीपक धरैं।।५।।
तुम तो सहज पवित्र यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो।।
मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यौ।
महामलिन तन में वसु विधिवश दुख सह्यौ।।
बीत्यो अनंतो काल यह, मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिताहर एक तुम ही, भरहु वांछा चित ठई।।
अब अष्टकर्म विनाश सब मल, दोष-रागादिक हरौ।
तनरूप कारागेह तैं, उद्धार शिववासा करौ।।६।।
मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये।
आवागमन विमुक्त रागवर्जित भये।।

पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही।
नय-प्रमाण तैं जानि महा साता लही।।
पापाचरण तजि न्हवन करता चित्त में ऐसे धरूँ।
साक्षात् श्री अरहंत का मानो न्हवन परसन करूँ।।
ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नशि शुभबन्ध तैं।
विधि अशुभ नसि शुभ बन्धतैं ह्वै शर्म सबविधि तासतैं।।७।।
पावन मेरे नयन भये तुम दरस तैं।
पावन पाणि भये तुम चरननि परस तैं।।
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यान तैं।
पावन रसना मानी, तुम गुण गान तैं।।
पावन भई परजाय मेरी, भयो मैं पूरण धनी।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्णभक्ति नहीं बनी।।
धनि धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिवघर की धरी।
वर क्षीरसागर आदि जल मणि-कुम्भभरी भक्ति करी।।८।।
विघन-सघन-वन-दाहन दहन प्रचण्ड हो।
मोह-महातम-दलन प्रबल मार्तण्ड हो।।
ब्रह्मा विष्णु महेश आदि संज्ञा धरो।
जगविजयी जमराज नाश ताको करो।।
आनन्दकारण दुख निवारण, परममंगलमय सही।
मोसो पतित नहिं और तुमसो, पतित-तार सुन्यो नहीं।।
चिंतामणि पारस कलपतरु, एक भव सुखकार ही।
तुम भक्ति-नौका जे चढ़े, ते भये भवदधि पार ही।।९।।
तुम भवदधि तैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्ति को, हमैं उतारो पार।।१०।।

निर्मल वस्त्र से प्रतिमाजी को साफ कर निम्न श्लोक बोलकर गन्धोदक ग्रहण करें –

निर्मलं निर्मलीकरणं पावन पापनाशनम्।
जिनचरणोदकं वंदे कर्माष्टक-विनाशनम्।।

* * *

प्रक्षाल पाठ

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(दोहा)

भक्तिभाव से हम करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
अरे विकारी भाव का हो जावे प्रक्षाल।। १ ।।
दिन का शुभ आरंभ हो चित्त रहे निर्भ्रान्त[1]।
प्रतिमा के प्रक्षाल से मन हो जावे शान्त।। २ ।।

(हरिगीतिका)

यद्यपि इस काल में अरहंत जिन उपलब्ध ना।
किन्तु हमारे भाग्य से जिनबिंब तो उपलब्ध हैं।।
जिनबिंब का प्रक्षाल पूजन और दर्शन भाव से।
जो भाग्यशाली करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।। ३ ।।
वे भाग्यशाली भव्य निज हित कार्य में नित रत रहें।
आपके गुणगान वे नित निरन्तर करते रहें।।
निज आतमा को जानकर वे शीघ्र ही भव पार हों।
निज आतमा का ध्यान धर वे भवजलधि से पार हों।। ४ ।।
जिसतरह समव-शरण में अरहंत जिन विद्यमान हैं।
और उनका इस जगत में उच्चतम स्थान है।।
व्यवहार होता जिसतरह का अरे उनके सामने।
बस उसतरह की विनय हो जिनमूर्तियों के सामने।। ५ ।।
यदि मूर्तियाँ हों प्रतिष्ठित स्थापना निक्षेप से।
अरहंत सम ही पूज्य हैं जिनमार्ग में व्यवहार से।।
अरे कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिंब जितने लोक में।
वे पूज्य हैं शत इन्द्र कर जिनशास्त्र के आलोक में।। ६ ।।
अति विनयपूर्वक बिंब का प्रक्षाल होना चाहिये।
अर दिवस में प्रत्येक दिन इकबार होना चाहिये।।

---

१. जिसमें कोई सन्देह या भ्रम न हो।

स्वस्थ तन-मन स्वच्छ पट अर सावधानी पूर्वक।
सद्भाव से ही पुरुष को प्रक्षाल करना चाहिये।। ७ ।।
प्रत्येक नर-नारी अरे पूजन करे प्रत्येक दिन।
प्रक्षाल तो बस एक जन इकबार ही दिन में करे।।
प्रक्षाल पूजन अंग ना प्रत्येक को अनिवार्य ना।
प्रक्षाल तो इक बिंब का इक बार होना चाहिये।। ८ ।।
छवि वीतरागी शान्त मुद्रा कही है जिनदेव की।
जिनमूर्ति की भी शान्त मुद्रा वीतरागी छवि कही।।
'जिनमूर्तियाँ हों मुस्कुराती' - कभी हो सकता नहीं।
और हंसना वीतरागी भाव हो सकता नहीं।। ९ ।।
जब वीतरागी जिनवरों का न्हवन हो सकता नहीं।
एवं दिगम्बर मुनिवरों का न्हवन हो सकता नहीं।।
जब मुनिवरों के मूलगुण में एक गुण अस्नान है।
तब प्रतिष्ठित मूर्तियों का न्हवन होवे किस तरह? ।। १० ।।
बस इसलिये जिनमूर्तियों को स्वच्छ रखने के लिये।
और अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये।।
अरे प्रासुक नीर से प्रक्षाल करना चाहिये।
न्हवन ना अभिषेक ना प्रक्षाल होना चाहिये।। ११ ।।
जिनबिंब का स्पर्श महिला वर्ग कर सकता नहीं।
जिनबिंब का प्रक्षाल महिला वर्ग कर सकता नहीं।।
दिगम्बर जिनबिंब से सम्पूर्ण महिला वर्ग को।
एक सीमा तक सुनिश्चित दूर रहना चाहिये।। १२ ।।
क्योंकि ये जिनबिंब जिनवरदेव के प्रतिबिंब हैं।
वीतरागी सर्वज्ञानी देव के ही बिंब हैं।।
उन बिंब का जिनबिंब का अति हर्ष से उल्लास से।
प्रक्षाल सब जन कर रहे अत्यन्त निर्मल भाव से।। १३ ।।
जिनबिंब का प्रक्षाल जो जन करें निर्मलभाव से।
और पूजन करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।।

जिन शास्त्र का स्वाध्याय एवं रहें संयमभाव से।
वे भव्यजन भवपार होंगे स्वयं के आधार से।। १४ ।।

(दोहा)

महाभाग्य हमने किया जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
चरणों में जिनबिंब के सदा नवावें भाल।। १५ ।।
भक्तिभाव से जो करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
निज आतम का ध्यान धर वे होवें भव पार।। १६ ।।

* * *

प्रतिमा प्रक्षाल पाठ

(पं. अभयकुमारजी कृत)

(दोहा)

परिणामों की स्वच्छता, के निमित्त जिनबिम्ब।
इसीलिए मैं निरखता, इनमें निज प्रतिबिम्ब।।
पञ्च प्रभु के चरण में, वन्दन करूँ त्रिकाल।
निर्मल जल से कर रहा, प्रतिमा का प्रक्षाल।।

अथ पौर्वाह्निकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजास्तवन-वन्दनासमेतं श्री पंचमहागुरुभक्तिपूर्वककायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ें)

(छप्पय)

तीन लोक के कृत्रिम और अकृत्रिम सारे।
जिनबिम्बों को नित प्रति अगणित नमन हमारे।।
श्री जिनवर की अन्तर्मुख छवि उर में धारूँ।
जिन में निज का निज में जिन-प्रतिबिम्ब निहारूँ।।
मैं करूँ आज संकल्प शुभ, जिन प्रतिमा प्रक्षाल का।
यह भाव सुमन अर्पण करूँ, फल चाहूँ गुणमाल का।।

ॐ ह्रीं प्रक्षालप्रतिज्ञायै पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

(प्रक्षाल की प्रतिज्ञा हेतु पुष्प क्षेपण करें)

(रोला)

अन्तरंग बहिरंग सुलक्ष्मी से जो शोभित।
जिनकी मंगल वाणी पर है त्रिभुवन मोहित।।

श्री जिनवर सेवा से क्षय मोहादि विपत्ति।
हे जिन! श्री लिख पाऊँगा निज-गुण सम्पत्ति।।

(थाली की चौकी पर केशर से श्री लिखें)

(दोहा)

अन्तर्मुख मुद्रा सहित, शोभित श्री जिनराज।
प्रतिमा प्रक्षालन करूँ, धरूँ पीठ यह आज।।

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थापनं करोमि।

(प्रक्षाल हेतु थाली स्थापित करें)

(रोला)

भक्ति रत्न से जड़ित आज मंगल सिंहासन।
भेद-ज्ञान जल से क्षालित भावों का आसन।।
स्वागत है जिनराज! तुम्हारा सिंहासन पर।
हे जिनदेव पधारो श्रद्धा के आसन पर।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्निह सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ।

(थाली में जिनबिम्ब विराजमान करें)

क्षीरोदधि के जल से भरे कलश ले आया।
दृग-सुख-वीरज ज्ञानस्वरूपी आतम पाया।।
मंगल कलश विराजित करता हूँ जिनराजा।
परिणामों के प्रक्षालन से सुधरें काजा।।

ॐ ह्रीं अर्हं कलशस्थापनं करोमि।

(चारों कोनों में निर्मल जल से भरे कलश स्थापित करें)

जल-फल आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य बनाया।
अष्ट अंग युत मानो सम्यग्दर्शन पाया।।
श्री जिनवर के चरणों में यह अर्घ्य समर्पित।
करूँ आज रागादि विकारी भाव विसर्जित।।

ॐ ह्रीं श्री स्नपनपीठस्थिताय जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पीठ स्थित जिनप्रतिमा को अर्घ्य चढ़ायें)

मैं रागादि विभावों से कलुषित हे जिनवर।
और आप परिपूर्ण वीतरागी हो प्रभुवर।।
कैसे हो प्रक्षाल, जगत के अघ-क्षालक का।
क्या दरिद्र होगा पालक? त्रिभुवन पालक का।।

भक्ति भाव के निर्मल जल से अघ-मल धोता।
है किसका अभिषेक भ्रान्त चित खाता गोता।।
नाथ! भक्तिवश जिन बिम्बों का करूँ न्हवन मैं।
आज करूँ साक्षात् जिनेश्वर का पर्शन मैं।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्तं चतुर्विंशतितीर्थंकर-परमदेवमाद्यानामाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे.....नाम्निनगरे मासानामुत्तमे ....मासे.....पक्षे.....दिने मुन्यार्यिकाश्रावकश्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं पवित्रतर-जलेन जिनमभिषेचयामि।

(चारों कलशों से अभिषेक करें तथा वादित्र नाद करायें एवं जय-जय शब्दोच्चारण करें)

(दोहा)

क्षीरोदधि-सम नीर से, करूँ बिम्ब प्रक्षाल।
श्री जिनवर की भक्ति से, जानूँ निज पर चाल।।
तीर्थंकर का न्हवन शुभ, सुरपति करें महान।
पंचमेरु भी हो गये, महातीर्थ सुखदान।।
करता हूँ शुभ भाव से, प्रतिमा का अभिषेक।
बचूँ शुभाशुभ भाव से, यही कामना एक।।
जल-फलादि वसु द्रव्य ले, मैं पूजूँ जिनराज।
हुआ बिम्ब अभिषेक अब, पाऊँ निज पदराज।।

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री जिनवर का धवल यश, त्रिभुवन में है व्याप्त।
शान्ति करें मम चित्त में, हे परमेश्वर आप्त।।

(पुष्पाञ्जलि क्षेपण करें)

(रोला)

जिन प्रतिमा पर अमृतसम जल-कण अति शोभित।
आत्म-गगन में गुण अनन्त तारे भवि मोहित।।
हो अभेद का लक्ष्य भेद का करता वर्जन।
शुद्ध वस्त्र से जल-कण का करता परिमार्जन।।

(प्रतिमा को शुद्ध वस्त्र से पोंछे)

(दोहा)

श्री जिनवर की भक्ति से, दूर होय भव-भार।
उर-सिंहासन थापिये, प्रिय चैतन्य कुमार।।

(जिनप्रतिमा को सिंहासन पर विराजमान करें तथा निम्न छन्द बोलकर अर्घ्य चढ़ायें।)

जल-गन्धादिक द्रव्य से, पूजूँ श्री जिनराज।
पूर्ण अर्घ्य अर्पित करूँ, पाऊँ चेतनराज।।

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थितजिनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जिन संस्पर्शित नीर यह, गन्धोदक गुण खान।
मस्तक पर धारूँ सदा, बनूँ स्वयं भगवान।।

(मस्तक पर गन्धोदक चढ़ायें। अन्य किसी अंग से गन्धोदक का स्पर्श वर्जित है।)

***

विनय पाठ

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(दोहा)

अरहंतों को नमन कर नमूँ सिद्ध भगवान।
आचारज उवझाय अर सर्व साधु गुणखान।। १ ।।
मोक्ष मोक्ष के मार्ग में विद्यमान जो जीव।
यथायोग्य नम कर प्रभो वन्दन करूँ सदीव।। २ ।।
चौबीसों जिनराज की दिव्यध्वनि अनुसार।
ज्ञानिजनों ने जो लिखी वाणी विविधप्रकार।। ३ ।।
नय-प्रमाण से विविधविध कही तत्त्व की बात।
भविकजनों के लिये जो एकमात्र आधार।। ४ ।।
सब द्रव्यों के सभी गुण अर सामान्य-विशेष।
आज सभी को सहज ही हैं उपलब्ध अशेष।। ५ ।।
जिनवाणी उपलब्ध है उसे बतावनहार।
बहुत अधिक दुर्लभ नहीं उसके जाननहार।। ६ ।।
मोहनींद में जो पड़े नहीं कोई आधार।
साधर्मीजन कम नहीं उन्हें जगावनहार।। ७ ।।
सारा जग बेचेत है मोहनींद के द्वार।
किन्तु हमें उपलब्ध हैं मार्ग बतावनहार।। ८ ।।

महाभाग्य से प्राप्त हो देव-गुरु संयोग।
पर जिनवाणी मात की शरण सहज संयोग।। ९ ।।
उसके अध्ययन मनन से चिन्तन से निजतत्व।
जाना जाता सहज ही होता है सम्यक्त्व।। १० ।।
जिनवाणी के मर्म को अरे जानने योग्य।
ज्ञान प्रगट पर्याय में होवे सहज संयोग[१]।। ११ ।।
और कषायें मन्द हों भाव रहें निष्काम।
एक आतमा में लगे छोड़ हजारों काम[२]।। १२ ।।
देव-गुरु संयोग या जिनवाणी के योग।
तत्व श्रवण में मन लगे और न मन में रोग[३]।। १३ ।।
अरे क्षयोपशम विशुद्धि और देशना लब्धि।
जिसके ये तीनों बने उसे तत्त्व उपलब्धि।। १४ ।।
आतम में अति अधिक रुचि जब होवे सर्वांग।
विशेष तरह की योग्यता वह लब्धि प्रायोग्य।। १५ ।।
आतम का उपयोग जब आतम में रमजाय।
करणलब्धि है आतमा आतम माँहि समाय।। १६ ।।
करणलब्धि के अन्त में आतम अनुभव होय।
सम्यग्दर्शन प्राप्त हो मन रोमांचित होय।। १७ ।।
तीर्थंकर चौबीस ही हमें जगावनहार।
जागें आतम में लगें हो जावें भव पार।। १८ ।।
देव-शास्त्र-गुरु की कृपा से कटता संसार।
नमन करूँ इन सभी को भगवन् बारंबार।। १९ ।।
अरे हमारा आतमा आतम में रम जाय।
अन्य न कोई चाह मन आतम माहि समाय।। २० ।।

---

१. क्षयोपशम लब्धि २. विशुद्धि लब्धि ३. देशना लब्धि

विनय पाठ

(दोहा)

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ।।१।।
अनन्त चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सरताज।
मुक्ति-वधू के कंत तुम, तीन भुवन के राज।।२।।
तिहुँ जग की पीड़ा हरन, भवदधि-शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिव-सुख के करतार।।३।।
हर्ता अघ अँधियार के, कर्ता धर्म-प्रकाश।
थिरता-पद दातार हो, धर्ता निजगुण रास।।४।।
धर्मामृत उर जलधि सौं, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुँ-जग भूप।।५।।
मैं वन्दौं जिनदेव को, करि अति निरमल भाव।
कर्म-बन्ध के छेदने, और न कछु उपाव।।६।।
भविजन कौं भव-कूप तैं, तुम ही काढ़नहार।
दीन-दयाल अनाथ-पति, आतम गुण भंडार।।७।।
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्म-रज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिव-गैल।।८।।
तुम पद-पंकज पूजतैं, विघ्न-रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय।।९।।
चक्री सुर खग इन्द्र पद, मिलैं आप तैं आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप।।१०।।
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जलबिन मीन।
जन्म-जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन।।११।।
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव।।१२।।
थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेय।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव।।१३।।

राग सहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेटचौ अबै, मेटो राग कुटेव।।१४।।
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यञ्च अजान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान।।१५।।
तुमको पूजैं सुरपती, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव।।१६।।
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भव-सिन्धु में, खेव लगाओ पार।।१७।।
इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारि कै, कीजे आप-समान।।१८।।
तुम्हरी नेक सुदृष्टि तैं, जग उतरत है पार।
हा हा डूब्यो जात हौं, नेक निहार निकार।।१९।।
जो मैं कहहूँ और सौं, तो न मिटै उरझार।
मेरी तो तोसौं बनी, यातैं करौं पुकार।।२०।।
वंदौ पाँचों परमगुरु, सुर-गुरु वंदत जास।
विघनहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश।।२१।।
चौबीसौं जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यौ पाठ सुखदाय।।२२।।

(मंगल पाठ)

(दोहा)

मंगल मूर्ति परम पद, पंच धरो नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान।।१।।
मंगल जिनवर पद नमों, मंगल अरहन्तदेव।
मंगलकारी सिद्ध पद, सो वन्दूँ स्वयमेव।।२।।
मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरु उवझाय।
सर्व साधु मंगल करो, वन्दूँ मन-वच-काय।।३।।
मंगल सरस्वती मात का, मंगल जिनवर धर्म।
मंगलमय मंगल करण, हरो असाता कर्म।।४।।
या विधि मंगल करनतैं, जग में मंगल होत।
मंगल नाथूराम यह, भवसागर दृढ़ पोत।।५।।

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।
णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पांञ्जलिं क्षिपामि।

चत्तारि मंगलं - अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णतो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा - अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं, सरणं पव्वज्जामि।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा, पुष्पांजलिं क्षिपामि।

मंगल विधान

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पञ्च-नमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१ ।।
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ।।२ ।।
अपराजित-मन्त्रोऽयं सर्व-विघ्न-विनाशनः।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः ।।३ ।।
एसो पंच णमोयारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होई मंगलं ।।४ ।।
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ।।५ ।।

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।६।।
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे।।७।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

उदक-चन्दन-तन्दुलपुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवल-मङ्गल-गान-रवाकुले जिन-गृहे जिननाथमहं यजे।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वाद-नायकमनन्त-चतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतु
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि।।१।।
स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुङ्गवाय,
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्ज्जि-तदृङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय।।२।।
स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोधसुधाप्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोकविततैक-चिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय।।३।।
द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।।४।।
अर्हन् पुराणपुरुषोत्तम पावनानि,

वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिञ्ज्वलद्विमल-केवल-बोधवह्नौ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि।।५।।

ॐ यज्ञविधिप्रतिज्ञायै जिनप्रतिमाग्रे पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

स्वस्ति मंगलपाठ

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः।
श्रीसम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः।
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः।
श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति स्वास्तिश्री शीतलः।
श्रीश्रेयांसः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः।
श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः।
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः।
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः।
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

परमर्षि स्वस्ति मंगलपाठ

(प्रत्येक श्लोक के बाद पुष्प क्षेपण करें)

नित्याप्रकम्पाद्भुत-केवलौघाः स्फुरन्मनःपर्यय-शुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।१।।
कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।२।।
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण-विलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञान-बलाद्वहन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।३।।

प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टाङ्गनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।।४।।
जङ्घावलि-श्रेणि-फलाम्बु-तन्तु-प्रसून-बीजांकुर-चारणाह्वाः।
नभोऽङ्गणस्वैर-विहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।।५।।
अणिम्निदक्षाः कुशलामहिम्नि लघिम्निशक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।।६।।
सकामरूपित्व-वशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।।७।।
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोर गुणाश्चरन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।।८।।
आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशीर्विषं-विषा दृष्टिविषं विषाश्च।
सखिल्ल-विड्जल्ल-मलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।।९।।
क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधुस्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः।
अक्षीणसंवास-महानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।।१०।।

(इति परमर्षिस्वस्तिमङ्गलविधानं पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

पूजा पीठिका

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

ॐ जय जय जय! नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

(वीर)

अरहंतों को सब सिद्धों को आचार्यों को करूँ प्रणाम।
उपाध्याय एवं त्रिलोक के सर्व साधुओं को अभिराम।।१ ।।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पांजलि क्षिपामि।

अरे चार मंगल हैं जग में अर्हत सिद्ध साहु मंगल।
और केवली कथित जगत में होता परम धरम मंगल।। २ ।।
और चार ही लोकोत्तम अर्हत सिद्ध साहु उत्तम।
और केवली कथित जगत में होता परम धरम उत्तम।।३ ।।
अरे चार की शरणा जाऊँ अर्हत सिद्ध साहु शरणा।
और केवली कथित लोक में जाऊँ परम धरम शरणा।।४ ।।

(हरिगीत)

परमेष्ठी सम शुद्धात्मा भी शरण है इस लोक में।
है परम मंगल परम उत्तम शरण भी इस लोक में।।
व्यवहार से परमेष्ठी परमार्थ से शुद्धात्मा।
की शरण में नित हम रहें जिनमार्ग के आलोक में।।५ ।।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा पुष्पांजलि क्षिपामि।

मंगल विधान

(वीर)

हो अपवित्र–पवित्र और सुस्थित हो अथवा दुःस्थित हो।
सब पापों से छूट जाय वह नमोकार को ध्यावे जो।।१ ।।
हो अपवित्र–पवित्र अधिक क्या किसी अवस्था में भी हो।
अन्दर–बाहर से पवित्र निज परमातम को ध्यावे जो।।२ ।।
अपराजित यह मंत्र सभी विघ्नों का परमविनाशक है।
सभी मंगलों में मंगल यह पावन पहला मंगल है।। ३ ।।
सब पापों का नाशक है यह महामंत्र मंगलमय है।
सभी मंगलों में यह अद्भुत पावन पहला मंगल है।।४ ।।
'अर्हं' ये अक्षर परमेष्ठी परमब्रह्म के वाचक हैं।
सिद्धचक्र के बीज मनोहर नमस्कार हम करते हैं।। ५ ।।
अष्टकर्म से रहित मोक्षलक्ष्मी के सुखद निकेतन हैं।
सम्यक्त्वादि अष्टगुणों से सहित सिद्ध को नमते हैं।। ६ ।।
जिनवर की स्तुति करने से विघ्न विलय हो जाते हैं।
भूत डाकिनी एवं विषभय सभी विघ्न टर जाते हैं।। ७ ।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

(वीर)

जल चन्दन अक्षत सुमन चरु, अर दीप धूप फल द्रव्यमयी।
अर्घ्य समर्पण करता हूँ मैं श्रीजिनवर आनन्दमयी।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्रनामेभ्योर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

(वीर)

अनन्तचतुष्टय पद के धारी स्याद्वाद के नायक की।
पूजन करता नमस्कार कर तीन लोक परमेश्वर की।।
मूलसंघ के सम्यग्दृष्टि उनके सत्कर्मों के हेतु।
मेरे द्वारा कही जा रही यह जैनेन्द्रयज्ञविधि सेतु।। १ ।।
जिनपुंगव त्रैलोक्य गुरु की स्वस्ति हो कल्याणमयी।
जिनका रे सुस्थित स्वभाव महिमामय है कल्याणमयी।।
सहज प्रकाशमयी दृगज्योति मंगल मंगलदाता है।
स्वस्ति मंगल अद्भुत वैभव अति आनन्द प्रदाता है।। २ ।।
रे स्वभाव-परभाव सभी को करे प्रकाशित निर्मल ज्ञान।
अमृतमय वह ज्ञान मनोहर उछले अन्तर महिमावान।।
तीन लोक अर तीनकाल में विस्तृत है अति व्यापक है।
तीन लोक एवं त्रिकाल की पर्यायों का ज्ञायक है।। ३ ।।
यथायोग्य है द्रव्य शुद्धि पर भावशुद्धि पूरी चाहूँ।
अरे विविध आलंबन लेकर शुद्धभाव को अपनाऊँ।।
जो सचमुच भूतार्थ पुरुष हैं पावन हैं अतिपावन हैं।
उनकी पूजा करूँ ध्यान से जो अति ही मनभावन हैं।।४ ।।
जिनकी केवलज्ञान ज्योति में सभी भाव भासित होते।
वे अर्हन् पुराण पुरुषोत्तम परम भाव भावित होते।।
उनकी केवलज्ञान बह्नि में मैं अपने पूरे मन से।
सभी पुण्य अर्पित करता हूँ निकला चाहूँ भव वन से।। ५ ।।

ॐ यज्ञप्रतिज्ञायै प्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

स्वस्ति मंगल पाठ

(चौपाई)

स्वस्ति श्री श्री ऋषभ जिनेश, स्वस्ति करें जिनवर अजितेश।
संभव करें असंभव द्वेष, अभिनन्दन दुख हरें अशेष।। १ ।।
सुमति प्रदाता सुमति जिनेश, पद्मप्रभ जिनवर पद्मेश।
जय सुपार्श्व पारस सम जान, चन्द्रप्रभ जिन चन्द्र समान।। २ ।।
सुविधिनाथ विधिनाशनहार, शीतल शीतलता दातार।
जय श्रेयांश श्रेय करतार, वासुपूज्य शिवसुख दातार।। ३ ।।
विमल विमल जीवन दातार, श्री अनन्त आनन्द अपार।
धर्म कहें संसार असार, शान्ति अनन्त शान्ति दातार।। ४ ।।
कुन्थु कुन्थु के रक्षणहार, अरजिन आनन्द के अवतार।
जीता है मन मल्लि जिनेश, मुनिसुव्रत व्रत धरें अशेष।। ५ ।।
नमि चरणों में नमें नरेश, जीता मन्मथ नेमि जिनेश।
पारस पारस से दातार, वीर अहिंसा के अवतार।। ६ ।।

(दोहा)

चौबीसों जिनराज ही मंगल मंगल हेतु।
स्वस्ति स्वरूप विराजहीं सबको मंगल देतु।। ७ ।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

(हरिगीत)

ज्ञानी तपस्वी मुनिवरों को ऋद्धियाँ उपलब्ध हों।
पर ऋद्धियों की सिद्धियों पर रंच न वे मुग्ध हों।।
वे तो निरन्तर लीन रहते आतमा के ज्ञान में।
आतमा के चिन्तवन निज आतमा के ध्यान में।। १ ।।
अरे चौसठ ऋद्धियों में प्रथम केवलज्ञान है।
दूसरी है मनःपर्यय तृतीय अवधीज्ञान है।।

इत्यादि चौसठ ऋद्धियाँ सब ज्ञान का विस्तार है।
रे ज्ञान के विस्तार का न आर है न पार है।। २ ।।
अन्य लौकिक सिद्धियाँ भी ऋद्धियों से प्राप्त हो।
पर मुनिवरों को उन सभी से नहीं कोई राग हो।।
वे तो स्वयं में जम गये वे तो स्वयं में रम गये।
सारे जगत से विमुख हो सद्ज्ञान में परिणम गये।। ३ ।।
आतमा के चिन्तवन में आतमा के ज्ञान में।
वे तो निरन्तर लगे रहते आतमा के ध्यान में।।
कैसे कहें उन मुनिवरों से तुम बताओ हे प्रभो।
निज आतमा को छोड़कर हे प्रभो हम पर ध्यान दो।।४ ।।
नहीं कोई किसी का कुछ भी करे इस लोक में।
यह जानते हैं सभी आगम ज्ञान के आलोक में।।
सब जानते हैं समझते व्यवहार में यों बह रहे।
उन ऋद्धिधारी ऋषिवरों से प्रभो फिर भी कह रहे।। ५ ।।
रे ऋद्धिधारी मुनिवरो! कल्याण सब जग का करो।
अज्ञान मोहित जगत की दुर्गति मुनिवर परिहरो।।
यह जगत मिथ्यामार्ग तज सन्मार्ग में वर्तन करे।
जिनशास्त्र का स्वाध्याय कर निजज्ञान का मार्जन करे।। ६ ।।
अन्याय और अनीति छोड़े अभक्ष्य भक्षण न करे।
न्याय एवं नीति से सन्मार्ग पर आगे बढ़े।।
होवे अहिंसक आचरण आहार और विहार में।
सावधानी रखें हम व्यवहार में व्यापार में।। ७ ।।

(दोहा)

सभी संत मंगलमयी मंगल के आधार।
मल गाले मंगल करें करें मंगलाचार।। ८ ।।
सभी ऋद्धियों के धनी सभी दिगम्बर संत।
और कछु नहिं चाहिये चाहे भव का अंत।। ९ ।।

इति परमर्षि स्वस्तिमंगलविधानं पुष्पांजलि क्षिपेत्)

–●–

देव–शास्त्र–गुरु पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(अडिल्ल)

प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धान्त जू।
गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुर-पंथ जू।।
तीन रतन जगमाहिं सु ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्ति-प्रसाद परम-पद पाइये।।

(दोहा)

पूजों पद अरहंत के, पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट प्रकार।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव, वषट्।

(हरिगीतिका एवं दोहा)

सुरपति उरग नरनाथ तिन करि, वन्दनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा।।
वर नीर क्षीर-समुद्र घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
मलिन वस्तु हर लेत सब, जल-स्वभाव मल छीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उदर मँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहित-हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे।।
तसु भ्रमर-लोभित घ्राण पावन, सरस चन्दन घसि सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
चंदन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

यह भव-समुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परम पावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही।।
उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जे विनयवंत सुभव्य-उर-अंबुज प्रकाशन भानु हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषत, त्रिजग माहिं प्रधान हैं।
लहि कुन्द-कमलादिक पहुप, भव-भव कुवेदन सों बचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
विविध भाँति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अति सबल मद-कंदर्प जाको, क्षुधा-उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशन, को सुगरुड़ समान है।
उत्तम छहों रस युक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उद्यम नाश कीने, मोह-तिमिर महाबली।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीप-प्रकाशज्योति प्रभावली।
इह भाँति दीप प्रजाल कंचन, के सुभाजन में खचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
स्व-पर प्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह-सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगंधिताकरि, सकल परिमलता हँसै।।
इह भाँति धूप चढ़ाय नित भव ज्वलन माहिं नहिं पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं।
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
जे प्रधान फल-फल विषैं, पंचकरण-रस-लीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु, जनम के पातक हरूँ।
इह भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित भवि, करत शिव-पंकति मचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
वसुविधि अर्घ्य संजोय के, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न-भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार।।१।।

(पद्धरि छंद)

चउ कर्मसु त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवत के छ्यालिस गुणगंभीर।।२।।
शुभ समवशरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहन्त देव, वन्दौं मन-वच-तन कर सुसेव।।३।।
जिनकी धुनि ह्वै ओंकाररूप, निर-अक्षरमय महिमा अनूप।
दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघु भाषा सात शतक सुचेत।।४।।
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूँथे बारह सुअंग।
रवि-शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय।।५।।
गुरु आचारज उवझाय साधु, तन नगन रत्नत्रय निधि अगाध।
संसार देह वैराग धार, निरवांछि तपै शिव-पद निहार।।६।।
गुण छत्तिस पच्चिस आठ-बीस, भव-तारन-तरन जिहाज ईस।
गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मन-वचन-काय।।७।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर-अमर पद भोगवै।।८।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

भजन

अब प्रभु चरण छोड़ कित जाऊँ।
ऐसी निर्मल बुद्धि प्रभु दो, शुद्धातम को ध्याऊँ।।टेक.।।
सुर नर पशु नारक दुख भोगे, कबतक तुम्हें सुनाऊँ।
बैरी मोह महा दुख देवे, कैसे याहि भगाऊँ।।अब.।।
सम्यग्दर्शन की निधि दे दो, तो भवभ्रमण मिटाऊँ।
सिद्ध स्वपद को प्राप्त करूँ मैं, परम शान्त रस पाऊँ।।अब.।।
भेदज्ञान का वैभव पाऊँ, निज के ही गुण गाऊँ।
तुम प्रसाद से वीतराग प्रभु, भवसागर तर जाऊँ।।अब।।

देव-शास्त्र-गुरु पूजन

(बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' कृत)

केवल-रवि-किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
उस श्री जिन-वाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन।।
सद्दर्शन-बोध-चरण पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण।
उन देव परम-आगम गुरु को, शत-शत वन्दन, शत-शत वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

इन्द्रिय के भोग मधुर विष-सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीडा है, मैं अबतक जान नहीं पाया।।
मैं भूल स्वयं निज वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ती है।।
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु! चन्दन सम, शीतलता पाने आया है।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल हूँ कुन्द-धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किञ्चित् भी।
फिर भी अनुकूल लगें, उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही।।
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया।
निज शाश्वत अक्षत-निधि पाने, अब दास चरण-रज में आया।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं।।
चिंतन कुछ फिर संभाषण कुछ, वृत्ति कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अन्तर-कालुष धोती है।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अबतक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही।।
युग-युग से इच्छा सागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
चरणों में व्यंजन अर्पित कर, अनुपम रस पीने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु! चिर व्याप्त भयंकर अँधियारा।
श्रुत-दीप बुझा हे करुणानिधि! बीती नहिं कष्टों की कारा।।*
अतएव प्रभो! यह ज्ञान-प्रतीक, समर्पित करने आया हूँ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर-दीप जलाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी।
मैं रागी-द्वेषी हो लेता, जब परिणति होती है जड़ की।।
यों भाव-करम या भाव-मरण, सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम गंध-अनल से प्रभु, पर-गंध जलाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल-व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है।।
मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्ति-रमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षणभर निज-रस को पी चेतन, मिथ्या-मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द-अमृत पीता है।।
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रकट होता, यह ही अरहन्त अवस्था है।।
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु! निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अरहन्त अवस्था पाऊँगा।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

---

* मूल छन्द में लेखक द्वारा परिवर्तन किया गया है। देखें पृष्ठ-३० पर

जयमाला

(ताटंक)

भववन में जीभर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा।।

(बारह भावना)

झूठे जग के सपने सारे, झूठीं मन की सब आशायें।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण-भंगुर पल में मुरझायें।।
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृत-काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या?
संसार महादुखसागर के, प्रभु दुखमय सुख-आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन-कामिनी प्रासादों में।।
मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते।।
मेरे न हुए ये, मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज समरस पीनेवाला हूँ।
जिसके शृंगारों में मेरा, यह महँगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़-काया से, इस चेतन का कैसा नाता।।
दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस, वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता।।
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल।।
फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें।।
हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकांत बने फिर हमको क्या।।
जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नय-तम सत्वर टल जाये।
बस ज्ञाता-द्रष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जाये।।
चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी।।

(देव–स्तवन)

चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जाये।
मुरझाई ज्ञान–लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जाये।
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जायेगी इच्छा–ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक में घी डाला।।
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख को ही अभिलाषा।
अबतक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा।।
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तव चरणों में, जग के माणिक–मोती सारे।।

(शास्त्र–स्तवन)

स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव–वारिधि तिरते हैं।।

(गुरु–स्तवन)

हे गुरुवर! शाश्वत सुखदर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करनेवाला है।।
जब जग विषयों में रच–पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विषकंटक बोता हो।।
हो अर्द्ध–निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो।।
करते तप शैल नदी–तट पर, तरु–तल वर्षा की झड़ियों में।
समता–रसपान किया करते, सुख–दुःख दोनों की घड़ियों में।।
अन्तर्ज्वाला हरती वाणी, मानो झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव–बन्धन तड़–तड़ टूट पड़ें, खिल जायें अन्तर की कलियाँ।।
तुम–सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ।
दिन–रात लुटाया करते हो, सम–शम की अविनश्वर मणियाँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे निर्मल देव! तुम्हें प्रमाण, हे ज्ञान–दीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति–त्याग के मूर्तिमान, शिव–पथ–पंथी गुरुवर! प्रणाम।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

देव-शास्त्र-गुरु-पूजन

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(दोहा)

शुद्धब्रह्म परमात्मा, शब्दब्रह्म जिनवाणि।
शुद्धातम साधकदशा, नमौं जोड़ जुगपाणि।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

आशा की प्यास बुझाने को, अबतक मृगतृष्णा में भटका।
जल समझ विषय-विष भोगों को, उनकी ममता में था अटका।।
लख सौम्यदृष्टि तेरी प्रभुवर, समता-रस पीने आया हूँ।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इसको लौटाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल से जब जला हृदय, चन्दन ने कोई न काम किया।
तन को तो शान्त किया इसने, मन को न मगर आराम दिया।।
संसार-ताप से तप्त हृदय, सन्ताप मिटाने आया हूँ।
चरणों में चन्दन अर्पण कर, शीतलता पाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिमान किया अबतक जड़ पर, अक्षयनिधि को ना पहचाना।
मैं जड़ का हूँ जड़ मेरा है, यह सोच बना था मस्ताना।।
क्षत में विश्वास किया अबतक, अक्षत को प्रभुवर ना जाना।
अभिमान की आन मिटाने को, अक्षयनिधि तुम को पहिचाना।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दिन-रात वासना में रहकर, मेरे मन ने प्रभु सुख माना।
पुरुषत्व गँवाया पर प्रभुवर, उसके छल को ना पहिचाना।।
माया ने डाला जाल प्रथम, कामुकता ने फिर बाँध लिया।
उसका प्रमाण यह पुष्प-बाण, लाकर के प्रभुवर भेंट किया।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटानी चाही थी।
इस नागिन से बचने को प्रभु, हर चीज बनाकर खाई थी।।
मिष्टान्न अनेक बनाये थे, दिन-रात भखे न मिटी प्रभुवर।
अब संयम-भाव जगाने को, लाया हूँ ये सब थाली भर।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पहले अज्ञान मिटाने को, दीपक था जग में उजियाला।
उससे न हुआ कुछ तब युग ने, बिजली का बल्ब जला डाला।।
प्रभु भेद-ज्ञान की आँख न थी, क्या कर सकती थी यह ज्वाला।
यह ज्ञान है कि अज्ञान कहो, तुमको भी दीप दिखा डाला।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-कर्म कमाऊँ सुख होगा, अबतक मैंने यह माना था।
पाप कर्म को त्याग पुण्य को, चाह रहा अपनाना था।।
किन्तु समझ कर शत्रु कर्म को, आज जलाने आया हूँ।
लेकर दशांग यह धूप, कर्म की धूम उड़ाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों को अमृतफल जाना, विषयों में निश-दिन मस्त रहा।
उनके संग्रह में हे प्रभुवर! मैं व्यस्त-त्रस्त-अभ्यस्त रहा।।
शुद्धात्मप्रभा जो अनुपम फल, मैं उसे खोजने आया हूँ।
प्रभु सरस सुवासित ये जड़फल, मैं तुम्हें चढ़ाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

समयसार जिनदेव हैं, जिन-प्रवचन जिनवाणी।
नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु, करें कर्म की हानि।।

(वीरछन्द)

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अबतक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहिचाना।।
प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्त्ता अब तक, सत् का न प्रभो सम्मान किया।।
भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
स्याद्वाद-नय, अनेकान्त-मय, समयसार समझाया है।।
उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय गँवाया है।
शुद्धात्म-रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है।।
मैं समझ न पाया था अबतक, जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्त्व निकलते हैं।।
राग धर्ममय धर्म रागमय, अबतक ऐसा जाना था।
शुभ-कर्म कमाते सुख होगा, बस अबतक ऐसा माना था।।
पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा।
राग-भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा।।

वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हम को जो दिखलाती है।।
उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है।।
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु सम्भाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रकट हो रहा अन्तर्मन।।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो।
ज्ञानी-ध्यानी-समरससानी, द्वादश विधि तप नित करते जो।।
चलते-फिरते सिद्धों-से गुरु-चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं।।
हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर वाणी।
हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिनकी चर्या समरससानी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(दोहा)

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चारित्र की खानि हैं, मैं वंदौं धरि ध्यान।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

भजन

प्रभु पै यह वरदान सुपाऊँ, फिर जग कीच बीच नहीं आऊँ।।टेक।।
जल गंधाक्षत पुष्प सुमोदक, दीप धूप फल सुन्दर ल्याऊँ।
आनन्द जनक कनक भाजन धरि, अर्घ अनर्घ बनाय चढ़ांऊ।।१।।
आगम के अभ्यास मांहिं पुनि, चित एकाग्र सदैव लगाऊँ।
संतनि की संगति तजि के मैं, अंत/और कहूँ इक छिन नहिं जाऊँ।।२।।
दोषवाद में मौन रहूँ फिर, पुण्य पुरुष गुण निश-दिन गाऊँ।
मिष्ट स्पष्ट सबहिं सो भाषु, वीतराग निज भाव बढ़ाऊँ।।३।।
बाहिर दृष्टि ऐंच के अन्तर, परमानन्द स्वरूप लखाऊँ।
'भागचन्द' शिव प्राप्त न जौलौं, तोलौं तुम चरणाम्बुज ध्याऊँ।।४।।

देव-शास्त्र-गुरु पूजन

(डॉ. अखिल बंसल कृत)

(दोहा)

तीन लोक के जीव सब, आकुल व्याकुल आज।
देव-शास्त्र-गुरु शरण लें, सकल सुधारें काज।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठः ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

मैं तो चहुँगति में भटक चुका, दर्शन को प्रभुवर तरस रहा।
जिनवर चरणों में जगह मिले, सुख सौम्य जहाँ पर बरस रहा।।
कर्मोदय से झुलसा स्वामी, शीतलता मुझको मिल जाये।
अमृत-जल भरलाया गगरी, सिंचित फुलवारी खिल जाये।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं पंच पाप में भरमाया, परहित कुछ काम नहीं आया।
मन वायु वेग-सा चंचल है, जिसको मैं बाँध नहीं पाया।।
आक्रोश अग्नि के शमन हेतु, चन्दन अर्पण ढिंग लाया हूँ।
संसार दाह का नाश करो, हे नाथ शरण में आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

किंचित् वैभव की चाह नहीं, ना राज-पाट की अभिलाषा।
रत्नत्रय निधि बस मिल जाये, मन में यह जाग उठी आशा।।
मैं अक्षय गुण का भण्डारी, फिर भी खुद को न पहिचाना।
यह अक्षत पुंज समर्पित हैं, जिनको मैंने अपना माना।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

विषयों का सेवन भोग किया, मधुरस अधरों से पीता था।
अगणित पापों का बोझ लिये, सुख की चाहत में जीता था।।
हे नाथ आपके चरणाम्बुज की, महक व्याप्त है कण-कण में।
चरणों में सुमन समर्पित हैं, चैतन्य सुरभि है जीवन में।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नाना व्यंजन के भोग किये, पर क्षुधा-रोग नहीं मिट पाता।
ज्यों-ज्यों मैं इसमें लिप्त रहा, त्यों-त्यों ही यह बढ़ता जाता।।
यह व्याधि बड़ी है दुःखदायी, इससे छुटकारा कब पाऊँ।
नैवेद्य समर्पित चरणों में, हे नाथ ! तुम्हारे गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जब अगणित दीपों के द्वारा, संसार-तिमिर छँट जाता है।
अज्ञान अँधेरा छँटा नहीं, जो भव-भव भ्रमण कराता है।।
यह दीप सँजोकर लाया हूँ, इसमें प्रकाश भर दो प्रभुवर।
तेरे सदृश बन जाने को, अति व्याकुल हूँ मेरे जिनवर।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अरे भार-सा यह जग सारा, आत्मग्लानि जो उपजाए।
ले हाथों में धूप सुगंधित, नभ मण्डल नित महकाये।।
कब धन्य सुअवसर मुझे मिले, जब मुक्तिरमा का वरण करूँ।
इस भवसागर से तिर जाऊँ, मम मस्तक प्रभु चरण धरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

'अखिल' विश्व के फल हैं अर्पित, आवागमन ना होवे नाथ।
शिव मन्दिर में वास करूँ नित, घरगृहस्थी का छूटे साथ।।
अपने दुःख से दुःखी रहा मैं, नहीं किसी का किंचित् दोष।
देव-शास्त्र-गुरु का आलम्बन, जग में देता सुख-संतोष।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टद्रव्य के सम्मिश्रण से, मैंने यह अर्घ्य बनाया है।
भक्तिभाव से आकर जिनवर, चरणन नाथ चढ़ाया है।।
मम राह कंटकाकीर्ण प्रभो, इसको निष्कंटक बना सकूँ।
वह शक्ति मुझे दो दयानिधे, जिससे अनर्घ्यपद प्राप्त करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

देव शास्त्र गुरु कथन पर, करो पूर्ण श्रद्धान।
मिले शीघ्र ही परम पद, होवै निज कल्याण।।

(पद्धरी छन्द)

जय वीतराग सर्वज्ञ नाथ, छूटे न कभी प्रभु चरण साथ।
तुम अष्टकर्म का किये नाश, अघ पूर्ण निराकुल हुए नाथ।।
हित का उपदेश दिया जिनवर, है यह संसार कहा नश्वर।
कर चार घातिया कर्म हनन, बतलाया आगम करो मनन।।
प्रभु छियालीस गुण के हो भण्डार, अतिशय की महिमा है अपार।
अष्टादश दोष किये अभाव, नहिं रखें किसी से बैर भाव।।
अतएव समर्पित है जीवन, अर्पित है मेरा नश्वर तन।
अब तो सन्मार्ग दिखाओ देव, विनती करता प्रभु चरण सेव।।
जिनकी ध्वनि है ओंकार रूप, नहिं इसमें कोई रंक भूप।
सब बैठ करें श्रुत का अभ्यास, तब सिद्धालय में होय वास।।
अज्ञान-अंधेरा करत दूर, क्रोधादि कषायें होत चूर।
है द्वादशांग वाणी अपार, जिनका नहिं पावै कोई पार।।
चंदन-सम शीतल जगत होय, दश अष्ट महा भाषा सुसोह।
यह सप्त भंग नहीं द्वंद्व फंद, सब कर्म नशावें मंद-मंद।।
जग का अँधियारा मिटत जात, अब राह सुगम जिनवाणी मात।
यह शीश नमत है बार-बार, परमागम का जब पढ़ैं सार।।
जिनगुरु की महिमा है महान, जो नग्न दिगम्बर करत ध्यान।
गज, मृग, सिंह विचरत चहूँ ओर, विप्लव फैलावें बैरी घोर।।
वे पंच महाव्रत धरें धीर, आतम मंथन कर हरैं पीर।
पूजें सब उनको भक्तिभाव, ढिंग बैठ सुनैं सब धर्म चाव।।
वे काम क्रोध, भय करें त्याग, तब ही बुझ पाये राग-आग।
वन में रहते वैराग्य धार, भवसागर से लग जायें पार।।
विषयों की आशा से विरक्त, सब धन्य कहें बन जायें भक्त।
सुर-नर-किन्नर सब भूल द्वेष, ऐसा है गुरुवर तेरा वेष।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देव-शास्त्र-गुरु को नमूँ, मैं पूजौं धरि ध्यान।
'अखिल' जगत के जीव सब, पावैं पद निर्वाण।।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत)

समुच्चय पूजा

(श्री देव-शास्त्र-गुरु, विदेह क्षेत्र स्थित बीस तीर्थङ्कर तथा सिद्ध परमेष्ठी)

(ब्र. सरदारमलजी 'सच्चिदानन्द' कृत)

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूँ चित्त हुलसाय।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकर समूह! श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठी समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

अनादिकाल से जग में स्वामिन, जल से शुचिता को माना।
शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधि को नहीं पहचाना।।
अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने में अबतक मैंने, पर में की झूठी ममता है।।
चन्दन-सम शीतलता पाने, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तान्तसिद्ध- परमेष्ठिभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय पद बिन फिरा, जगत की लख चौरासी योनी में।
अष्ट कर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं।।
अक्षयनिधि निज की पाने अब, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।
मन्मथ बाणों से विंध करके, चहुँगति दुःख उपजाया है।।

स्थिरता निज में पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तान्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्रस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शांत हुई।
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई।।
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरु भ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़दीप विनश्वर को अबतक, समझा था मैंने उजियारा।
निज गुण दरशायक ज्ञानदीप से, मिटा मोह का अँधियारा।।
ये दीप समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी।
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग-द्वेष नशायेगी।।
उस शक्ति दहन प्रकटाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बदाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।
आतमरस भीने निज गुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया।
अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये।।
ये अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु भगवान।
अब वरणूँ जयमालिका, करूँ स्तवन गुणगान।।

नशे घातिया कर्म अरहन्त देवा, करें सुर-असुर-नर-मुनि नित्य सेवा।
दरशज्ञान सुखबल अनन्त के स्वामी, छियालिस गुणयुत महाईशनामी।।
तेरी दिव्यवाणी सदा भव्य मानी, महामोह विध्वंसिनी मोक्ष-दानी।
अनेकांतमय द्वादशांगी बखानी, नमो लोक माता श्री जैनवाणी।।
विरागी अचारज उवज्झाय साधू, दरश-ज्ञान भण्डार समता अराधू।
नगन वेशधारी सु एका विहारी, निजानन्द मंडित मुकति पथ प्रचारी।।
विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजें, विहरमान वंदूँ सभी पाप भाजें।
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी, अनाकुल समाधान सहजाभिरामी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द)

देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धर ले रे।
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तर ले रे।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

अपनी उन्नति में इतना समय लगाओ कि दूसरे की निन्दा करने की फुरसत ही न मिले।

पंच-परमेष्ठी पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

अरहन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन।
जय पंच परम परमेष्ठी जय, भवसागर तारणहार नमन॥
मन-वच-काया पूर्वक करता हूँ, शुद्ध हृदय से आह्वानन।
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन॥
निज आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन।
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्ध रूप का हो दर्शन॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

मैं तो अनादि से रोगी हूँ, उपचार कराने आया हूँ।
तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ॥
मैं जन्म-जरा-मृतु नाश करूँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संसार-ताप में जल-जल कर, मैंने अगणित दुःख पाये हैं।
निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाये हैं॥
शीतल चंदन है भेंट तुम्हें, संसार-ताप नाशो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

दुःखमय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही।
शुभ-अशुभ भाव की भँवरों में चैतन्य शक्ति निज अटक रही॥
तन्दुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मैं काम-व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिली किंचित् छाया।
चरणों में पुष्प चढ़ाता हूँ, तुम को पाकर मन हर्षाया।।
मैं काम-भाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं क्षुधा-रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति में भरमाया हूँ।
जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ।।
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा-रोग मेटो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्ध महा-अज्ञानी मैं, निज को पर का कर्त्ता माना।
मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्मस्वरूप न पहिचाना।।
मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों की ज्वाला धधक रही, संसार बढ़ रहा है प्रतिपल।
संवर से आस्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल-पल।।
यह धूप चढ़ाकर अब आठों कर्मों का हनन करूँ स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज आत्मतत्त्व का मनन करूँ, चिंतवन करूँ निज चेतन का।
दो श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का।।
उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ, निर्वाण महाफल हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अबतक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ।।
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(पद्धरि)

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यान लीन गुणमय अपार।
अष्टादश दोष रहित जिनवर, अरहन्त देव को नमस्कार।।१।।
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार।
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत, भगवंत सिद्ध को नमस्कार।।२।।
छत्तीस सुगुण से तुम मण्डित, निश्चय रत्नत्रय हृदय धार।
हे मुक्तिवधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार।।३।।
एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार।
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान, श्री उपाध्याय को नमस्कार।।४।।
व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म, वैराग्य भावना हृदय धार।
हे द्रव्य-भाव संयममय मुनिवर, सर्व साधु को नमस्कार।।५।।
बहु पुण्यसंयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिनदेव चरण दर्शन।
हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सफल बने मानव जीवन।।६।।
निज-पर का भेद जानकर मैं, निज को ही निज में लीन करूँ।
अब भेदज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ।।७।।
निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परिणति को ही पहचानूँ।
पर-परिणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्त्व को ही जानूँ।।८।।
जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज, शुक्लध्यान मैं ध्याऊँगा।
तब चार घातिया क्षय करके, अरहन्त महापद पाऊँगा।।९।।
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु! कब इसको पाऊँगा।
सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निजस्वभाव में आऊँगा।।१०।।
अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु! मैंने की है पूजन।
तबतक चरणों में ध्यान रहे, जबतक न प्राप्त हो मुक्ति सदन।।११।।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल गान करूँ।
मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मंत्र का ध्यान करूँ।।१२।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सिद्ध पूजा

(आचार्य पद्मनन्दि कृत)

ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिन्दु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरित-दिग्गताम्बुज-दलं तत्संधि-तत्त्वान्वितम्।
अन्तःपत्र-तटेष्वनाहतयुतं ह्रींकार-संवेष्टितं
देवं ध्यायति यः स मुक्ति-सुभगो वैरीभ-कण्ठीरवः।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(अनुष्टुप)

निरस्त-कर्म-संबंधं सूक्ष्मं नित्यं निरामयम्।
वन्देऽहं परमात्मानममूर्तमनुपद्रवम् ।।

(वसन्ततिलका)

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्म-गम्यं
हान्यादि-भाव-रहितं भव-वीत-कायम्।
रेवापगा-वरसरो-यमुनोद्भवानां
नीरैर्यजे कलशगैर्वर-सिद्ध-चक्रम्।।

ॐ ह्रीं श्री क्षायिकसम्यक्त्व-अनन्तदर्शन-अनन्तज्ञान-अनन्तवीर्य-अगुरुलघुत्व-अवगाहनत्व-सूक्ष्मत्व-निराबाधत्वगुणसम्पन्न-सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

आनन्द-कंद-जनकं घन-कर्म-मुक्तं
सम्यक्त्व-शर्म-गरिमं जननार्ति-वीतम्।
सौरभ्य-वासित-भुवं हरि-चन्दनानां
गन्धैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

सर्वावगाहन-गुणं सुसमाधि-निष्ठं
सिद्धं स्वरूप-निपुणं कमलं विशालम्।

सौगन्ध्य-शालि-वनशालि-वराक्षतानां
पुंजैर्यजे शशि निभैर्वर-सिद्धचक्रम्॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

नित्यं स्वदेह-परिमाणमनादिसंज्ञं-
द्रव्यानिपेक्षममृतं मरणाद्यतीतम्।
मन्दार-कुन्द-कमलादि-वनस्पतीनां
पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वर-सिद्ध-चक्रम्॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

ऊर्ध्व-स्वभाव-गमनं सुमनो व्यपेतं
ब्रह्मादि-बीज-सहितं गगनावभासम्।
क्षीरान्न-साज्य-वटकै रस-पूर्ण-गर्भै-
र्नित्यं यजे चरुवरैर्वर-सिद्ध-चक्रम्॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

आतंक-शोक-भय-रोग-मद-प्रशांत-
निर्द्वन्द्व-भाव-धरणं महिमा-निवेशम्।
कर्पूर-वर्ति-बहुभिः कनकावदातै-
र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वर-सिद्ध-चक्रम्॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

पश्यन्समस्त-भुवनं युगपन्नितान्तं
त्रैकाल्य-वस्तु-विषये निविड-प्रदीपम्।
सद्द्रव्य-गन्ध-घनसार-विमिश्रितानां
धूपैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम्॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

सिद्धासुराधिपति-यक्ष-नरेन्द्र-चक्रै-
र्ध्येयं शिवं सकल-भव्य-जनैः सुवन्द्यम्।

नारंगि-पूग-कदली-फल-नारिकेलैः

सोऽहं यजे वरफलैर्वर-सिद्ध-चक्रम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

(शार्दूलविक्रीडित)

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रत-गणैः संगं वरं चन्दनम्।

पुष्पौघं विमलं सदक्षत-चयं रम्यं चरुं दीपकम्।।

धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये।

सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वाञ्छितम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(भावाष्टक)

(द्रुतविम्बित)

निज-मनो मणि-भाजन-भारया सम-रसैक-सुधारस-धारया।

सकल बोध-कला-रमणीयकं सहज-सिद्धमहं परिपूजये।।१।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

सहज-कर्म-कलङ्क-विनाशनैरमल-भाव-सुवासित-चन्दनैः।

अनुपमान-गुणावलि-नायकं सहज-सिद्धमहं परिपूजये।।२।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

सहज-भाव-सुनिर्मल-तन्दुलैः सकल-दोष-विशाल-विशोधनैः।

अनुपरोध-सुबोध-निधानकं सहज-सिद्धमहं परिपूजये।।३।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

समयसार-सुपुष्प-सुमालया सहज-कर्मक-रेणु-विशोधया।

परम-योग-बलेन वशीकृतं सहज-सिद्धमहं परिपूजये।।४।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

अकृत-बोध-सुदिव्य-निवेद्यकैर्विहित-जाति-जरा-मरणान्तकैः।

निरवधि-प्रचुरात्म-गुणालयं सहज-सिद्धमहं परिपूजये।।५।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

सहज-रत्न-रुचि-प्रतिदीपकैः रुचि-विभूति-तमः प्रविनाशनैः।

निरवधि-स्वविकास-प्रकाशनै सहज-सिद्धमहं परिपूजये।।६।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

निज-गुणाक्षय-रूप-सुधूपनैः स्वगुण-घाति-मल-प्रविनाशनैः।
विशद-बोध-सुदीर्घ-सुखात्मकं, सहज-सिद्धमहं परिपूजये।।७।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

परम-भाव-फलावलि-सम्पदा, सहज-भाव-कुभाव-विशोधया।
निज-गुणास्फुरणात्म-निरञ्जनं सहज-सिद्धमहं परिपूजये।।८।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

नेत्रोन्मीलि-विकास-भाव-निवहैरत्यन्त-बोधाय वै,
वार्गन्धाक्षत-पुष्प-दाम-चरुकैः सद्दीप-धूपैःफलैः।
यश्चिंतामणि-शुद्ध-भाव-परम-ज्ञानात्मकैरर्चयेत्,
सिद्धं स्वादुमगाध-बोधमचलं संचर्चयामो वयम्।।९।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं, सूक्ष्म-स्वभाव-परमं यदनन्तवीर्यम्।
कर्मोघ-कक्ष-दहनं सुख-सस्य-बीजं, वन्दे सदा निरुपमं वर-सिद्धचक्रम्।।

(शार्दूलविक्रीडित)

त्रैलोक्येश्वर-वन्दनीय-चरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं
यानाराध्य निरुद्ध-चण्ड-मनसः सन्तोऽपि तीर्थङ्कराः।।
सत्सम्यक्त्व-विबोध-वीर्य-विशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणै-
र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान्।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जयमाला

विराग सनातन शान्त निरंश, निरामय निर्भय निर्मल-हंस।
सुधाम विबोध-निधान विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।१।।
विदूरित-संसृतिभाव निरङ्ग, समामृत-पूरित देव विसंग।
अबन्ध-कषाय-विहीन विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।२।।
निवारित-दुष्कृत-कर्म-विपाश, सदामल-केवल-केलि-निवास।
भवोदधि-पारग शांत विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।३।।
अनन्त-सुखामृत-सागर धीर, कलङ्करजो-मल-भूरि-समीर।
विखण्डित काम विराम विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।४।।
विकार-विवर्जित तर्जित-शोक, विबोधसुनेत्र-विलोकित-लोक।
विहार विराव विरङ्ग विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।५।।

रजोमल-खेद-विमुक्त विगात्र, निरन्तर नित्य सुखामृत-पात्र।
सुदर्शन-राजित नाथ विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।६ ।।
नरामर-वन्दित निर्मल-भाव, अनन्त मुनीश्वर-पूज्य-विहाव।
सदोदय विश्व महेश विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।७ ।।
विदम्भ वितृष्ण विदोष विनिद्र परात्पर शङ्कर सार वितन्द्र।
विकोप विरूप विशङ्क विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।८ ।।
जरा-मरणोज्झित वीत-विहार, विचिन्तित निर्मल निरहङ्कार।
अचिन्त्य-चरित्र विदर्प विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।९ ।।
विवर्ण विगंध विमान विलोभ, विमाय विकाय विशब्द विशोभ।
अनाकुल केवल सर्व विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।१० ।।

(मालिनी)

असम-समयसारं चारु-चैतन्य-चिह्नं,
परपरिणति-मुक्तं पद्मनन्दीन्द्र-वन्द्यम् ।
निखिल-गुण-निकेतं सिद्ध-चक्रं विशुद्धं,
स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम् ।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(अडिल्ल छंद)

अविनाशी अविकार परम रसधाम हो,
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनन्त हो,
जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवन्त हो ।।१ ।।
ध्यान अग्निकर कर्म कलंक सबै दहे,
नित्य निरंजन देव सरूपी ह्वै रहे।
ज्ञायक ज्ञेयाकार ममत्व निवारकें,
सो परमातम सिद्ध नमूँ सिर नायकें ।।२ ।।

(दोहा)

अविचल ज्ञान प्रकाशमय, गुण अनन्त की खान।
ध्यान धरै सो पाइये, परम सिद्ध भगवान ।।३ ।।

इति पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

* * *

सिद्ध पूजन

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(दोहा)

चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता-दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

ज्यों-ज्यों प्रभुवर जलपान किया, त्यों-त्यों तृष्णा की आग जली।
थी आश कि प्यास बुझेगी अब, पर यह सब मृगतृष्णा निकली।।
आशा-तृष्णा से जला हृदय, जल लेकर चरणों में आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

तन का उपचार किया अबतक, उस पर चंदन का लेप किया।
मल-मल कर खूब नहा करके, तन के मल का विक्षेप किया।।
अब आतम के उपचार हेतु, तुमको चन्दन-सम है पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर, तुम ही अखण्ड अविनाशी हो।
तुम निराकार अविचल निर्मल, स्वाधीन सफल संन्यासी हो।।
ले शालिकणों का अवलम्बन, अक्षयपद! तुमको अपनाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

जो शत्रु जगत का प्रबल काम, तुमने प्रभुवर उसको जीता।
हो हार जगत के वैरी की, क्यों नहिं आनन्द बढ़े सब का।।
प्रमुदित मन विकसित सुमन नाथ, मनसिज को ठुकराने आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

मैं समझ रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता है।
भोजन बिन नरकों में जीवन, भरपेट मनुज क्यों मरता है।।

तुम भोजन बिन अक्षय सुखमय, यह समझ त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

आलोक ज्ञान का कारण है, इन्द्रिय से ज्ञान उपजता है।
यह मान रहा था पर क्यों कर, जड़-चेतन-सर्जन करता है।।
मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेद-ज्ञान पा हरषाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

मेरा स्वभाव चेतनमय है, इसमें जड़ की कुछ गंध नहीं।
मैं हूँ अखण्ड चित्पिण्ड चण्ड, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।।
यह धूप नहीं, जड़-कर्मों की रज आज उड़ाने मैं आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

शुभ-कर्मों का फल विषय-भोग, भोगों में मानस रमा रहा।
नित नई लालसायें जागीं, तन्मय हो उनमें समा रहा।।
रागादि विभाव किये जितने, आकुलता उनका फल पाया।
होकर निराश सब जगभर से, अब सिद्ध-शरण में मैं आया।।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
पहनीं, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की।।
सुरभी धूपायन की फैली, शुभ-कर्मों का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया।।
जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुम को लख यह सद्ज्ञान हुआ।।
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आलोकित हो लोक में, प्रभु परमात्मप्रकाश।
आनन्दामृत पानकर, मिटे सभी की प्यास।।

(पद्धरि)

जय ज्ञान मात्र ज्ञायक स्वरूप, तुम हो अनन्त चैतन्य रूप।
तुम हो अखण्ड आनन्द पिण्ड, मोहारि दलन को तुम प्रचण्ड।।
रागादि विकारी भाव जार, तुम हुए निरामय निर्विकार।
निर्द्वन्द्व निराकुल निराधार, निर्मम निर्मल हो निराकार।।
नित करत रहत आनन्द रास, स्वाभाविक परिणति में विलास।
प्रभु शिव-रमणी के हृदय हार, नित करत रहत निज में विहार।।
प्रभु भवदधि यह गहरो अपार, बहते जाते सब निराधार।
निज परिणति का सत्यार्थभान, शिवपद दाता जो तत्त्वज्ञान।।
पाया नहिं मैं उसको पिछान, उलटा ही मैंने लिया मान।
चेतन को जड़मय लिया जान, तन में अपनापा लिया मान।।
शुभ-अशुभ राग जो दुःखखान, उसमें माना आनन्द महान।
प्रभु अशुभ-कर्म को मान हेय, माना पर शुभ को उपादेय।।
जो धर्म-ध्यान आनन्द रूप, उसको जाना मैं दुःख स्वरूप।
मनवांछित चाहे नित्य भोग, उनको ही माना है मनोग।।
इच्छा-निरोध की नहीं चाह, कैसे मिटता भव-विषय-दाह।
आकुलतामय संसार-सुख, जो निश्चय से है महा-दुःख।।
उसकी ही निश-दिन करी आश, कैसे कटता संसार-पाश।
भव-दुःख का पर को हेतु जान, पर से ही सुख को लिया मान।।
मैं दान दिया अभिमान ठान, उसके फल पर नहिं दिया ध्यान।
पूजा कीनी वरदान माँग, कैसे मिटता संसार स्वाँग।।
तेरा स्वरूप लख प्रभु आज, हो गये सफल सम्पूर्ण काज।
मो उर प्रकट्यो प्रभु भेद-ज्ञान, मैंने तुम को लीना पिछान।।

तुम पर के कर्त्ता नहीं नाथ, ज्ञाता हो सब के एक साथ।
तुम भक्तों को कुछ नहीं देत, अपने समान बस बना लेत।।
यह मैंने तेरी सुनी आन, जो लेवे तुम को बस पिछान।
वह पाता है कैवल्यज्ञान, होता परिपूर्ण कला-निधान।।
विपदामय परपद है निकाम, निजपद ही है आनन्द-धाम।
मेरे मन में बस यही चाह, निजपद को पाऊँ हे जिनाह।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

पर का कुछ नहिं चाहता, चाहूँ अपना भाव।
निज-स्वभाव में थिर रहूँ, मेटो सकल विभाव।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अशरीरी सिद्ध भगवान

(तर्ज) - (करुणा सागर भगवान, भव पार लगा देना)

अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे।
अविरुद्ध शुद्ध चिद्घन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे।।टेक।।
सम्यक्त्व सुदर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहन।
सूक्ष्मत्व वीर्य गुणखान, निर्बाधित सुखवेदन।।
हे गुण अनन्त के धाम, वन्दन अगणित मेरे।।१।।

रागादि रहित निर्मल, जन्मादि रहित अविकल।
कुल गोत्र रहित निष्कुल, मायादि रहित निश्छल।।
रहते निज में निश्चल, निष्कर्म साध्य मेरे।।२।।

रागादि रहित उपयोग, ज्ञायक प्रतिभासी हो।
स्वाश्रित शाश्वत-सुख भोग, शुद्धात्म-विलासी हो।।
हे स्वयं सिद्ध भगवान, तुम साध्य बनो मेरे।।३।।

भविजन तुम-सम निज-रूप, ध्याकर तुम-सम होते।
चैतन्य पिण्ड शिव-भूप, होकर सब दुख खोते।।
चैतन्यराज सुखखान, दुख दूर करो मेरे।।४।।

सिद्ध पूजन

(श्री युगलजी कृत)

(हरिगीतिका)

निज वज्र पौरुष से प्रभो! अन्तर-कलुष सब हर लिये।
प्रांजल[१] प्रदेश-प्रदेश में, पीयूष निर्झर झर गये।।
सर्वोच्च हो अतएव बसते, लोक के उस शिखर रे!
तुम को हृदय में स्थाप, मणि-मुक्ता चरण को चूमते।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीरछन्द)

शुद्धातम-सा परिशुद्ध प्रभो! यह निर्मल नीर चरण लाया।
मैं पीड़ित निर्मम ममता से, अब इसका अंतिम दिन आया।।
तुम तो प्रभु अंतर्लीन हुए, तोड़े कृत्रिम सम्बन्ध सभी।
मेरे जीवन-धन तुमको पा, मेरी पहली अनुभूति जगी।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम्.....

मेरे चैतन्य-सदन में प्रभु! धू-धू क्रोधानल जलता है।
अज्ञान-अमा[२] के अंचल में, जो छिपकर पल-पल पलता है।।
प्रभु! जहाँ क्रोध का स्पर्श नहीं, तुम बसो मलय की महकों में।
मैं इसीलिए मलयज लाया, क्रोधासुर भागे पलकों में।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनम्...

अधिपति प्रभु! धवल भवन[३] के हो, और धवल तुम्हारा अन्तस्तल।
अंतर के क्षत सब विक्षत कर, उभरा स्वर्णिम सौंदर्य विमल।।
मैं महामान से क्षत-विक्षत, हूँ खंड-खंड लोकांत-विभो!
मेरे मिट्टी के जीवन में, प्रभु! अक्षत की गरिमा भर दो।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम्..........

---

१. शुद्ध   २. अमावस्या   ३. सिद्धशिला

चैतन्य-सुरभि की पुष्पवाटिका, में विहार नित करते हो।
माया की छाया रंच नहीं, हर बिन्दु सुधा की पीते हो।।
निष्काम प्रवाहित हर हिलोर, क्या काम काम की ज्वाला से।
प्रत्येक प्रदेश प्रमत्त हुआ, पाताल-मधु-मधुशाला[१] से।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम्.........

यह क्षुधा देह का धर्म प्रभो! इसकी पहिचान कभी न हुई।
हर पल तन में ही तन्मयता, क्षुत्-तृष्णा अविरल पीन[२] हुई।।
आक्रमण क्षुधा का सह्य नहीं, अतएव लिये हैं व्यंजन ये।
सत्वर[३] तृष्णा को तोड़ प्रभो! लो, हम आनंद-भवन पहुँचे।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्.......

विज्ञाननगर के वैज्ञानिक, तेरी प्रयोगशाला विस्मय।
कैवल्य-कला में उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण विश्व का ही वैभव।।
पर तुम तो उससे अति विरक्त, नित निरखा करते निज निधियाँ।
अतएव प्रतीक प्रदीप लिये, मैं मना रहा दीपावलियाँ[४]।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपम्........

तेरा प्रासाद महकता प्रभु! अति दिव्य दशांगी[५] धूपों से।
अतएव निकट नहिं आ पाते, कर्मों के कीट-पतंग अरे!
यह धूप सुरभि-निर्झरणी, मेरा पर्यावरण[६] विशुद्ध हुआ।
छक गया योग-निद्रा[७] में प्रभु! सर्वांग अमी[८] है बरस रहा।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपम्...........

निज लीन परम स्वाधीन बसो, प्रभु! तुम सुरम्य शिव-नगरी में।
प्रतिपल बरसात गगन[९] से हो, रसपान करो शिव-गगरी में।।
ये सुरतरुओं के फल साक्षी, यह भव-संतति का अंतिम क्षण।
प्रभु! मेरे मंडप में आओ, है आज मुक्ति का उद्घाटन।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलम् ....

तेरे विकीर्ण[१०] गुण सारे प्रभु! मुक्ता-मोदक से सघन हुए।
अतएव रसास्वादन करते, रे! घनीभूत अनुभूति लिये।।

---

१. शुद्ध अन्तस्तत्त्व का आनंदभवन २. पुष्ट ३. अविलम्ब ४. महोत्सव५. दशधर्मों की
६. अंतरंग प्रदूषण ७. आनन्द-समाधि ८. अमृत ९. शून्य चैतन्य १० बिखरे हुए

हे नाथ! मुझे भी अब प्रतिक्षण, निज अंतर-वैभव की मस्ती।
है आज अर्घ्य की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु! ज्ञाता मात्र चिदेश।
शोध-प्रबंध चिदात्म[१] के, स्रष्टा तुम ही एक।।

(मानव)

जगाया तुमने कितनी बार! हुआ नहिं चिर-निद्रा का अन्त।
मदिर[२] सम्मोहन ममता का, अरे! बेचेत पड़ा मैं सन्त।।
घोर तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान।
निखिल जड़ता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान।।
ज्ञान की प्रतिपल उठे तरंग, झाँकता उसमें आतमराम।
अरे! आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम।।
किन्तु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर-मर्कट-सी[३] गहल अनन्त।
अरे! पाकर खोया भगवान, न देखा मैंने कभी बसंत।।
नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति।
क्षम्य कैसे हों ये अपराध? प्रकृति की यही सनातन रीति।।
अतः जड़-कर्मों की जंजीर, पड़ी मेरे सर्वात्म प्रदेश।
और फिर नरक-निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश!
घटा घन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा[४] मेरे शीश।
नरक में पारद-सा तन टूक, निगोदों मध्य अनंती मीच[५]।।
करें क्या स्वर्ग सुखों की बात, वहाँ की कैसी अद्भुत टेव!
अंत में बिलखे छह-छह मास, कहें हम कैसे उसको देव!
दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान।
शरण जो अपराधी को दे, अरे! अपराधी वह भगवान।।
''अरे! मिट्टी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव।
शुभाशुभ की जड़ता तो दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय।।

---

१. आत्मा के शुद्धि-विधान की शोध २. मादक ३. तोता और बंदर जैसी ४. बिजली ५. मृत्यु

अहो 'चित्' परम अकर्त्तानाथ, अरे! वह निष्क्रिय तत्त्व विशेष।
अपरिमित अक्षय वैभव-कोष'', सभी ज्ञानी का यह परिवेश[१]।।
बताये मर्म अरे! यह कौन, तुम्हारे बिन वैदेही नाथ?
विधाता शिव-पथ के तुम एक, पड़ा मैं तस्कर दल के हाथ।।
किया तुमने जीवन का शिल्प[२], खिरे सब मोह कर्म और गात[३]।
तुम्हारा पौरुष झंझावात[४], झड़ गये पीले-पीले पात।।
नहीं प्रज्ञा-आवर्त्तन[५] शेष, हुए सब आवागमन अशेष।
अरे प्रभु! चिर-समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक।।
तुम्हारा चित्-प्रकाश कैवल्य, कहें तुम ज्ञायक लोकालोक।
अहो! बस ज्ञान जहाँ हो लीन, वहीं है ज्ञेय, वहीं है भोग।।
योग-चांचल्य[६] हुआ अवरुद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कंप।
अरे! ओ योग रहित योगीश! रहो यों काल अनंतानंत।।
जीव कारण-परमात्म त्रिकाल, वही है अंतस्तत्त्व अखंड।
तुम्हें प्रभु! रहा वही अवलंब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध।।
अहो! निखरा कांचन चैतन्य, खिले सब आठों कमल[७] पुनीत।
अतीन्द्रिय सौख्य चिरंतन भोग, करो तुम धवल महल के बीच।।
उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ!
अरे! तेरी सुख-शय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात।।
प्रभो! बीती विभावरी[८] आज, हुआ अरुणोदय शीतल छाँव।
झूमते शांति-लता के कुंज, चलें प्रभु! अब अपने उस गाँव।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

चिर-विलास चिद्ब्रह्म में, चिर-निमग्न भगवंत।
द्रव्य[९]-भाव[१०] स्तुति से प्रभो!, वंदन तुम्हें अनंत।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

---

१. अनुभूति २. सुन्दर रचना ३. शरीर ४. तूफान ५. ज्ञप्ति परिवर्तन ६. आत्मप्रदेशों का कम्पन ७. आठ गुण ८. रात ९. उत्कृष्ट भक्ति परिणाम १०. निज शुद्धात्म-संवेदन।

विदेह क्षेत्र स्थित विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(दोहा)

द्वीप अढ़ाई मेरु पन, अरु तीर्थंकर बीस।
तिन सबकी पूजा करूँ, मन-वच-तन धरि सीस।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र अवतरत अवतरत, संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकराः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकराः। अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट्।

इन्द्र-फणीन्द्र-नरेन्द्र-वंद्य पद निर्मल धारी।
शोभनीक संसार सार गुण हैं अविकारी।।
क्षीरोदधि-सम नीर सों (हो) पूजों तृषा निवार।
सीमंधर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार।।
श्री जिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्येति विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन लोक के जीव पाप-आताप सताये।
तिनकों साता दाता शीतल वचन सुहाये।।
बावन चंदन सों जजूँ (हो) भ्रमन-तपत निरवार।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

यह संसार अपार महासागर जिनस्वामी।
तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका जगनामी।।
तंदुल अमल सुगंध सों (हों) पूजों तुम गुणसार।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

भविक-सरोज-विकाश निंद्य-तम हर रवि-से हो।
जति-श्रावक आचार कथन को तुमही बड़े हो।।
फूल सुवास अनेक सों (हो) पूजों मदन-प्रहार।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

काम-नाग विषधाम नाश को गरुड़ कहे हो।
छुधा महा दव-ज्वाल तास को मेघ लहे हो।।

नेवज बहुघृत मिष्ट सों (हों) पूजों भूखविडार।।
सीमंधर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार।
श्रीजिनराज हो भव-तारण-तरण जिहाज।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

उद्यम होन न देत सर्व जगमांहि भर्यो है।
मोह-महातम घोर नाश परकाश कर्यो है।।
पूजों दीप प्रकाश सों (हो) ज्ञान-ज्योति करतार।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

कर्म आठ सब काठ भार विस्तार निहारा।
ध्यान अगनि कर प्रकट सर्व कीनो निरवारा।।
धूप अनूपम खेवतें (हो) दुःख जलैं निरधार।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि. स्वाहा।

मिथ्यावादी दुष्ट लोभऽहंकार भरे हैं।
सबको छिन में जीत जैन के मेरु खड़े हैं।।
फल अति उत्तम सों जजों (हों) वांछित फल-दातार।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल-फल आठों दर्व अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर-इन्द्रनि हू तैं थुति पूरी न करी है।।
'द्यानत' सेवक जानके (हो) जग तैं लेहु निकार।।सीमं.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योअनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

ज्ञान-सुधाकर चन्द, भविक-खेत हित मेघ हो।
भ्रम-तम भान अमन्द, तीर्थंकर बीसों नमों।।

(चौपाई)

सीमंधर सीमंधर स्वामी, जुगमन्धर जुगमन्धर नामी।
बाहु बाहु जिन जग-जन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे।।

जात सुजात केवलज्ञानं, स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं, अनंतवीरज वीरज कोषं।।
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरि वज्जर हैं, चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं।।
भद्रबाहु भद्रनि के करता, श्रीभुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं, नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं।।
वीरसेन वीरं जग जानैं, महाभद्र महाभद्र बखानै।।
नमों जसोधर जसधरकारी, नमों अजित वीरज बलधारी।।
धनुष पाँचसै काय विराजै, आयु कोटि पूर्व सब छाजै।
समवशरण शोभित जिनराजा, भवजल-तारन-तरन जिहाजा।।
सम्यक् रत्नत्रय-निधि दानी, लोकालोक-प्रकाशक ज्ञानी।
शत-इन्द्रनि करि वंदित सोहैं, सुन-नर-पशु सबके मन मोहैं।।

ॐ ह्रीं श्रीविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

तुमको पूजें वंदना, करैं धन्य नर सोय।
'द्यानत' सरधा मन धरैं, सो भी धर्मी होय।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

मैं महा-पुण्य उदय से जिन-धर्म पा गया।।टेक।।
चार घाति कर्म नाशे, ऐसे अरहंत हैं।
अनन्त चतुष्टय धारी, श्री भगवन्त हैं।।
मैं अरहंत देव की शरण आ गया।।मैं.।।
अष्ट कर्म नाश किये, ऐसे सिद्ध-देव हैं।
अष्ट गुण प्रकट जिनके, हुए स्वयमेव हैं।।
मैं ऐसे सिद्ध देव की शरण आ गया।।मैं.।।
वस्तु का स्वरूप बताये, वीतराग-वाणी है।
तीन लोक के जीव हेतु, महाकल्याणी है।।
मैं जिनवाणी माँ की शरण आ गया।।मैं.।।
परिग्रह रहित, दिगम्बर मुनिराज हैं।
ज्ञान-ध्यान सिवा नहीं, दूजा कोई काज है।।
मैं श्री मुनिराज की शरण आ गया।।मैं.।।

चौबीस तीर्थंकर पूजन

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(स्थापना)

(हरिगीतिका)

अरे तीर्थंकर प्रकृति का परम पावन योग है।
जगत हितकर दिव्यध्वनि का योग है संयोग है।।
चौबीस तीर्थंकर हुये संपूर्ण चौथे काल में।
दिव्यध्वनि जमती रही रे भव्यजन के भाल में।। १ ।।

आज भी वह प्राप्त है जिनमार्ग के आलोक में।
निज हृदय में कर थापना सब लाभ ले इस लोक में।।
वे सभी जिनवरदेव अब आवें हमारे पास में।
उन सभी को थापित करें हम स्वयं अपने आप में।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् ।

(वीर)

जल

यह जल उज्ज्वल पावन शीतल अर स्वभाव से है अम्लान।
चरण कमल में अर्पित करके हो जायें हम आप समान।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन

शीतल चन्दन ताप निकन्दन सम्यक्दर्शन सहित विवेक।
चरणों में अर्पित करते हैं भव आतप के नाशन हेत॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

आतम सम अखण्ड अविनाशी अक्षत अर्पित करते हैं।
निज आतम को प्राप्त करें हम यही कामना करते हैं॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

कल्पद्रुम के पुष्प अनूपम अर्पित करते चरणों में।
परमशुद्धता प्रगटित होवे हम सबके आचरणों में॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

क्षुधारोग नाशक मधुरिम चरु अर्पण करते प्रभुवर हम।
क्षुधा शान्ति के चाहक हैं हम अन्य वस्तु न चाहें हम॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

स्वपरप्रकाशक मणिमयदीपक अर्पण करके हे जिननाथ!
अंतरंग के घोर अंधेरे से छुटकारा पायें नाथ।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

अरे सुगन्धित प्रासुक ताजी धूप मनोहर चरणों में।
अर्पित कर हम संयम धारें नित अपने आचरणों में।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

पुण्य-पाप फल अर्पित कर हम परमशुद्धभाव धारें।
और मोक्ष फल पाने को हम निज आतम को अपना लें।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

जीवन में अभिलाषायें तज शुद्धभाव धारण करलें।
अरे अर्घ्य यह अर्पण करके हम अनर्घ्यपद प्राप्त करें।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

नमन करें कर जोड़कर अपने हित के काज।
तीर्थंकर वर्तमान के चौबीसों जिनराज।। १ ।।

(हरिगीतिका)

अपनत्व अपने में तथा निज आतमा में लीन हो।
हो वीतरागी पूर्णतः सर्वज्ञ हो स्वाधीन हो।।
तुममें अनन्तानन्त गुण एवं अनादि-अनन्त हो।
श्री ऋषभ से वीरान्त तक चौबीस तीर्थंकर प्रभो।। २ ।।

इस जगत को शिवमग बताया दिव्यध्वनि से आपने।
सन्मार्ग पर चलना सिखाया भविकजन को आपने।।
जिन तीर्थ का वर्तन प्रवर्तन हुआ जिनवर आपसे।
रे चरणरज पा आपकी भवि पार हों संसार से।। ३ ।।

जगत की प्रत्येक वस्तु स्वयं में परिपूर्ण है।
नहीं कुछ भी कमी अपने आपमें संपूर्ण है।।
अनित्य है पर्याय से पर द्रव्य-गुण से नित्य है।
बदलती है नित्य[१] किन्तु बदलकर भी नित्य[२] है।। ४ ।।

यह एक क्षण भी नहीं बदले कभी हो सकता नहीं।
बदल जावे पूर्णतः यह कभी हो सकता नहीं।।
नित्यता की भाँति इसका बदलना भी नित्य है।
अनित्य है अर नित्य है अर स्वयं नित्यानित्य है।। ५ ।।

इस जगत के परिणमन का कर्त्ता न धर्त्ता कोई है।
इस जगत में सुख-दुःख का न दान-दाता कोई है।।
सब स्वयं में ही लीन हैं सब स्वयं के आधार हैं।
सब जीव अपने परिणमन के स्वयं जिम्मेवार हैं।। ६ ।।

---

१. प्रतिसमय   २. सदा कायम

जीवन–मरण अर दुःख सुख सब स्वयं से होते सदा।
अर करम के उदय उनमें निमित्त होते हैं सदा।।
अन्य कोई जीव तो उनमें करे कुछ भी नहीं।
हम रोष करते रहे जबकि करें वे कुछ भी नहीं।। ७।।

अरे पर में एकता ममता भयंकर भूल है।
और करना भोगना पर को भयंकर शूल है।।
मिथ्यात्व मिथ्याज्ञान एवं आचरण प्रतिकूल है।
इन सभी की निवृत्ति ही भवोदधि का कूल है।। ८।।

पाप के सम पुण्य भी तो चतुर्गति का मूल है।
पुण्य को सुखकर समझना भी भयंकर भूल है।।
पाप के सम पुण्य भी तो बंध के अनुकूल है।
अरे संवर निर्जरा अर मोक्ष के प्रतिकूल है।। ९।।

बंध भी पर्याय है अर मोक्ष भी पर्याय है।
पर त्रिकाली आतमा पर्याय से भी पार है।।
वह त्रिकाली आतमा मैं भवोदधि से पार हूँ।
मैं स्वयं ही अरे जिनवर स्वयं का आधार हूँ।। १०।।

ऋषभ से वीरान्त तक सबने बताया जगत को।
जगत से अद्भुत निराला भिन्न जानों स्वयं को।।
और इकदम लीन कर दो स्वयं में ही स्वयं को।
एवं सभी संसार से तुम भिन्न कर दो स्वयं को।। ११ ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो महार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

जिनवर का उपदेश यह एकमात्र है सार।
धारे जो उनको करे भव समुद्र से पार।। १२।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री वर्तमान चौबीसी पूजन

(कविवर वृन्दावनदास कृत)

वृषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पदम सुपार्श्व जिनराय।
चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय।।
विमल अनन्त धर्म जस-उज्जवल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः।
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

मुनि-मन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा।
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा।।
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर-रंग भरी।
जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी।।चौबीसों.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल सित सोम-समान सुन्दर अनियारे।
मुक्ता फल की उनमान पुञ्ज धरों प्यारे।।चौबीसों.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

वर-कंज कदम्ब कुरण्ड, सुमन सुगन्ध भरे।
जिन-अग्र धरों गुन-मण्ड, काम-कलंक हरे।।चौबीसों।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मन-मोदन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने।
रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने।।चौबीसों.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम–खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगै।
सब तिमिर मोहक्षय जाय, ज्ञान–कला जागै।।
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द–कन्द सही।
पद जजत हरत भव–फन्द, पावत मोक्ष–मही।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगन्ध हुताशन माहिं, हे प्रभु! खेवत हों।
मिस–धूम करम जर जाहिं, तुम पद सेवत हों।।चौबीसों.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो।
देखत दृग–मनको प्यार, पूजत सुख पायो।।चौबीसों.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों।।चौबीसों.।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

श्रीमत तीरथनाथ–पद, माथ नाय हित हेत।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत।।

(त्रिभंगी)

जय भव–तम भंजन, जन–मन–कंजन, रंजन दिन–मनि, स्वच्छ करा।
शिव–मग–परकाशक, अरिगण–नाशक, चौबीसों जिनराज वरा।।

(पद्धरि)

जय ऋषभदेव रिषि–गन नमन्त, जय अजित जीत वसु–अरि तुरन्त।
जय सम्भव भव–भय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्द–पूर।।
जय सुमति सुमति–दायक दयाल, जय पद्म पद्म द्युति तनरसाल।
जय जय सुपार्श्व भव–पास नाश, जय चन्द, चन्द–तनद्युति प्रकाश।।
जय पुष्पदन्त द्युति–दन्त–सेत, जय शीतल शीतल–गुननिकेत।
जय श्रेयनाथ नुत–सहसभुज्ज, जय वासव–पूजित वासुपुज्ज।।

जय विमल विमल–पद देनहार, जय जय अनन्त गुन–गण अपार।
जय धर्म धर्म शिव–शर्म देत, जय शान्ति शान्ति पुष्टी करेत।।
जय कुन्थु कुन्थुवादिक रखेय, जय अरजिन वसु–अरि छय्य करेय।
जय मल्लि मल्ल हत मोह–मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत–शल्ल–दल्ल।।
जय नमि नित वासव–नुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष–चक्र नेम।
जय पारसनाथ अनाथ–नाथ, जय वर्द्धमान शिव–नगर साथ।।

(त्रिभंगी)

चौबीस जिनन्दा, आनन्द–कन्दा, पाप–निकन्दा, सुखकारी।
तिन पद–जुग–चन्दा, उदय अमन्दा, वासव–वन्दा, हितकारी।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

भुक्ति–मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर।
तिन–पद मन–वच–धार, जो पूजै सो शिव लहै।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

करलो जिनवर का गुणगान

करलो जिनवर का गुणगान, आई मंगल घड़ी।
आई मंगल घड़ी, देखो मंगल घड़ी।।करलो।।१।।
वीतराग का दर्शन पूजन भव–भव को सुखकारी।
जिन प्रतिमा की प्यारी छवि–लख मैं जाऊँ बलिहारी।।करलो।।२।।
तीर्थंकर सर्वज्ञ हितंकर महा मोक्ष के दाता।
जो भी शरण आपकी आता, तुम सम ही बन जाता।।करलो।।३।।
प्रभु दर्शन से आर्त रौद्र परिणाम नाश हो जाते।
धर्म ध्यान में मन लगता है, शुक्ल ध्यान भी पाते।।करलो।।४।।
सम्यक्‌दर्शन हो जाता है मिथ्यातम मिट जाता।
रत्नत्रय की दिव्य शक्ति से कर्म नाश हो जाता।।करलो।।५।।
निज स्वरूप का दर्शन होता, निज की महिमा आती।
निज स्वभाव साधन के द्वारा सिद्ध स्वगति मिल जाती।।करलो।।६।।

सीमन्धर जिनपूजन

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(कुण्डलिया)

भव-समुद्र सीमित कियो, सीमन्धर भगवान।
कर सीमित निजज्ञान को, प्रकट्यो पूरण ज्ञान।।
प्रकट्यो पूरण ज्ञान-वीर्य-दर्शन सुखधारी,
समयसार अविकार विमल चैतन्य-विहारी।
अंतर्बल से किया प्रबल रिपु-मोह पराभव,
अरे भवान्तक! करो अभय हर लो मेरा भव।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिन! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिन! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्, सन्निधिकरणम्।

प्रभुवर! तुम जल-से शीतल हो, जल-से निर्मल अविकारी हो।
मिथ्यामल धोने को जिनवर, तुम ही तो मलपरिहारी हो।।
तुम सम्यग्ज्ञान जलोदधि हो, जलधर अमृत बरसाते हो।
भविजन मन मीन प्राणदायक, भविजन मन-जलज खिलाते हो।।
हे ज्ञान पयोनिधि सीमन्धर! यह ज्ञान प्रतीक समर्पित है।
हो शान्त ज्ञेयनिष्ठा मेरी, जल से चरणाम्बुज चर्चित है।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन-सम चन्द्रवदन जिनवर, तुम चन्द्रकिरण-से सुखकर हो।
भव-ताप निकंदन हे प्रभुवर! सचमुच तुम ही भव-दुख-हर हो।।
जल रहा हमारा अन्तःस्तल, प्रभु इच्छाओं की ज्वाला से।
यह शान्त न होगा हे जिनवर रे! विषयों की मधुशाला से।।
चिर-अंतर्दाह मिटाने को, तुम ही मलयागिरि चंदन हो।
चंदन से चरचूँ चरणांबुज, भव-तप-हर! शत-शत वंदन हो।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु! अक्षतपुर के वासी हो, मैं भी तेरा विश्वासी हूँ।
क्षत-विक्षत में विश्वास नहीं, तेरे पद का प्रत्याशी हूँ।।

अक्षत का अक्षत-संबल ले, अक्षत-साम्राज्य लिया तुमने।
अक्षत-विज्ञान दिया जग को, अक्षत-ब्रह्माण्ड किया तुमने।।
मैं केवल अक्षत-अभिलाषी, अक्षत अत एव चरण लाया।
निर्वाण-शिला के संगम-सा, धवलाक्षत मेरे मन भाया।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

तुम सुरभित ज्ञान-सुमन हो प्रभु, नहिं राग-द्वेष दुर्गन्ध कहीं।
सर्वांग सुकोमल चिन्मय तन, जग से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।।
निज अंतर्वास सुवासित हो, शून्यान्तर पर की माया से।
चैतन्य-विपिन के चितरंजन, हो दूर जगत की छाया से।।
सुमनों से मन को राह मिली, प्रभु कल्पबेलि से यह लाया।
इनको पा चहक उठा मन-खग, भर चोंच चरण में ले लाया।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आनंद-रसामृत के द्रह हो, नीरस जड़ता का दान नहीं।
तुम मुक्त-क्षुधा के वेदन से, षट्रस का नाम-निशान नहीं।।
विध-विध व्यंजन के विग्रह से, प्रभु भूख न शांत हुई मेरी।
आनंद-सुधारस-निर्झर तुम, अतएव शरण ली प्रभु तेरी।।
चिर-तृप्ति-प्रदायी व्यंजन से, हों दूर क्षुधा के अंजन ये।
क्षुत्पीड़ा कैसे रह लेगी? जब पाये नाथ निरंजन-से।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चिन्मय-विज्ञान-भवन अधिपति, तुम लोकालोक-प्रकाशक हो।
कैवल्य किरण से ज्योतित प्रभु! तुम महामोहतम नाशक हो।।
तुम हो प्रकाश के पुंज नाथ! आवरणों की परछाँह नहीं।
प्रतिबिंबित पूरी ज्ञेयावलि, पर चिन्मयता को आँच नहीं।।
ले आया दीपक चरणों में, रे! अन्तर आलोकित कर दो।
प्रभु! तेरे मेरे अन्तर को, अविलंब निरन्तर से भर दो।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धू-धू जलती दुख की ज्वाला, प्रभु त्रस्त निखिल जगतीतल है।
बेचेत पड़े सब देही हैं, चलता फिर राग प्रभंजन है।।
यह धूम घूमरी खा-खाकर, उड़ रहा गगन की गलियों में।
अज्ञान-तमावृत चेतन ज्यों, चौरासी की रंग-रलियों में।।
संदेश धूप का तात्त्विक प्रभु, तुम हुए ऊर्ध्वगामी जग से।
प्रकटे दशांग प्रभुवर! तुम को, अन्तःदशांग की सौरभ से।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-अशुभ वृत्ति एकांत दुःख अत्यंत मलिन संयोगी है।
अज्ञान विधाता है इनका, निश्चित चैतन्य विरोधी है।।
काँटों-सी पैदा हो जाती, चैतन्य-सदन के आँगन में।
चंचल छाया की माया-सी, घटती क्षण में बढ़ती क्षण में।।
तेरी फल-पूजा का फल प्रभु! हों शांत शुभाशुभ ज्वालायें।
मधुकल्प फलों-सी जीवन में, प्रभु! शांति-लतायें छा जायें।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल जल-सा प्रभु निजस्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए।
भव-ताप उतरने लगा तभी, चंदन-सी उठी हिलोर हिये।।
अभिराम भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति प्रसून लगे खिलने।
क्षुत् तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने।।
मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईंधन ध्वस्त हुए।
फल हुआ प्रभो! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन स्वस्थ हुए।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

वैदही हो देह में, अतः विदेही नाथ।
सीमंधर निज सीम में, शाश्वत करो निवास।।१।।
श्री जिन पूर्व विदेह में, विद्यमान अरहंत।
वीतराग सर्वज्ञ श्री, सीमंधर भगवंत।।२।।

(पद्धरि)

हे ज्ञानस्वभावी सीमंधर! तुम हो असीम आनंदरूप।
अपनी सीमा में सीमित हो, फिर भी हो तुम त्रैलोक्य भूप।।३।।
मोहान्धकार के नाश हेतु, तुम ही हो दिनकर अति प्रचंड।
हो स्वयं अखंडित कर्म शत्रु को, किया आपने खंड-खंड।।४।।
गृहवास राग की आग त्याग, धारा तुमने मुनिपद महान।
आतमस्वभाव साधन द्वारा, पाया तुमने परिपूर्ण ज्ञान।।५।।
तुम दर्शन ज्ञान दिवाकर हो, वीरज मंडित आनंदकंद।
तुम हुए स्वयं में स्वयं पूर्ण, तुम ही हो सच्चे पूर्णचन्द।।६।।
पूरब विदेह में हे जिनवर! हो आप आज भी विद्यमान।
हो रहा दिव्य उपदेश, भव्य पा रहे नित्य अध्यात्म ज्ञान।।७।।
श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव को, मिला आपसे दिव्य ज्ञान।
आत्मानुभूति से कर प्रमाण, पाया उनने आनन्द महान।।८।।
पाया था उनने समयसार, अपनाया उनने समयसार।
समझाया उनने समयसार, हो गये स्वयं वे समयसार।।९।।
दे गये हमें वे समयसार, गा रहे आज हम समयसार।
है समयसार बस एक सार, है समयसार बिन सब असार।।१०।।
मैं हूँ स्वभाव से समयसार, परिणति हो जाये समयसार।
है यही चाह, है यही राह, जीवन हो जाये समयसार।।११।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

समयसार है सार, और सार कुछ है नहीं।
महिमा अपरम्पार, समयसारमय आपकी।।१२।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

दशलक्षण धर्म पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(अनुष्टुप) स्थापना (संस्कृत)

उत्तमक्षान्तिकाद्यन्त-ब्रह्मचर्य-सुलक्षणम्।
स्थापय दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितम्।।

(अडिल्ल) स्थापना (हिन्दी)

उत्तम क्षमा मारदव आरजव भाव हैं,
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं।
आकिंचन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं,
चहुँगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(सोरठा)

हेमाचल की धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारतापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोकलों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाणविनाशनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट्-रस-संजुगत।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

बाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल की जाति अपार, घ्रान-नयन-मन-मोहने।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

आठों दरब सँवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसौं।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अंग-अर्घ्य

(सोरठा)

पीड़ैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा।।
उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस, पर भव सुखदाई।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहै अयानो।।
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करै।
घर तैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धरै।।
ते करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध-अगनि बुझाय प्रानी, साम्य-जल ले सीयरा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मान महाविषरूप, करहि नीच-गति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा।।
उत्तम मार्दव गुन मन-माना, मान करन को कौन ठिकाना।
बस्यो निगोद माहिं तैं आया, दमरी रूँकन भाग बिकाया।।

रूँकन बिकाया भाग वशतैं, देव इक-इन्द्री भया।
उत्तम मुआ चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया।।
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करै जल-बुदबुदा।
करि विनय बहु-गुन बड़े जन की, ज्ञान का पावै उदा।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु-सम्पदा।।
उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मन में होय सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सौं करिये।।
करिये सरल तिहुँ जोग अपने देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अँगार-सी।।
नहिं लहै लछमी अधिक छल करि, करम-बन्ध विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तम-आर्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निर्दोष, धरम बड़ो संसार में।।
उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा-पास महा दुखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी।।
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं।
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष सुभावतैं।।
ऊपर अमल मल भर्‌यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधू लहै।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कठिन वचन मति बोल, पर-निन्दा अरु झूठ तज।
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी।।
उत्तम सत्य-बरत पालीजै, पर-विश्वासघात नहिं कीजै।
साँचे-झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो।।
पेखो तिहायत पुरुष साँचे को दरब सब दीजिये।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा, साँच गुण लख लीजिये।।

ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्रिय मन वश करो।
संजम-रतन सँभाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं।।
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजैं अघ तेरे।
सुरग-नरक-पशुगति में नाहीं, आलस-हरन करन सुख ठाँ हीं।।
ठांही पृथ्वी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो।।
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग-कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आयु जम-मुख बीच में।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप चाहैं सुरराय, करम-शिखर को वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकतिसम।।
उत्तम तप सब माहिं बखाना, करम-शैल को वज्र-समाना।
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू विकलत्रय पशु तन धारा।।
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता।।
अति महा दुरलभ त्याग विषय-कषाय जो तप आदरैं।
नर-भव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरैं।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।
धन बिजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिए।।
उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान सँभारै।।
दोनों सँभारै कूप-जल सम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया।।

धनि साध शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिग्रह चौबिस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए।।
उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानो।
फाँस तनक-सी तन में सालै, चाह लँगोटी की दुख भालै।।
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरैं।
धनि नगन पर तन-नगन ठाड़े, सुर-असुर पायनि परैं।।
घर माहिं तिसना जो घटावे, रुचि नहीं संसार सौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर-उपगार सौं।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमाकिंचन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भव सदा।।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ।
सहैं बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे।।
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हिं मसान माहीं, काग ज्यों चोंचैं भरैं।।
संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरम दश पैड़ि चढ़ि कै, शिव-महल में पग धरा।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

दश लच्छन वन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय।।

(चौपाई)

उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर-बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासे, नाना भेद ज्ञान सब भासे।।
उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुरगति त्यागि सुगति उपजावे।
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, सन्तोषी गुण-रतन भण्डारी।।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोले, सो प्रानी संसार न डोले।
उत्तम संजम पाले ज्ञाता, नर-भव सफल करै, ले साता।।
उत्तम तप निरवांछित पाले, सो नर करम-शत्रु को टाले।
उत्तम त्याग करे जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई।।
उत्तम आकिंचन व्रत धारे, परम समाधि दशा विसतारे।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावे, नर-सुर सहित मुकति-फल पावे।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि।
अजर अमर पद को लहैं, 'द्यानत' सुख की राशि।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

देखो जी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है।
कर ऊपर कर सुभग विराजै, आसन थिर ठहराया है।।टेक.।।
जगत विभूति भूति सम तजकर, निजानन्द पद ध्याया है।
सुरभित श्वासा आशा वासा, नासा दृष्टि सुहाया है।।१।।
कंचन वरन चले मन रंच न सुर-गिरि ज्यों थिर थाया है।
जास पास अहि मोर मृगी हरि, जाति विरोध नशाया है।।२।।
शुध-उपयोग हुताशन में जिन, वसुविधि समिध जलाया है।
श्यामलि अलकावलि सिर सोहे, मानो धुआँ उड़ाया है।।३।।
जीवन-मरन अलाभ-लाभ जिन, सबको नाश बताया है।
सुर नर नाग नमहिं पद जाके, 'दौल' तास जस गाया है।।४।।

सम्यक् रत्नत्रयधर्म पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(दोहा)

चहुँगति-फनि-विष-हरन-मणि, दुख-पावक-जल-धार।
शिव-सुख-सुधा-सरोवरी, सम्यक्-त्रयी निहार।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः ।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(अष्टक-सोरठा)

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन केशर गारि, परिमल-महा-सुगन्ध-मय।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय भवातापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

तन्दुल अमल चितार, वासमती-सुखदास के।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

महकैं फूल अपार, अलि गुंजैं ज्यों थुति करैं।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगन्धयुत।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप-रतनमय सार, जोत प्रकाशै जगत में।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप सुवास विथार, चन्दन अगर कपूर की।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल शोभा अधिकार, लोंग छुहारे जायफल।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् दरशन ज्ञान व्रत, शिव मग-तीनों मयी।
पार उतारन यान 'द्यानत' पूजों व्रत सहित।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

सम्यग्दर्शन पूजन

(दोहा)

सिद्ध अष्ट-गुनमय प्रकट, मुक्त-जीव-सोपान।
ज्ञान चरित जिहँ बिन अफल, सम्यक्दर्श प्रधान।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ ठःठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणं।

(सोरठा)

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केसर घनसार, ताप हरै सीतल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तम हार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आप आप निहचै लखै, तत्त्व-प्रीति व्यवहार।
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार।।

(चौपाई मिश्रित गीता)

सम्यक् दरशन-रतन गहीजे, जिन-वच में सन्देह न कीजै।
इह- भव-विभव-चाह दुःखदानी, पर- भव भोग चहै मत प्रानी।।
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये।
पर-दोष ढकिये धरम डिगते को, सुथिर कर हरखिये।।
चहुँ संघ को वात्सल्य कीजै, धरम की परभावना।
गुन आठसों गुन आठ लहिकैं, इहाँ फेर न आवना।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसहितपंचविंशतिदोषरहितसम्यग्दर्शनाय जयमालापूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान पूजन

(दोहा)

पंच भेद जाके प्रकट, ज्ञेय-प्रकाशन भान।
मोह-तपन-हर-चन्द्रमा, सोई सम्यग्ज्ञान।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट्, इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठःठः, इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो, भव-भव वषट्, इति सन्निधिकरणम्।

(सोरठा)

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय.जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-जोति तम-हार, घट पट परकाशै महा।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल-फूल चरु।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आप आप जानैं नियत, ग्रन्थ-पठन व्यवहार।
संशय-विभ्रम-मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार।।

(चौपाई मिश्रित गीता)

सम्यग्ज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।
अच्छर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अक्षर अरथ उभय संग जानो।।
जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइए।
तप रीति गहि बहु मौन देकैं, विनय-गुन चित लाइए।।
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पन देखना।
इस ज्ञान ही सों भरत सीझा, और सब पट पेखना।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निवपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र पूजन

(दोहा)

विषय-रोग औषध महा, दव-कषाय-जल-धार।
तीर्थंकर जाको धरै, सम्यक्चारित सार।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट्, इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठःठः, इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्, इति सन्निधिकरणम्।

(सोरठा)

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विध पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षयपद प्राप्ताये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-जोति तम-हार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर शिवफल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आप आप थिर नियत नय, तप संयम व्यवहार।
स्व-पर-दया दोनों लिये, तेरहविध दुःखहार।।

(चौपाई मिश्रित गीता)

सम्यक्चारित्र-रतन सँभालौ, पाँच पाप तजि के व्रत पालौ।
पंच समिति त्रय गुप्ति गहीजै, नर-भव सफल करहु तन छीजै।।
छीजै सदा तन को जतन यह, एक संजम पालिए।
बहु रुल्यो नरक-निगोदमाहीं, विषय-कषायनि टालिए।।
शुभ-करम जोग सुघाट आया, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिव-पुरी कुशलात है।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

सम्यग्दरशन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुक्ति न होय।
अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दव लोय।।

(चौपाई)

जापै ध्यान सुथिर बन आवै, ताके करमबन्ध कट जावै।
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावै, जो सम्यक्‌रत्नत्रय ध्यावै।।
ताकौ चहुँगति के दुःख नाहीं, सो न परे भवसागर माहीं।
जनम-जरा-मृत दोष मिटावै, जो सम्यक्‌रत्नत्रय ध्यावै।।
सोई दशलच्छन को साधै, सो सोलहकारण आराधै।
सो परमातमपद उपजावै, जो सम्यक्‌रत्नत्रय ध्यावै।।
सोई शक्र-चक्रिपद लेई, तीनलोक के सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यक्‌रत्नत्रय ध्यावै।।
सोई लोकालोक निहारे, परमानन्ददशा विसतारे।
आप तिरै और न तिरवावै, जो सम्यक्‌रत्नत्रय ध्यावै।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्राय समुच्चयजयमाला अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

एक स्वरूप-प्रकाश-निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत' को सुखदाय।।

ॐ पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

श्री अरहंत छबि लखि हिरदै, आनन्द अनुपम छाया है।।टेक.।।
वीतराग मुद्रा हितकारी, आसन पद्म लगाया है।
दृष्टि नासिका अग्रधार मनु, ध्यान महान बढ़ाया है।।१।।
रूप सुधाकर अंजलि भरभर, पीवत अति सुख पाया है।
तारन-तरन जगत हितकारी, विरद सचीपति गाया है।।२।।
तुम मुख-चन्द्र नयन के मारग, हिरदै माहिं समाया है।
भ्रम तम दुःख आताप नस्यो सब, सुख सागर बढ़ि आया है।।३।।
प्रकटी उर सन्तोष चन्द्रिका, निज स्वरूप दर्शाया है।
धन्य-धन्य तुम छवि 'जिनेश्वर', देखत ही सुख पाया है।।४।।

सोलहकारण पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(अडिल्ल)

सोलह कारण भाय तीर्थंकर जे भये।
हरषे इन्द्र अपार मेरु पै ले गये।।
पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चावसौं।
हमहू षोडश कारन भावैं भावसौं।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरा: ! अत्र अवतरत अवतरत, संवौषट्, इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरा: ! अत्र तिष्ठत-तिष्ठत ठ:ठ:, इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरा: ! अत्र मम सन्निहिता: भवत भवत वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(चौपाई आँचलीबद्ध)

कंचन-झारी निरमल नीर, पूजों जिनवर गुण-गम्भीर।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर-पद-पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि-विनयसम्पन्नता-शीलव्रतेष्वनतिचार-अभीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेग-शक्तितस्त्याग-तप: साधुसमाधि-वैयावृत्यकरण-अर्हद्भक्ति-आचार्यभक्ति-बहुश्रुतभक्ति-प्रवचनभक्ति-आवश्यकापरिहाणि-मार्गप्रभावना-प्रवचनवात्सल्येति -षोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्री जिनवर के पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरेभ्य: संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल धवल सुगन्ध अनूप, पूजौं जिनवर तिहुँ जग-भूप।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

फूल सुगन्ध मधुप-गुंजार, पूजौं जिनवर जग-आधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद-पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरेभ्य: कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सदनेवज बहुविधि पकवान, पूजौं श्रीजिनवर गुणखान।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरेभ्य: क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक-ज्योति तिमिर छ्यकार, पूजूँ श्रीजिन केवलधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर कपूरगन्ध शुभ खेय, श्री जिनवर आगे महकेय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरेभ्यो अष्टकर्म-विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि बहुत फलसार पूजौं जिन वांछित-दातार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों दरब चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करों मनलाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश.।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

षोडश कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास।
पाप-पुण्य सब नाशके, ज्ञान-भान परकाश।।

(चौपाई)

दरशविशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई।
विनय महाधारै जो प्राणी, शिव-वनिता की सखी बखानी।।
शील सदा दृढ़ जो नर पालै, सो औरन की आपद टालै।
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं, ताके मोह-महातम नाहीं।।
जो संवेग-भाव विसतारै, सुरग-मुकति-पद आप निहारै।
दान देय मन हरष विशेखै, इह भव जस पर भव सुख देखै।।
जो तप तपै खपै अभिलाषा, चूरै करम-शिखर गुरु भाषा।
साधुसमाधि सदा मन लावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावै।।
निश-दिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया।
जो अरहंत भगति मन आनै, सो जन विषय-कषाय न जानै।।
जो आचारज-भगति करै है, सो निर्मल आचार धरै है।
बहुश्रुतवन्त-भगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई।।
प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानन्द-दाता।
षट् आवश्यक काल जो साधै, सो ही रत्नत्रय आराधै।।
धरम-प्रभाव करै जे ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी।
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावै।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: परमगुरुतीर्थंकरपदप्राप्तजिनेश्वरेभ्यो जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव-इन्द्र-नर-वंद्य-पद, 'द्यानत' शिव-पद होय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

पंचमेरु–पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(गीता छन्द)

तीर्थंकरों के न्हवन–जलतैं भये तीरथ शर्मदा,
तातैं प्रदच्छन देत सुर–गन पंचमेरुन की सदा।
दो जलधि ढाई द्वीप में सब गनत–मूल विराजही,
पूजौं असी जिनधाम–प्रतिमा होहि सुख दुःख भाजही।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि–अशीति जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, इति आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि–अशीति जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि–अशीति जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव–भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(चौपाई आँचलीबद्ध)

सीतल–मिष्ट–सुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करो प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शन–विजय–अचल–मन्दिर–विद्युन्मालीपंचमेरुसंबंधि–अशीति जिनचैत्या–लयस्थजिनबिम्बेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर करपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों. ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधिअशीति जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों. ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि–अशीति–जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बरन अनेक रहे महकाय, फूलसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मन-बांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीति-जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम हर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरस सुवर्ण सुगन्ध सुभाय, फलसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीति-जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मन्दर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जग में प्रकट।।

(बेसरी छन्द)

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भू पर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।

ऊपर पांच-शतक पर सोहै, नन्दन-वन देखत मन मोहै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।

साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।

ऊँचा जोजन सहस-छतीसं, पाण्डुक-वन-सोहै गिरि-सीसं।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।

चारों मेरु समान बखाने, भू पर भद्रसाल चहुँ जाने।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।

ऊँचे पाँच शतक पर भाखै, चारों नन्दनवन अभिलाखै।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।

साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।

उच्च अठाइस सहस बताये, पाण्डुक चारों वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।

सुर-नर-चारन वन्दन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावैं।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जयमालामहार्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा।

(दोहा)

पंचमेरु की आरती, पढ़े सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभो, तुरत महासुख होय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

नन्दीश्वर द्वीप-पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(अडिल्ल)

सरब परव में बड़ो अठाई परव है।
नन्दीश्वर सुर जांहिं लेय वसु दरव है।।
हमैं सकति सो नाहिं इहाँ करि थापना।
पूजैं जिनगृह-प्रतिमा है हित आपना।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः ।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(अवतार)

कंचन-मणि-मयभृंगार, तीरथ-नीर भरा।
तिहुँ धार दयी निरवार, जामन मरन जरा।।
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद-भाव धरों।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-तप-हर शीतल वास, सो चन्दन नाहीं।
प्रभु यह गुन कीजै साँच, आयो तुम ठाहीं।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरै सोहै।
सब जीते अक्ष-समाज तुम-सम अरु को है।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊँ फूलनसौं।
लहुँ शील-लच्छमी एव, छूटों सूलनसौं।।
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद-भाव धरों।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज इन्द्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिंग सोहैं सार, अचरज है पूरा।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक की ज्योति-प्रकाश, तुम तन माहिं लसै।
टूटै करमन की राशि, ज्ञान-कणी दरसै।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकार- विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागरु-धूप-सुवास, दश-दिशि नारि वरै।
अति हरष-भाव परकाश, मानो नृत्य करै।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुविधि फल ले तिहुँ काल, आनन्द राचत हैं।
तुम शिव-फल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिव-खेत, भूमि समरपतु हों।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

कार्तिक फाल्गुन साढ़ के, अन्त आठ दिन माहिं।
नन्दीश्वर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठाहिं।।

(लक्ष्मीधरा)

एकसौ त्रेसठ कोडि जोजन महा।
लाख चौरासिया एक दिश में लहा।।
आठमों द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।।
चार दिशि चार अंजनगिरी राजहीं।
सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं।।
ढोल-सम गोल ऊपर तले सुन्दरं।।भौन.।।
एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी।
एक इक लाख जोजन अमल-जल भरी।।
चहुँ दिशि चार वन लाख जोजन वरं।।भौन.।।
सोल वापीन मधि सोल गिरि दधिमुखं।
सहस दश महाजोजन लखत ही सुखं।।
बावरी कौन दो माहिं दो रतिकरं।।भौन.।।
शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे।
चार सोलह मिलैं सर्व बावन लहे।।
एक इक सीस पर एक जिन मन्दिरं।।भौन.।।
बिम्ब अठ एक सौ रतनमयी सोहही।
देव-देवी सरव नयन मन मोहही।।
पाँच सौ धनुष तन पद्म-आसन परं।।भौन.।।
लाल नख-मुख नयन श्याम अरु स्वेत हैं।
श्याम-रंग भोंह सिर-केश छबि देत हैं।।
वयन बोलत मनों हँसत कालुष हरं।।भौन.।।

कोटि-शशि-भान-दुति-तेज छिप जात है।
महा-वैराग-परिणाम ठहरात है।।
वयन नहिं कहैं लखि होत सम्यक धरं।।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

नन्दीश्वर-जिन-धाम, प्रतिमा-महिमा को कहै।
'द्यानत' लीनो नाम, यही भगति शिव-सुख करै।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

रोम रोम पुलकित हो जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।।टेक।
ज्ञानानन्द कलियाँ खिल जायँ, जब जिनवर के दर्शन पाय।।
जिन-मन्दिर में श्री जिनराज, तन-मन्दिर में चेतनराज।।
तन-चेतन को भिन्न पिछान, जीवन सफल हुआ है आज।।
वीतराग सर्वज्ञ-देव प्रभु, आये हम तेरे दरबार।
तेरे दर्शन से निज दर्शन, पाकर होवें भव से पार।।
मोह-महातम तुरत विलाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।।१।।
दर्शन-ज्ञान अनन्त प्रभु का, बल अनन्त आनन्द अपार।
गुण अनन्त से शोभित हैं प्रभु, महिमा जग में अपरम्पार।।
शुद्धातम की महिमा आय, जब जिनवर के दर्शन पाय।।२।।
लोकालोक झलकते जिसमें, ऐसा प्रभु का केवलज्ञान।
लीन रहें निज शुद्धातम में, प्रतिक्षण हो आनन्द महान।।
ज्ञायक पर दृष्टि जम जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।।३।।
प्रभु की अन्तर्मुख-मुद्रा लखि, परिणति में प्रकटे समभाव।
क्षण-भर में हों प्राप्त विलय को, पर-आश्रित सम्पूर्ण विभाव।।
रत्नत्रय-निधियाँ प्रकटाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।।४।।

श्री आदिनाथ जिन पूजा

(पं. जिनेश्वरदासजी कृत)

नाभिराय मरुदेवि के नन्दन, आदिनाथ स्वामी महाराज।
सर्वार्थसिद्धितैं आप पधारे, मध्यलोक माहिं जिनराज।।
इन्द्रदेव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज।
आह्वानन सब विधि मिल करके, अपने कर पूजें प्रभु पांय।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् ।

क्षीरोदधि को उज्ज्वल जल ले, श्री जिनवर पद पूजन जाय।
जन्म जरा दुख मेटन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु के पांय।।
श्री आदिनाथ के चरणकमल पर, बलि-बलि जाऊँ मनवचकाय।
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पांय।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चन्दन दाह निकन्दन, कंचन झारी में भर ल्याय।
श्रीजी के चरण चढ़ाओ भविजन, भव आताप तुरत मिट जाय।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभशालि अखंडित सौरभमंडित, प्रासुक जलसों धोकर ल्याय।
श्रीजी के चरण चढ़ावो भविजन, अक्षय पद को तुरत उपाय।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कमल केतकी बेल चमेली, श्रीगुलाब के पुष्प मँगाय।
श्रीजी के चरण चढ़ावो भविजन, कामबाण तुरत नसि जाय।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज लीना षट्-रस भीना, श्री जिनवर आगे धरवाय।
थाल भराऊँ क्षुधा नसाऊँ, ल्याऊँ प्रभु के मंगल गाय।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जगमग-जगमग होत दशों दिश, ज्योति रही मन्दिर में छाय।
श्रीजी के सन्मुख करत आरती, मोहतिमिर नासै दुखदाय।।
श्री आदिनाथ के चरणकमल पर, बलि-बलि जाऊँ मनवचकाय।
हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पांय।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर कपूर सुगन्ध मनोहर, चन्दन कूट सुगन्ध मिलाय।
श्रीजी के सन्मुख खेय धुपायन, कर्म जरे चहुँगति मिटि जाय।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल और बादाम सुपारी, केला आदि छुहारा ल्याय।
महा मोक्षफल पावन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु के पांय।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि निरमल नीरं गन्ध सुअक्षत, पुष्प चरू ले मन हरषाय।
दीप धूप फल अर्घ्य सुलेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

(दोहा)

सर्वारथसिद्धि तैं चये, मरुदेवी उर आय।
दोज असित आषाढ़ की, जजूँ तिहारे पांय।।

ॐ ह्रीं श्री आषाढकृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतवदी नौमी दिना, जन्म्या श्री भगवान।
सुरपति उत्सव अति कर्या, मैं पूजौं धर ध्यान।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तृणवत् ऋद्धि सब छाँड़ि के, तप धार्यो वन जाय।
नौमी चैत्र असेत की, जजूँ तिहारे पांय।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां तपकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फागुन वदि एकादशी, उपज्यो केवलज्ञान।
इन्द्र आय पूजा करी, मैं पूजों इह थान।।

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ चतुर्दशि कृष्ण की, मोक्ष गये भगवान।
भवि जीवों को बोधि के, पहुँचे शिवपुर थान।।

ॐ ह्रीं श्री माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

आदीश्वर महाराज, मैं! विनती तुमसे करूँ।
चारों गति के माहिं मैं दुख पायो सो सुनो।।

कर्म अष्ट मैं हूँ एकलो, यह दुष्ट महादुख देत हो।
कबहूँ इतर निगोद में मोकूँ, पटकत करत अचेत हो।।
म्हारी दीनतणी सुन वीनती।।टेक।।

प्रभु कबहुँक पटक्यो नरक में, जठै जीव महादुख पाय हो।
नित उठि निरदई नारकी, जठै करत परस्पर घात हो।।म्हारी.।।

प्रभु नरक तणा दुःख अब कहूँ, जठै करें परस्पर घात हो।
कोइयक बाँध्यो खंभसों, पापी दे मुदगर की मार हो।।म्हारी.।।

कोइयक काटें करोतसों, पापी अंगतणी दोय फाड़ हो।
प्रभु यह विधि दुःख भुगत्या घणा, फिर गति पाई तिरयंच हो।। म्हारी.।।

हिरणा बकरा बाछला, पशु दीन गरीब अनाथ हो।
प्रभु मैं ऊँट बलद भैंसा भयो, जापै लदियो भार अपार हो।।म्हारी.।।

नहिं चाल्यौ जठै गिर पर्‍यो, पापी दे सोटन की मार हो।
प्रभु कोइयक पुण्य संजोगसूँ, मैं तो पायो स्वर्ग निवास हो।।म्हारी.।।

देवांगना संग रमि रह्यो, जठै भोगनि को परिताप हो।
प्रभु संग अप्सरा रमि रह्यो, कर-कर अति अनुराग हो।।म्हारी.।।
कबहुँक नंदनवन विषैं प्रभु, कबहुँक वन गृह माहिं हो।
प्रभु यह विधिकाल गमायकैं, फिर माला गई मुरझाय हो।।म्हारी.।।
देव थिती सब घट गई, फिर उपज्यो सोच अपार हो।
सोच करत तन खिर पड्यो, फिर उपज्यो गरभ मैं जाय हो।।म्हारी.।।
प्रभु गर्भतणा दुःख अब कहूँ, जठै सकड़ाई की ठौर हो।
हलन-चलन नहिं कर सक्यो, जठै सघन कीच घनघोर हो।।म्हारी.।।
माता खावै चरपरो, फिर लागै तन संताप हो।
प्रभु ज्यों जननी तातो भखै, फिर उपजै तन संताप हो।।म्हारी.।।
औंधे मुख झूल्यो रह्यो, फेर निकसन कौन उपाय हो।
कठिन-कठिनकर नींसर्यो, जैसे निसरै जंत्री में तार हो।।म्हारी.।।
प्रभु फिर निकसत ही धरत्याँ पड्यो, फिर लागी भूख अपार हो।
रोय रोय बिलख्यो घणो, दुख वेदन को नहिं पार हो।।म्हारी.।।
प्रभु दुख मेटन समरथ धनी, यातैं लागूँ तिहारे पांय हो।
सेवक अरज करै प्रभू मोकूँ, भवदधि पार उतार हो।।म्हारी.।।

(दोहा)

श्रीजी की महिमा अगम है, कोई न पावै पार।
मैं मति अल्प अज्ञान हों, कौन करै विस्तार।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

विनती ऋषभ जिनेश की, जो पढ़सी मनलाय।
सुरगों में संशय नहीं, निहचै शिवपुर जाय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री आदिनाथ जिन पूजन

(डॉ. अखिल बंसल कृत)

तुम हो नाभिराय के नंदन, वंदन तुमको बारम्बार।
निज स्वरूप का ध्यान लगाकर, आप किये भव सागर पार।।
चारों दिश आभा से सुरभित, आदीश्वर की जय-जयकार।
जो भी शरण आपकी आया, उसका खुला मुक्ति का द्वार।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् ।

अष्टक

निर्मल जल की धारा से मैं, जिनवर चरण पखारूं ।
जन्म जरा के दूषित पल को, क्षण भर में विसराऊं।।
तुम हो जगत पूज्य आदीश्वर, चरणन चित्त लगाऊं।
विघ्न विनाशक पद पंकज को, पूजूं शिवमग पाऊं।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

केसर संग कपूर मिलाकर, सुरभित चंदन लाऊं।
भव ताप मिटे मन शांत रहे, छवि निरखत ही हर्षाऊं ।। तुम.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

ये तंदुल गंध सुगंधित अक्षत्, स्वर्ण थाल भर लाऊं।
अक्षय पद पाने को जिनवर, मैं उपाय रच डालूं। तुम.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पुष्प सुगंधित महा मनोहर, सुमन पुंज ढिंग लाऊं।
काम व्याधि के नाश करन को, अर्पण कर सुख पाऊं। तुम.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

व्यंजन के विविध समूह संग, मैं नैवेद्य बनाऊं ।
चेतन क्षुधा मिटाने हेतु, नित नैवेद्य चढाऊं ।। तुम.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मणिमाला दीपों की लेकर, तम को आज नशाऊं।
अन्तर्मन के अंधकार को, क्षण में दूर भगाऊं।।

तुम हो जगत पूज्य आदीश्वर, चरणन चित्त लगाऊं।
विघ्न विनाशक पद पंकज को, पूजूं शिवमग पाऊं।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप सुगंधित द्रव्य मयी ले, नभ मण्डल महकाऊं।
जीवन अघ की ज्वाला में, ईंधन की धूप उडाऊं ।। तुम.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस फलों से उपवन भूषित, अर्पित कर मुस्काऊं।
अल्पावधि जीवन का झोंका, अमृत प्रतिफल पाऊं।। तुम.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टकर्म आवरणों का मैं, यह आतंक मिटाऊं।
पथ में समता भाव धरूं नित, चरणन अर्घ चढाऊं ।। तुम.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

आषाढ़ कृष्णा दोज दिन, मरुदेवी उर आय।
नाभिराय सुत आप हो, हर्ष अयोध्या छाय।।

ॐ ह्रीं श्री आषाढकृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्र कृष्ण नवमी दिना, खुशियां छाई अपार।
सुरपति जन्मोत्सव किया, गाये मंगलाचार।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नृत्य देख नीलाजंना, राज-पाट विसराय।
नवमी कृष्णा चैत्र की, वन में ध्यान लगाय।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां तपकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फाल्गुन कृष्ण एकादशी, पायो केवलज्ञान।
दिव्य देशना गूँजती, इन्द्र करत गुणगान।।

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौदस कृष्णा माघ दिन, गिरि कैलाश महान।
अष्टकर्म का नाश कर, मोक्ष गये भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वीतराग सर्वज्ञ की, महिमा करूं बखान।
मैं गाऊँ जयमालिका, आदीश्वर भगवान ।।

प्रथम जिन धुरन्धरम्, अरिहन्त देव मंगलम्।
नाभिराज नन्दनम्, नमामि आदि जिनवरम्।।
नमामि आदि जिनवरम्, नमामि आदि जिनवरम्।।१।।
ब्राह्मी-सुन्दरी सुता, ज्ञान वृद्धि कारणम्।
ऋृषभ राजेश्वरम्, नमामि आदि जिनवरम्।।२।। नमामि.
नीलांजना नृत्यकम्, वैराग्य पथ धारकम्।
भरत-बाहु सुतं, नमामि आदि जिनवरम्।।३।। नमामि.
सर्वज्ञ देव देवनम्, बृषभसेन गणधरम्।
जन्म-मरण विनाशनम्, नमामि आदि जिनवरम्।।४।। नमामि.
भरतक्षेत्र भूषणम्, कैलाशगिरि वासनम्।
मोक्ष श्री निकेतनम्, नमामि आदि जिनवरम्।।५।। नमामि.
सर्व विघ्न नाशनम्, निज स्वरूप मोहनम्।
कष्ट-कालुष हरम्, नमामि आदि जिनवरम्।।६।। नमामि.
प्रतिमा नमों सुखकरम्, ऋषभदेव मन्दिरम्।
जीव सब हितकरम्, नमामि आदि जिनवरम्।।७।। नमामि.
त्रिभुवन तिलक विश्वेश्वरम्, प्रभुवर महा परमेश्वरम्।
महेन्द्र इन्द्र वन्दनम्, नमामि आदि जिनवरम्।।८।। नमामि.
दिग्-दिगन्त सोहनम्, जैनम् जयतु शासनम्।
'अखिल' विश्व निरंजनम्, नमामि आदि जिनवरम्।।९।। नमामि.

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

आदिनाथ भगवान का करो सुमंगल गान।
'अखिल' परम पद प्राप्त हो, होवे निज कल्याण।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजन

(कविवर वृन्दावनदासजी कृत)

(छप्पय)

चारु चरन आचरन, चरन चित हरन चिह्नचर,
चन्द चन्द-तन चरित, चंदथल चहत चतुर नर।
चतुक चण्ड चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर,
चंचल चलित सुरेश, चूलनुत चक्र धनुरधर।।
चर-अचर हितू तारन-तरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि।
जिनचंद चरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रचि रुचि।।

(दोहा)

धनुष डेढ़ सौ तुंग तन, महासेन नृपनन्द।
मातु लछमना उर जये, थापों चन्दजिनन्द।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(अवतार)

गंगाह्रद निरमल नीर, हाटक भृंगभरा,
तुम चरन जजों वर वीर, मेटो जनम-जरा।
श्रीचंदनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगे,
मन-वच-तन जजत अमंद, आतमजोति जगै।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री खण्ड कपूर सुचंग, केशर रंगभरी।
घसि प्रासुक जल के संग, भव-आताप हरी।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल सित सोमसमान, सम ले अनियारे।
दिये पुंज मनोहर आन, तुम पदतर प्यारे।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुरद्रुम के सुमन सुरंग, गन्धित अलि आवै।
तासों पद पूजत चंग, कामव्यथा जावै।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवज नाना परकार, इन्द्रिय बलकारी।
सो लै पद पूजों सार, आकुलताहारी।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम भंजन दीप सँवार, तुम ढिग धारतु हों।
मम तिमिरमोह निरवार, यह गुन धारतु हों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंध हुतासन माहिं, हे प्रभु खेवतु हों।
मम करम दुष्ट जरि जाहिं, यातैं सेवतु हों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अति उत्तम फल सुमँगाय, तुम गुन गावतु हों।
पूजों तन-मन हरषाय, विघन नशावतु हों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

कलि पंचम चैत सुहात अली, गरभागम मंगल मोद भली।
हरि हर्षित पूजत मातु पिता, हम ध्यावत पावत शर्मसिता।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

कलि पौष इकादशि जन्म लयो, तब लोकविषै सुख थोक भयो।
सुर-ईश जजें गिरशीश तबै, हम पूजत हैं नुतशीश अबै।।

ॐ ह्रीं श्री पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा, कलि पौष इग्यारसि पर्व वरा।
निज ध्यान विषैं, लवलीन भये, धनि सो दिन पूजत विघ्न गये।।

ॐ ह्रीं श्री पौषकृष्णैकादश्यां तपकल्याणकप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर केवलभानु उद्योत कियो, तिहुँ लोक तणों भ्रम मेट दियो।
कलि फाल्गुन सप्तमी इन्द्र जजैं, हम पूजहिं सर्व कलंक भजैं।।

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित फाल्गुन सप्तमी मुक्त गये, गुणवन्त अनन्त अबाध भये।
हरि आय जजें तित मोद धरें, हम पूजत ही सब पाप हरें।।

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

हे मृगांक-अंकित चरण, तुम गुण अगम अपार।
गणधर से नहिं पार लहि, तौ को वरनत सार।।
पै तुम भगति हिये मम, प्रेरैं अति उमगाय।
तातैं गाऊँ सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय।।

(पद्धरि छन्द)

जय चन्द्र जिनेन्द्र दयानिधान, भवकानन हानन दव प्रमान।
जय गरभ जनम मंगल दिनन्द, भवि जीवविकाशन शर्मकन्द।।
दशलक्ष पूर्व की आयु पाय, मनवांछित सुख भोगे जिनाय।
लखि कारण ह्वै जगतैं उदास, चिन्त्यो अनुप्रेक्षा सुखनिवास।।
तित लौकांतिक बोध्यो नियोग, हरि शिविका सजि धरियो अभोग।
तापै तुम चढ़ि जिन चन्दराय, ता छिनकी शोभा को कहाय।।
जिन अंग सेत सित चमर ढार, सित छत्र शीस गलगुलकहार।
सित रतन जड़ित भूषण विचित्र, सित चन्द्रचरण चरचैं पवित्र।।

सित तन द्युति नाकाधीश आप, सित शिवका काँधे धरि सुचाप।
सित सुजस सुरेश नरेश सर्व, सित चित में चिन्तत जात पर्व।।
सित चन्द्रनगरतैं निकसि नाथ, सित वन में पहुँचे सकल साथ।
सित सिला शिरोमणि स्वच्छ छाँह, सित तप तित धार्यो तुम जिनाँह।।
सित पय को पारण परमसार, सित चन्द्रदत्त दीनों उदार।
सित कर में सो पयधार देत, मानो बाँधत भवसिंधु सेत।।
मानो सुपुण्यधारा प्रतच्छ, तित अचरज पनसुर किय ततच्छ।
फिर जाय गहन सित तप करंत, सित केवलज्योति जग्यो अनंत।।
लहि समवसरण रचना महान, जाके देखत सब पापहान।
जहँ तरु अशोक शौभै उतंग, सब शोकतनो चूरैं प्रसंग।।
सुर सुमनवृष्टि नभतैं सुहात, मनु मन्मथ तज हथियार जात।
बानी जिन मुखसों खिरत सार, मनु तत्त्व प्रकाशन मुकुरधार।।
जहँ चौसठ चमर अमर ढुरंत, मनु सुजस मेघ झरि लगिय तंत।
सिंहासन है जहँ कमलजुक्त, मनु शिवसरवर को कमलशुक्त।।
दुंदुभि जित बाजत मधुर सार, मनु करमजीत को है नगार।
सिर छत्र फिरै त्रय श्वेतवर्ण, मनु रतन तीन त्रयताप हर्ण।।
तन प्रभातनों मण्डल सुहात, भवि देखत निज भव सात सात।
मनु दर्पणद्युति यह जगमगाय, भविजन भव मुख देखत सु आय।।
इत्यादि विभूति अनेक जान, बाहिज दीसत महिमा महान।
ताको वरणत नहिं लहत पार, तौ अँतरंग को कहै सार।।
अनअन्त गुणनिजुत करि विहार, धरमोपदेश दे भव्य तार।
फिर जोगनिरोधि अघाति हान, सम्मेदथकी लिय मुकतिथान।।
'वृन्दावन' वन्दत शीश नाय, तुम जानत हो मम उर जु भाय।
तातैं का कहों सु बार-बार, मनवांछित कारज सार-सार।।

(छन्द घत्तानन्द)

जय चन्द जिनंदा आनंदकंदा, भवभय भंजन राजै हैं।

रागादिक द्वन्दा हरि सब फन्दा, मुकति माहिं थिति साजै हैं।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द चौबोला)

आठों दरव मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचन्द जजैं।

ताके भव-भव के अघ भाजैं, मुक्त सारसुख ताहि सजैं।।

जमके त्रास मिटैं सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं।

'वृन्दावन' ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुर राज रजैं।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

चैतन्य वन्दना

जिन्हें मोह भी जीत न पाये, वे परिणति को पावन करते।
प्रिय के प्रिय भी प्रिय होते हैं, हम उनका अभिनन्दन करते।।
जिस मंगल अभिराम भवन में, शाश्वत सुख का अनुभव होता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुःख हर लेता।।१।।
जिसके अनुशासन में रहकर, परिणति अपने प्रिय को वरती।
जिसे समर्पित होकर शाश्वत ध्रुव सत्ता का अनुभव करती।।
जिसकी दिव्य ज्योति में चिर संचित अज्ञान-तिमिर घुल जाता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुःख हर लेता।।२।।
जिस चैतन्य महा हिमगिरि से परिणति के घन टकराते हैं।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द रस की, मूसलधारा बरसाते हैं।।
जो अपने आश्रित परिणति को, रत्नत्रय की निधियाँ देता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुःख हर लेता।।३।।
जिसका चिन्तनमात्र असंख्य प्रदेशों को रोमांचित करता।
मोह उदयवश जड़वत् परिणति में अद्भुत चेतन रस भरता।।
जिसकी ध्यान अग्नि में चिर संचित कर्मों का कल्मष जलता।
वन्दन उस चैतन्यराज को, जो भव-भव के दुःख हर लेता।।४।।

श्री शान्तिनाथ जिनपूजन

(कविवर वृन्दावनदासजी कृत)

(छन्द मत्तगयन्द)

या भव-कानन में चतुरानन, पाप पनानन घेरी हमेरी।
आतम जानन मानन ठानन, बान न होन दई शठ मेरी।।
तामद भानन आपहि हो, यह छानन आन न आनन टेरी।
आन गही शरनागत को अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द त्रिभंगी)

हिमगिरि गतगंगा, धार अभंगा प्रासुक संगा भरि भृंगा।
जर मदन मृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदुहिंगा।।
श्री शान्तिजिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं।
हनि अरिचक्रेशं हे गुनधेशं दयामृतेशं मक्रेशं।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

वर बावन चंदन, कदली नंदन, घन आनंदन सहित घसों।
भवतापनिकंदन, ऐरानन्दन, वंदि अमंदन, चरन वसों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

हिमकर करि लज्जत, मलय सुसज्जत, अच्छत जज्जत भरि थारी।
दुखदारिद गज्जत, सदपद सज्जत, भवभय भज्जत अतिभारी।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मन्दार सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं मलयभरं।
भरि कंचनथारी, तुम ढिग धारी, मदनविदारी, धीर धरं।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नवीने पावन कीने, षट्रस भीने सुखदाई।
मनमोदन हारे, क्षुधा विदारे, आगैं धारे गुन गाई।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम ज्ञान प्रकाशे, भ्रम तम नाशे, ज्ञेयविकाशे सुखरासे।
दीपक उजियारा यातैं धारा, मोह निवारा, निज भासे।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन करपूरं, करि वर चूरं, पावक भूरं, माहिं जुरं।
तसु धूम उड़ावै, नाचत जावै, अलि गुंजावै, मधुर स्वरं।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम खजूरं, दाडिम पूरं, निम्बुक भूरं लै आयो।
तासों पद जज्जों, शिवफल सज्जों, निजरस रज्जो उमगायो।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

वसु द्रव्य सँवारी, तुम ढिग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुनाधारी, यातैं थारी शरनारी।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

(छन्द सुन्दरी तथा द्रुतविलम्बित)

असित सातें भादव जानिये, गरभ मंगल तादिन मानिये।
शचि कियो जननी पद चर्चनं, हम करैं इत ये पद अर्चनं।।

ॐ ह्रीं श्री भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनम जेठ चतुर्दशी श्याम हैं, सकल इन्द्रसु आगत धाम हैं।
गजपुरै गज साजि सबै तबै, गिरि जजे इत मैं जजि हौं अबै।।

ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार तबै तप धार हैं।
भ्रमर चौदस जेठ सुहावनी, धरम हेत जजों गुन पावनी।।

ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलमंडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुकल पौष दशैं सुखरास है, परम केवलज्ञान प्रकाश है।
भवसमुद्र-उधारन देव की, हम करैं नित मंगल सेवकी।।

ॐ ह्रीं श्री पौषशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चौदशि जेठ हनें अरी, गिरी समेद थकी शिवतिय वरी।
सकल इन्द्र जजैं तित आयकैं, हम जजैं इत मस्तक नायकैं।।

ॐ ह्रीं श्री ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(छन्द-रथोद्धता, चंद्रवत्स तथा चंद्रवर्त्म)

शान्ति शान्तिगुन मंडिते सदा, जाहि ध्यावते सुपंडिते सदा।
मैं तिन्हें भगति मंडिते सदा, पूजिहों कलुष हंडिते सदा।।
मोच्छ हेत तुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुण रत्नमाल हो।
मैं अबै सुगुनदाम ही धरों, ध्यावतें तुरित मुक्ति-ती-वरों।।

(पद्धरि)

जय शान्तिनाथ चिद्रूपराज, भवसागर में अद्भुत जहाज।
तुम तजि सरवारथसिद्ध थान, सरवारथजुत गजपुर महान।।
तित जन्म लियौ आनंद धार, हरि ततछिन आयो राजद्वार।
इन्द्रानी जाय प्रसूत-थान, तुमको कर में ले हरष मान।।
हरि गोद देय सो मोदधार, सिर चमर अमर ढारत अपार।
गिरिराज जाय तित शिला पाँडु, तापै थाप्यो अभिषेक माँडु।।
तित पंचम उदधितनों सुवार, सुर कर कर करि ल्यायें उदार।
तब इन्द्र सहसकर करि अनन्द, तुम सिर धारा ढार्‌यो सुनन्द।।

अघघघ घघघघ धुनि होत घोर, भभभभ भभ धध धध कलश शोर।
दृम दृम दृमदृम बाजत मृदंग, झन नन नन नन नन नूपुरंग।।
तन नन नन नन नन तनन तान, घन नन नन घंटा करत ध्वान।
ताथेई थेइ थेइ थेइ थेइ सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहिं भाल।।
चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट झट नट शट विराट।
इमि नाचत राचत भगत रंग, सुर लेत जहाँ आनंद संग।।
इत्यादि अतुल मंगल सुठाट, तित बन्यो जहाँ सुरगिरि विराट।
पुनि करि नियोग पितुसदन आय, हरि सौंप्यौ तुम तित वृद्ध थाय।।
पुनि राजमाहिं लहिं चक्ररत्न, भोग्यौ छखंड करि धरम जत्न।
पुनि तप धरि केवलरिद्धि पाय, भविजीवन को शिवमग बताय।।
शिवपुर पहुँचे तुम हे जिनेश, गुणमण्डित अतुल अनंत भेष।
मैं ध्यावतु हौं निज शीश नाय, हमरी भवबाधा हरि जिनाय।।
सेवक अपनो निज जान जान, करुना करि भौभय भान भान।
यह विघन मूल तरु खण्ड खण्ड, चितचिन्तत आनन्द मंड मंड।।

(छन्द घत्तानन्द)

श्री शान्ति महंता शिवतिय कंता, सुगुन अनन्ता भगवन्ता।
भवभ्रमन हनंता, सौख्य अनन्ता, दातारं तारनवन्ता।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द रूपक)

शान्तिनाथ जिनके पद पंकज, जो भवि पूजै मनवचकाय।
जनम-जनम के पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय।।
मन-वाँछित सुख, पावे सो नर बाँचै भगतिभाव अतिलाय।
तातैं 'वृन्दावन' नित बन्दै, जातैं शिवपुर राज कराय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री शान्तिनाथ पूजन

(डॉ. अखिल बंसल कृत)

(दोहा)

गुण अनन्त की खान हो, धीर वीर गम्भीर।
जो भी आवे शरण में, मिट जावे भवपीर।।
'अखिल' विजेता विश्व के, तुम प्रभु महिमावान।
मैं पूजूं नित भाव से, शान्तिनाथ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठः ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

नित रंग-राग में फंसा रहा, जीवन का पल-पल खोया है।
राग-द्वेष मोहादि के वश, मैंने कांटो को बोया है।।
अब शुभभाव जगा मन में, जल से भर गगरी लाया हूँ।
मिथ्यामल धोने हेतु प्रभु, मैं शरण आपकी आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मम अंतस शीतल करने को विधियाँ अनेक रच डाली हैं।
सुख शान्ति तनिक भी नहीं मिली, हर रात अमावस काली है।।
क्रोधादि कषायें क्षय करने, शीतल चन्दन में लाता हूँ।
अब तो नहिं पल भर देरी हो, नित गीत तुम्हारे गाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तेरे सदृश बन जाने की, मन में इच्छा बलशाली है।
यह भवसागर प्रभु पार करूँ, चैतन्य शक्ति मतवाली है।।
अक्षय निधि की प्राप्ति हेतु, मैं अक्षत भेंट चढ़ाता हूँ।
हो मुक्तिरमा सहचर मेरी, प्रभु यही भावना भाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कामाग्नि प्रबल दुखदायी है, कैसे छुटकारा मैं पाऊँ।
विषयों से मुझको मुक्ति मिले, दिन-रात भावना मैं भाऊँ।।
ले पुष्प सुगन्धित थाल सजा, जो काम प्रतीक कहाता है।
चरणों में अर्पित है स्वामी, अब और नहीं कुछ भाता है।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जब क्षुधा व्याधि से ग्रसित हुआ, ना-ना व्यंजन बनवाता हूँ।
तन हृष्ठ-पुष्ट जब हो जाता, मैं फूला नहीं समाता हूँ।।
मुझमें आतम बल जागृत हो, दिल में ऐसा विश्वास भरे।
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, मम क्षुधा रोग का नाश करे।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्ध चक्र के बीच फंसा, पापों ने आकर घेरा है।
थी दर्शन ज्ञान शक्ति मेरी, उसने अपना मुँह फेरा है।।
अज्ञान तिमिर का क्षय करने, दीपक ले पूजन को आया।
जीवन प्रकाश से आल्हादित ऐसा अनुपम रस मैं पाया।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ये कर्म बंध दुखदायी हैं, इनको न पृथक् कर पाया हूँ।
सब अष्ट कर्म विध्वंस करूँ, दस धूप सुगन्धित लाया हूँ।।
हर्षित हूँ चित्त प्रफुल्लित है, अविनश्वर सुख अब मिल जाए।
यह पावन धूप समर्पित है, नितप्रति नभ मण्डल महकाए।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नाना प्रकार के फल लेकर, प्रभु पूजन करने मैं आया।
शिवपुर मेरा निजवास बने, यह सोच-सोच मन हर्षाया।।
भव भ्रमण हमारा मिट जाए, दुनिया से मन घबराया है।
सन्मार्ग मिले पथ निष्कंटक, मन सोच-सोच हर्षाया है।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

हम तो अनर्घ्य पद पाने को, प्रभु शरण आपकी आए हैं।
यह अर्घ समर्पण करने को, जल से फल तक सब लाए हैं।।
प्रभु अष्टद्रव्य का थाल सजा, पूजन करने मैं आया हूँ।
चरणों में अर्घ चढ़ा करके, भव सागर तरने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक का अर्घ्य

(सखी छन्द)

भादों कृष्ण सप्तम आयो, गरभागम मंगल पायौ।
ऐरा माता उर आए, सब जगत तुम्हें सिर नायै।।

ॐ ह्रीं भाद्रपद कृष्णासप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं।

कलि चौदस ज्येष्ठ की जानो, जन्में श्री शान्ति महानो।
हस्तिनापुर खुशियां छाई, हम पूजत हैं चितलाई।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं।

तिथि चौदस ज्येष्ठ की श्यामा, धरियो तप श्री अभिरामा।
हस्तिनापुर खुशियां छाई, हम पूजत हैं चितलाई।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां निष्क्रमेणमहोत्सवमंडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं।

पौष शुक्ल दशमी दिन सोहै, लहि केवल आतम जो है।
चहुँदिशि हर्षित है स्वामी, नित बन्दों त्रिभुवन नामी।।

ॐ ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं।

जेठ कृष्णा की चौदस आई, शिखर सम्मेद में मुक्ति पाई।
सादि अनन्त सिद्ध पद पाया, सब मोक्ष कल्याण मनाया।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं।

जयमाला

जय शान्ति प्रदाता जगत भूप, हो धर्मध्यान आनन्द रूप।
हस्तिनापुर के तुम हृदयहार, नित ही करते निज में विहार।।
जय ऐरा माता गोद पाय, बहुविध क्रीड़ा कीनी जिनाय।
तुम पर गहरी श्रद्धा मुनिन्द्र, जय शान्ति जिनेश्वर जय जिनेन्द्र।।

प्रभु कामदेव सुन्दर स्वरूप, तुम हो अखण्ड चैतन्य रूप।
नृप विश्वसेन के तुम हो लाल, निर्द्वन्द निराकुल तुम विशाल।।
संसार भ्रमण से जग निराश, मनवांछित फल की करें आस।
नित नई लालसायें मुनिन्द्र, जय शान्ति जिनेश्वर जय जिनेन्द्र।।
शुभ-अशुभ राग हैं दुःखस्वरूप, जग ने माना आनन्द रूप।
पर के तुम कर्ता नहीं नाथ, सबके ज्ञाता हो एक साथ।।
प्रभु के स्वरूप को निरख आज, मिल गया मुझे सम्पूर्ण काज।
हम तो शरणागत हैं मुनिन्द्र, जय शान्ति जिनेश्वर जय जिनेन्द्र।।
मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेद जान हर्षित हैं सभी।
रागादि विभाव किए जितने, आकुलित हुए सब ही उतने।।
तुमरी महिमा तो है अपार, भवदधि से सबको करो पार।
वातायन सुरभित है मुनिन्द्र, जय शान्ति जिनेश्वर जय जिनेन्द्र।।
प्रभु चरणों में श्रद्धा अगाध, मेरी अन्तिम है यही साध।
निरखत मुद्रा नयनाभिराम, कर जोड़ करत शत् शत् प्रणाम।।
प्रमुदित है जनगण मन अपार, जिनबिम्ब विलोकत बार-बार।
तुम 'अखिल' विश्व के हो मुनिन्द्र, जय शान्ति जिनेश्वर जयजिनेन्द्र।।

शान्तिदूत प्रभु जगत के, महिमा अपरम्पार।
मैं वन्दूं नित भाव से, होय जगत उद्धार।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत)

आज हम जिनराज तुम्हारे द्वारे आये।
हाँ जी हाँ हम आये आये।।टेक।।
देखे देव जगत के सारे, एक नहीं मन भाये।
पुण्य-उदय से आज तिहारे, दर्शन कर सुख पाये।।1।।
जन्म-मरण नित करते-करते, काल अनन्त गमाये।
अब तो स्वामी जन्म-मरण का, दुखड़ा सहा न जाये।।2।।
भव-सागर में नाव हमारी, कब से गोता खाये।
तुम ही स्वामी हाथ बढ़ाकर, तारो तो तिर जाये।।3।।
अनुकम्पा हो जाय आपकी, आकुलता मिट जाये।
'पंकज' की प्रभु यही बीनती, चरण-शरण मिल जाये।।4।।

श्री पार्श्वनाथ जिन पूजन

(श्री बख्तावरमलजी कृत)

(हरिगीतिका)

वर स्वर्ग प्राणत को विहाय, सुमात वामा-सुत भये।
अश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरण तिनके सुर नये।।
नौ हाथ उन्नत तन विराजै, उरग-लक्षण अति लसैं।
थापूँ तुम्हें जिन आय तिष्ठो, कर्म मेरे सब नसैं।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(चामर छन्द)

क्षीर सोम के समान अम्बु-सार लाइए।
हेम-पात्र धार के सु आपको चढ़ाइए।।
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा।
दीजिए निवास मोक्ष भूलिए नहीं कदा।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दनादि केसरादि स्वच्छ गन्ध लीजिए।
आप चर्न चर्च मोह-ताप को हनीजिए।।पार्श्व.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

फेन चन्द के समान अक्षतं मँगाय के।
चर्ण के समीप सार-पुंज को रचाय के।।पार्श्व.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

केवड़ा गुलाब और केतकी चुनाइए।
धार चर्ण के समीप काम को नशाइए।।पार्श्व.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवरादि बावरादि मिष्ट सद्य में सनें।
आप चर्ण चर्च तैं क्षुधादि-रोग को हनें।।पार्श्व.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लाय रत्न-दीप को सनेह-पूर के भरूँ।
बातिका कपूर वार मोह-ध्वान्त को हरूँ।।पार्श्व.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप गन्ध लेय कैं सुअग्नि संग जारिए।
तास धूप के सु संग कर्म अष्ट बारिए।।पार्श्व.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

खारकादि चिर्भटादि रत्न-थार में भरूँ।
हर्ष धार कैं जजूँ सुमोक्ष सौख्य को वरूँ।।पार्श्व.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर गन्ध अक्षतान् सुपुष्प चरू लीजिए।
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ्यतैं जजीजिए।।पार्श्व.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

(सावी छन्द)

शुभ प्राणत स्वर्ग विहाये, वामा माता उर आये।
वैशाखतनी दुति कारी, हम पूजें विघ्न-निवारी।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनमे त्रिभुवन-सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता।
श्यामा-तन अद्भुत राजे, रवि-कोटिक-तेज सु लाजे।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पौषकृष्णैकादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि पौष इकादशि आई, तब बारह भावन भाई।
अपने कर लौंच सुकीना, हम पूजें चर्न जजीना।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पौषकृष्णैकादश्यां तपकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवलज्ञान उपाई।
तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवन को सुख दीना।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित सातैं सावन आई, शिव-नारि वरी जिन राई।
सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजें मोक्ष-कल्याना।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(कवित्त)

पारसनाथ जिनेन्द्रतने वच पौनभखी[1] जरते सुन पाये।
करो सरधान लह्यो पद आन भये पद्मावति-शेष[2] कहाये।।
नाम प्रताप टरे सन्ताप सुभव्यन को शिव-शर्म दिखाये।
हो अश्वसेन के नन्द भले गुण गावत हैं तुमरे हरषाये।।

(दोहा)

केकी-कण्ठ समान छबि, वपु उतंग नव हाथ।
लक्षण उरग निहार पग, वन्दूँ पारसनाथ।।

(मोतियादाम छन्द)

रची नगरी षट् मास अगार, बने चहुँ गोपुर शोभ अपार।
सु कोटतनी रचना छबि देत, कँगूरन पै लहकैं बहु केत।।
बनारस की रचना जु अपार, करी बहु भाँत धनेश तैयार।
तहाँ अश्वसेन नरेन्द्र उदार, करैं सुख वाम सु दे पटनार।।
तज्यो तुम प्राणत नाम विमान, भये तिनके घर नन्दन आन।
तबै सुर इन्द्र नियोगनि आय, गिरीन्द्र करी विधि न्होन सु जाय।।
पिता घर सौंप गये निज धाम, कुबेर करे वसु याम जु काम।
बढ़े जिन दूज मयंक समान, रमैं बहु बालक निर्जर आन।।

---
1. नाग-नागिनी, 2. धरणेन्द्र

भये जब अष्टम वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत महा सुखकार।
पिता जब आन करी अरदास, करो तुम ब्याह वरो मम आस।।
करी तब नाहिं रहे जगचन्द, किये तुम काम कषाय जु मन्द।
चढ़े गजराज कुमारन संग, सु देखत गंगतनी सुतरंग।।
लख्यो इक रंक करे तप घोर, चहूँ दिस अगनि बले अतिजोर।
कहे जिननाथ अरे सुन भ्रात, करे बहु जीवतनी मत घात।।
भयो तब कोप कहै कित जीव, जले तब नाग दिखाय सजीव।
लख्यो यह कारण भावन भाय, नये दिव-ब्रह्म-ऋषी सुर आय।।
तबै सुर चार प्रकार नियोग, धरी शिविका निज-कन्ध मनोग।
कर्‌यो बन माहिं निवास जिनन्द, धरे व्रत चारित आनन्द-कन्द।।
गहे तहाँ अष्टम के उपवास, गये धनदत्त तनें जु अवास।
दियो पयदान महा सुखकार, भई पन वृष्टि तहाँ तिह वार।।
गये फिर कानन माहिं दयाल, धर्‌यो तुम योग सबै अघ टाल।
तबै वह धूम सुकेत अयान, भयो कमठाचर को सुर आन।।
करैं नभ गौन[1] लखे तुम धीर, जु पूरब बैर विचार गहीर।
कर्‌यो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहु तीक्षण पवन झकोर।।
रह्‌यो दशहूँ दिश में तम छाय, लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय।
सुरुण्डन के बिन मुण्ड दिखाय, पड़े जल मूसल धार अथाय।।
तबै पद्मावति कन्त धरणेन्द, चले जुग आय तहाँ जिनचन्द।
भग्यो तब रंक सु देखत हाल, लह्‌यो तब केवलज्ञान विशाल।।
दियो उपदेश महाहितकार, सुभव्यन बोधि सम्मेद पधार।
सुवर्णभद्र जहँ कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसु ऋद्ध।।
जजूँ तुम चर्ण दोऊ कर जोर, प्रभू लखिये अब ही मम ओर।
कहैं 'बखतावर' रतन बनाय, जिनेश हमें भव-पार लगाय।।

1. गगन

(घत्ता)

जय पारस-देवं, सुर-कृत सेवं, वन्दत चरण सुनागपती।
करुणा के धारी, पर-उपकारी, शिव-सुखकारी कर्म हती।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकप्राप्ताय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(रोला)

जो पूजै मन लाय, भव्य पारस प्रभु नित ही।
ताके दुख सब जाँय, भीति व्यापै नहिं कित ही।।
सुख-सम्पत्ति अधिकाय, पुत्र-मित्रादिक सारे।
अनुक्रम सों शिव लहे, 'रतन' इम कहें पुकारे।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

भजन

चाह मुझे है दर्शन की, प्रभु के चरण स्पर्शन की।।टेक।।
वीतराग-छवि प्यारी है, जगजन को मनहारी है।
मूरत मेरे भगवन की, वीर के चरण स्पर्शन की।।१।।
कुछ भी नहीं शृंगार किये, हाथ नहीं हथियार लिये।
फौज भगाई कर्मन की, प्रभु के चरण स्पर्शन की।।२।।
समता पाठ पढ़ाती है, ध्यान की याद दिलाती है।
नासादृष्टि लखो इनकी, प्रभु के चरण स्पर्शन की।।३।।
हाथ पे हाथ धरे ऐसे, करना कुछ न रहा जैसे।
देख दशा पद्मासन की, वीर के चरण स्पर्शन की।।४।।
जो शिव-आनन्द चाहो तुम, इन-सा ध्यान लगाओ तुम।
विपत हरे भव-भटकन की, प्रभु के चरण स्पर्शन की।।५।।

श्री पार्श्वनाथ जिन पूजन

(डॉ. अखिल बंसल कृत)

(दोहा)

पार्श्वनाथ के पद पंकज में, वंदन मेरा बारम्बार।
तुम हो सिद्धशिला अधिनायक, ज्ञान तुम्हारा अपरंपार।।
मम राह कंटकाकीर्ण हुई, कैसे भव सागर पार करूं।
प्रभुवर मैं तो शरणागत हूँ, निज वैभव कैसे प्राप्त करूं।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

मैं तो अनादि से पीडित हूँ, उपचार मुझे कुछ मिल जाए।
मेरी आकुल-व्याकुलता भी, पल भर में नाथ विनश जाए।।
अन्तस्तल निर्मल करने को, मैं लाया निर्मल जलधारा।
शुचि सरल भाव मेरे नित हों, जग से मिल जाए छुटकारा।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुमूल्य समय मैंने खोया, बाहर की निधियां पाने को।
पर सुख किंचित भी पा न सका, भव सागर से तिर जाने को।।
विषयों की ज्वाला धधक रही, मैं उसमें जलता आया हूँ।
संसार ताप के शमन हेतु, चंदन अर्पण ढिंग लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रादिक वैभव चाह नहीं, ना रंचमात्र है अभिलाषा।
चैतन्य शक्ति निज में प्रगटे, मन में यह जाग उठी आशा।।
निज तेज तपस्या के बल पर, मैने अक्षय निधि को है जाना।
यह अक्षत पुंज समर्पित हैं, अक्षय सुख मुझको है पाना।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शतदल सुषमा से सरवर, नित ही शोभा को पाता है।
पर रस के फेर फंसा मधुकर, अपने ही प्राण गंवाता है।।
तुम तो हो कामजयी जिनवर, हम शरण आपकी आए हैं।
मिट जाए काम व्यथा मेरी, बहु सुमन साथ में लाए हैं।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यह क्षुधा रोग है दुखदायी, भारी पीडा जो पहुंचाता।
ना ना व्यंजन के भोग किये, पर तृप्त नहीं मैं हो पाता।।
इनके आस्वादन से प्रभुवर, संतुष्ट नहीं हो पाया हूँ।
अब क्षुधा रोग का दुक्ख मिटे, नैवेद्य चढाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मम मोह अंध में फंसकर के, जीवन को नरक बना डाला।
सम्यक रत्नत्रय पाने को, सद् मार्ग न अब तक मिल पाया।।
दीपक का थाल सजा जिनवर, चरणों में आज चढाऊंगा।
अज्ञान तिमिर छंट जाए प्रभु, दिन रात भावना भाऊंगा।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

करमों का बंधन दुखदाई, कोई न इससे बचपाया।
पर तुमने करमों को जीता, मैं रहा अभी रीता-रीता।।
ले धूप सुगंधित द्रव्यमयी, अर्पित करने ढिंग लाया हूँ।
ऐसा संयोग मिला मुझको, हे नाथ ! शरण में आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मोक्ष महाफल की दुर्लभता, सबकी जानी-मानी है।
फिर भी मैने हिम्मत करके, उसको पाने की ठानी है।।
उत्कृष्ट फलों के उपवन से, चुन-चुन कर सब ले आया हूँ।
शिव फल पाने की आस जगी, अब नहीं कहीं भरमाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्म मरण संताप मिटाने, भव बाधा परिहार करूं।
जीवन विकास के प्रिय पथ को, पाने को समता भाव धरूं।।
इन अष्ट कर्म आवरणों को, मैं आज हटाने आया हूँ।
सिद्धों की श्रेणी पाने को, वसु द्रव्य चढाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

दूज कृष्ण वैशाख की आई,काशी ने तब ली अंगडाई।
वामा देवी के उर आए, इन्द्र- नरेन्द्र सभी सिर नाये।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष माह एकादश काली,अश्वसेन घर खुशियां छाई।
जन्मोत्सव की खुशी मनाएं,हो अभिषेक देख गुण गाऐं।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पौषकृष्णैकादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अखिल सुखों से किया किनारा, राज-पाट भी छोड़ा सारा।
पौष वदी एकादश प्यारी, जाकर वन में दीक्षा धारी।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पौषकृष्णैकादश्यां तपकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जब कलि चैत्र चतुर्थी आई,केवलज्ञान की खुशियां छाई।
समता भाव बना सुखकारी,समवशरण देखा मनहारी।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ल सप्तमी आया,पार्श्व प्रभु निर्वाण है पाया।
शैल शिखर सम्मेद है नामी,मोक्ष पथिक हों सब अनुगामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ को ,मन वचतन से ध्याय।
शीघ्र सिद्ध पद प्राप्त हो,जय-जय-जय जिनराय।।

अश्वसेन कुल दीपक प्रभुवर,वामा देवी के नंदन।
पौष कृष्ण एकादशी जन्मे,सब मिल करते हैं वंदन।।१।।
नीलमणि सम रूप आपका,निरखत सबके मन भाया।
रोचक बचपन की घटनाएं, सुन-सुन कर मन हर्षाया।।२।।

केवल श्रवण मात्र से सबको, मिलती हैं जो शिक्षाएं।
धरम धुरंधर करुणासागर, कैसे सत्पथ हम पाएं।।३।।
एक दिवस मित्रों के संग वे,गज पर बैठे निकल पड़े।
कानन में था एक तपस्वी, पंचाग्नि तप हेतु खड़े।।४।।
नाग-नागनी जलते देखे,मन विचलित हो द्रवित हुए।
दौड़े जाकर उन्हें बचाया,किंचित भी न भ्रमित हुए।।५।।
मरकर नाग नागनी दोनों,देवलोक को गये सिधार।
पद्मावती धरणेन्द्र कहाये,भूल सके न वे उपकार।।६।।
अल्प आयु में दीक्षा व्रत ले,आप तपस्वी बने महान।
आत्मध्यान में रूढ रहे हो,जिसको जाने सकल जहान।।७।।
ध्यान मग्न पारस प्रभु ऊपर,क्रूर कमठ उपसर्ग किया।
धरणेन्द्र पद्मावती ने आकर,उन विघ्नों का हरण किया।।८।।
संयम की नौका पर चढकर,साम्य भाव को अपनाया।
सत्य सिंधु में गोते खाकर,आप कैवल्य ज्ञान पाया।।९।।
सकल सृष्टि की दृष्टि बदली,प्रभु की चिंतन धारा से।
मुक्ति मार्ग के पथिक बने सब,भव बंधन की कारा से।।१०।।
शैल शिखर सम्मेद गिरी से,मुक्ति पद को पाया है।
पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में,सबने शीश झुकाया है।।११।।
रूप आपका जब से निरखा, निज स्वरूप का भान हुआ।
तुम सम हम भी बनें प्रभु जी,दृढ निश्चय श्रद्धान हुआ।।१२।।
मैने भक्ति विभोर आज यह,मन से कीनी है पूजन।
'अखिल' जगत सम्यक् फल पावे,कट जाएं भव के बंधन।।१३।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकप्राप्ताय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पार्श्वनाथ के पद पंकज को, पूजूँ मन-वच-काय।
भाव सहित वंदन करूँ, शीघ्र मुक्ति मिल जाय।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री वर्द्धमान जिनपूजन

(कविवर वृन्दावनदासजी कृत)

स्थापना (छन्द मत्तगयन्द)

श्रीमत वीर हरैं भव पीर भरैं सुख सीर अनाकुलताई।
केहरि अंक अरीकर दंक नये हरि पंकति मौलि सुआई।।
मैं तुमको इत थापतु हों प्रभु भक्ति समेत हिये हरषाई।
हे करुणा धन-धारक देव! इहाँ अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छन्द अष्टपदी)

क्षीरोदधि सम शुचि नीर, कंचनभृंग भरों।
प्रभु वेग हरो भवपीर यातैं धार करों।।
श्री वीर महा अतिवीर सन्मति-नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मति-दायक हो।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चन्दन सार केसर संग घसों।
प्रभु भव आताप निवार पूजत हिय हुलसों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल सित शशिसम शुद्ध लीनों थार भरी।
तसु पुंज धरों अविरुद्ध पावों शिवनगरी।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुरतरु के सुमन समेत सुमन सुमन प्यारे।
सो मनमथ-भंजन हेत पूजों पद थारे।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रस रज्जत सज्जत सद्य मज्जत थार भरी।
पद जज्जत रज्जत अद्य भज्जत भूख अरी।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम खण्डित मण्डित नेह दीपक जोवत हों।
तुम पदतर हे सुखगेह भ्रमतम खोवत हों।।
श्री वीर महा अतिवीर सन्मति-नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मति-दायक हो।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

हरिचन्दन अगर कपूर चूर सुगन्ध करा।
तुम पदतर खेवत भूरि आठों कर्म जरा।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रितुफल कलवर्जित लाय, कंचन थाल भरों।
शिवफल हित हे जिनराय तुम ढिंग भेंट धरों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलफल वसु सजि हिमथार तन-मन मोद धरों।
गुण गाऊँ भवदधितार पूजत पाप हरों।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

(राग टप्पा चाल में)

मोहि राखो हो सरना, श्री वर्द्धमान जिनरायजी ।।मोहि.।।
गरभ साढ़ सित छट्ठ लियो तिथि, त्रिशला उर अघ हरना।
सुर सुरपति तित सेव करी नित, मैं पूजों भव तरना।।मोहि.।।

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनम चैत सित तेरस के दिन, कुण्डलपुर कन वरना।
सुरगिर सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भव हरना ।।मोहि.।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना।
नृपकुमार घर पारन कीनों, मैं पूजों तुम चरना ।।मोहि.।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुकलदशें वैशाख दिवस अरि, घाति चतुक छय करना।
केवल लहि भवि भवसर तारे, जजों चरन सुख भरना।।मोहि.।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिकश्याम अमावस शिवतिय पावापुरतैं वरना।
गनफनिवृन्द जजैं तित बहुविध, मैं पूजों भय हरना।।मोहि.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(हरिगीतिका)

गनधर असनिधर, चक्रधर, हलधर गदाधर वरवदा,
अरु चापधर, विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा।
दुखहरन आनन्द भरन तारन-तरन चरन रसाल हैं,
सुकुमाल गुनमनिमाल उन्नत, भाल की जयमाल हैं।।

(छन्द घत्तानन्द)

जय त्रिशलानन्दन, हरिकृतवंदन, जगदानन्दन चन्दवरं।
भवतापनिकन्दन, तन कनमन्दन, रहितसपन्दन नयनधरं।।

(छन्द त्रोटक)

जय केवलभानु कलासदनं, भवि-कोकविकाशन कन्दवनं।
जगजीत महारिपु मोह हरं, रजज्ञान दृगांवर चूर करं।।
गर्भादिक मंगल-मण्डित हो, दुःख दारिद को नित खण्डित हो।
जगमाहिं तुम्ही सत पण्डित हो, तुम ही भव-भाव विहंडित हो।।
हरिवंश सरोजन को रवि हो, बलवन्त महन्त तुम्हीं कवि हो।
लहि केवल धर्मप्रकाश कियो, अबलों सोई मारग राजति हो।।
पुनि आप तने गुन माहिं सही, सुर मग्न रहैं जितने सब ही।
तिनकी वनिता गुन गावत हैं, लय माननिसों मन भावत हैं।।
पुनि नाचत रंग उमंग भरी, तुअ भक्ति विषैं पग एम धरी।
झननं झननं झननं झननं, सुर लेत तहाँ तननं तननं।।

घननं घननं घनघंट बजै, दृमदृम दृमदृम मिरदंग सजै।
गगनांगन–गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता।।
धृगतां धृगतां गति बाजत है, सुरताल रसाल जु छाजत है।
सननं सननं सननं नभ में, इकरूप अनेक जु धारि भ्रमें।।
कइ नारि सुबीन बजावत हैं, तुमरो जस उज्ज्वल गावत हैं।
करताल विषैं करताल धरैं, सुरताल विशाल जु नाद करें।।
इन आदि अनेक उछाह भरी, सुर भक्ति करैं प्रभुजी तुमरी।
तुम ही जग जीवन के पितु हो, तुम ही बिन कारनतैं हितु हो।।
तुम ही सब विघ्न–विनाशन हो, तुम ही निज आनन्द भासन हो।
तुम ही चित–चिंतितदायक हो, जगमाहीं तुम्हीं सब लायक हो।।
तुमरे पन मंगल माहिं सही, जिय उत्तम पुण्य लियो सब ही।
हमको तुम्हरी सरनागत है, तुमरे गुन में मन पागत है।।
प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जबलों वसुकर्म नहीं नसिये।
तबलों तुम ध्यान हिये वरतों, तबलों श्रुतचिन्तन चित्तरतों।
तबलों व्रत चारित चाहत हों, तबलों शुभ भाव सुगाहतु हों।।
तबलों सतसंगति नित्य रहों, तबलों मम संजम चित्त गहों।।
जबलों नहिं नाश करों अरि को, शिवनारि वरों समता धरि को।
यह द्यो तबलों हमकों जिनजी, हम जाचतु हैं इतनी सुनजी।।

(घत्तानन्द)

श्रीवीर जिनेशा, नमित सुरेशा, नागनरेशा भगति भरा।
'वृन्दावन' ध्यावै, विघन नशावै, वांछित पावैं शर्म वरा।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

श्री सनमति के जुगलपद, जो पूजें धर प्रीत।
'वृन्दावन' सो चतुर नर, लहैं मुक्ति नवनीत।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री महावीर पूजन

(डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल कृत)

(स्थापना)

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वन्दनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जिनके गुणों का स्तवन पावन करन अम्लान है।
मल-हरन निर्मल-करन भागीरथी नीर-समान है।।
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

लिपटे रहें विषधर तदपि-चन्दन विटप निर्विष रहें।
त्यों शान्त शीतल ही रहो रिपु विघन कितने ही करें।।सन्तप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुख-ज्ञान-दर्शन-वीर जिन अक्षत समान अखण्ड हैं।
हैं शान्त यद्यपि तदपि जो दिनकर समान प्रचण्ड हैं।।सन्तप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवनजयी अविजित कुसुमसर सुभट मारन सूर हैं।
पर-गन्ध से विरहित तदपि निज-गन्ध से भरपूर हैं।।सन्तप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यदि भूख हो तो विविध व्यंजन मिष्ट इष्ट प्रतीत हों।
तुम क्षुधा-बाधा रहित जिन! क्यों तुम्हें उनसे प्रीत हो?।।सन्तप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

युगपद् विशद् सकलार्थ झलकें नित्य केवलज्ञान में।
त्रैलोक्य-दीपक वीर-जिन दीपक चढ़ाऊँ क्या तुम्हें।।
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म ईंधन दहन पावक पुंज पवन समान हैं।
जो हैं अमेय प्रमेय पूरण ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान हैं।।सन्तप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सारा जगत फल भोगता नित पुण्य एवं पाप का।
सब त्याग समरस निरत जिनवर सफल जीवन आपका।।सन्तप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

इस अर्घ्य का क्या मूल्य है अनर्घ्य पद के सामने।
उस परम-पद को पा लिया हे पतितपावन! आपने।।सन्तप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

सित छठवीं आषाढ़, माँ त्रिशला के गर्भ में।
अन्तिम गर्भावास, यही जान प्रणमूँ प्रभो।।

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तेरस दिन सित चैत, अन्तिम जन्म लियो प्रभू।
नृप सिद्धार्थ निकेत, इन्द्र आय उत्सव कियो।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशमी मगसिर कृष्ण, वर्द्धमान दीक्षा धरी।
कर्म कालिमा नष्ट, करने आत्मरथी बने।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित दशमी बैसाख, पायो केवलज्ञान जिन।
अष्ट द्रव्यमय अर्घ्य, प्रभुपद पूजा करें हम।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक मावस श्याम, पायो प्रभु निर्वाण तुम।
पावा तीरथधाम, दीपावली मनाय हम।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण-अमावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

यद्यपि युद्ध नहीं कियो, नाहिं रखे असि-तीर।
परम अहिंसक आचरण, तदपि बने महावीर।।

(पद्धरि)

हे मोह-महादलदलन वीर, दुद्धर-तप संयम धरण धीर।
तुम हो अनन्त आनन्दकन्द, तुम रहित सर्व जग दंद-फंद।।
अघकरन करन-मन-हरन-हार, सुखकरन हरन भवदुख अपार।
सिद्धार्थ तनय तनरहित देव, सुर-नर-किन्नर सब करत सेव।।
मतिज्ञान रहित सन्मति जिनेश, तुम राग-द्वेष जीते अशेष।
शुभ-अशुभ राग की आग त्याग, हो गये स्वयं तुम वीतराग।।
षट् द्रव्य और उनके विशेष, तुम जानत हो प्रभुवर अशेष।
सर्वज्ञ-वीतरागी जिनेश, जो तुम को पहचाने विशेष।।
वे पहचानें अपना स्वभाव, वे करें मोह-रिपु का अभाव।
वे प्रकट करें निज-पर विवेक, वे ध्यावें निज शुद्धात्म एक।।
निज आतम में ही रहें लीन, चारित्र-मोह को करें क्षीण।
उनका हो जाये क्षीण राग, वे भी हो जायें वीतराग।।
जो हुए आज तक अरीहंत, सबने अपनाया यही पंथ।
उपदेश दिया इस ही प्रकार, हो सबको मेरा नमस्कार।।

जो तुमको नहिं जाने जिनेश, वे पायें भव-भव-भ्रमण क्लेश।
वे माँगें तुमसे धन-समाज, वैभव पुत्रादिक राज-काज।।
जिनको तुम त्यागे तुच्छ जान, वे उन्हें मानते हैं महान।
उनमें ही निशदिन रहें लीन, वे पुण्य-पाप में ही प्रवीन।।
प्रभु पुण्य-पाप से पार आप, बिन पहिचाने पायें संताप।
संतापहरण सुखकरण सार, शुद्धात्मस्वरूपी समयसार।।
तुम समयसार हम समयसार, सम्पूर्ण आत्मा समयसार।
जो पहचानें अपना स्वरूप, वे हो जायें परमात्मरूप।।
उनको ना कोई रहे चाह, वे अपना लेवें मोक्ष राह।
वे करें आत्मा को प्रसिद्ध, वे अल्पकाल में होंय सिद्ध।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

भूतकाल प्रभु आपका, वह मेरा वर्तमान।
वर्तमान जो आपका, वह भविष्य मम जान।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

भजन

जिन-प्रतिमा जिनवर-सी कहिए।

भविक तुम वन्दहु मनधर भाव, जिन-प्रतिमा जिनवर-सी कहिए।
जाके दरस परम पद प्रापति, अरु अनंत शिव-सुख लहिए।।जिन.।।
निज-स्वभाव निरमल है निरखत, करम सकल अरि घट दहिये।
सिद्ध-समान प्रकट इह थानक, निरख-निरख छवि उर गहिए।।जिन.।।
अष्ट कर्म-दल भंज प्रकट भई, चिन्मूरति मनु बन रहिये।
जाके दरस परम पद प्रापति, अरु अनंत शिव-सुख लहिए।।जिन.।।
त्रिभुवन माहिं अकृत्रिम-कृत्रिम, वंदन नित-प्रति निरवहिये।
महा-पुण्य संयोग मिलत है, 'भैया' जिन प्रतिमा सरदहिये।।जिन.।।

श्री महावीर पूजन

(डॉ. अखिल बंसल कृत)

(दोहा)

महावीर वन्दन करूँ, मैं पूजों धरि ध्यान।
निरख आपकी छवि को, होता हर्ष महान॥
गुण अनन्त की खान प्रभु, तुम हो समता वान।
जो आवे तुम शरण में, करे आत्म कल्याण॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौष्ट्।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(अष्टक)

मैं हुआ अपावन नाथ, तातें ढिंग आयो।
हो जाऊँ पावन आज, निर्मल जल लायो॥
तुम हो प्रभु वीर महान, सबके हितकारी।
तुम दिया तत्त्व उपदेश, यह जग उपकारी॥

ॐ ह्रीं श्रीमहीवीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ईर्ष्यानल के अंगार, धक-धक धधक रहे।
चन्दन शीतलता लाय, भव आताप हरे॥तुम.॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

यह अमल अखण्डित रूप, मुद्रा मोहित है।
अक्षत अर्पित है भूप, शुभ्र सुशोभित है॥तुम.॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीर जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मंगल अरुणोदय आज, पुष्प सुगंधित हैं।
सब छोड़ूँ काम विकार, सुमन समर्पित हैं॥तुम.॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीर जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुविध नैवेद्य बनाय, तृप्ति विहीन रहा।
यह क्षुधा रोग विनसाय, जब प्रभु ध्यान धरा॥तुम.॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह दीप संजोकर लाय, नाशै अंधियारा।
मम मोह तिमिर छट जाय, अन्तस उजियारा॥तुम.॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

यह धूप सुगंधित क्षेप, आतम रम जाऊँ।
हो अष्ट करम का क्षार, पंचम गति पाऊँ।।
तुम हो प्रभु वीर महान, सबके हितकारी।
तुम दिया तत्त्व उपदेश, यह जग उपकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ये इष्ट मिष्ट फल थाल, भरकर मैं लाऊँ।
अर्पित है दीन दयाल, मुक्ति पद पाऊँ।।तुम.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सब आठों द्रव्य बनाय, मैं प्रभु लावत हूँ।
त्रैलोक्य शिखामणि राय, चरण चढ़ावत हूँ।।तुम.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

षष्ठी शुक्ल अषाढ़ सुशोभै, माता त्रिशला प्रमुदित होवै।
वीर प्रभुजी गरभ विराजे, कुण्डपुर वासी हरषाये।।

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीतिस्वाहा।

चैत्र सुदी तेरस दिन जाये, घर-घर मंगलाचार गुंजाये।
इन्द्र नरेन्द्र सभी मिल गावें, ढोलक ताल मृदंग बजावें।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्रायअर्घ्यं नि. स्वाहा।

मगसिर कृष्ण दशम तप धारा, राजपाट से किया किनारा।
दुद्धर तप हित हेतु विराजे, नाशा दृष्टि मगन जिनराजे।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीतिस्वाहा।

सित दशमी वैशाख जु आए, केवलज्ञान वीर प्रभु पाये।
तीन लोक में खुशियाँ छाईं, महाश्रमण अरिहन्त कहाये।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक कृष्ण अमावस आई, वर्द्धमान प्रभु मुक्ति पाई।
नश्वर देह विलीन हुई प्रभु सब मिल जगमग ज्योति जलाई।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

मैं गाऊँ जयमालिका, सुनलो ध्यान लगाय।
जग के सब संकट मिटें, भवसागर तिर जाय।।

(पद्धरि छन्द)

जय महावीर जिनवर महान, जय धीर वीर निर्भीक मान।
जय ज्ञान अनन्तानन्त जान, जय सन्मति दायक वर्द्धमान।।१।।
तुम सिद्धारथ नृप के कुमार, तुमको सब वन्दत बार-बार।
तुम त्रिशला नन्दन गुण अनन्त, जग तुम्हें मानता दुख हरन्त।।२।।
हे नाथ! वैशाली गणनायक, हो विदेह कुण्डपुर प्रतिपालक।
यह जग नश्वर है लिया जान, तज राज-पाट फिर किया ध्यान।।३।।
सन्मति कैवल्य प्रभावक हो, दुःख भंजक सुख के दायक हो।
पतितों के नाथ सहायक हो, तुम प्रभुवर गुण के गाहक हो।।४।।
जिनवर ध्वनि गूँजे दिग् दिगन्त, चहुँओर निशा का हुआ अन्त।
सद्ज्ञान मिला बढ़ गई आस, ढिंग बैठ करें श्रुत का अभ्यास।।५।।
मृग-सिंह सबको ही हुआ बोध, सम्मुख बैठे तज दिया क्रोध।
अब नहीं किसी में बैर-भाव, अतिशयकारी सन्मति प्रभाव।।६।।
गौतम को गणधर लिया मान, हो गया जिन्हें कैवल्यज्ञान।
पावापुर का जगमग उद्यान, प्रभु महावीर पाया निर्वाण।।७।।
सब नृप करते श्रद्धा अपार, अविरल गिरती थी अश्रुधार।
रज माथ लगाते बार-बार, अब नहीं जगत में कहीं सार।।८।।
यह 'अखिल' जगत शरणागत है, निर्ग्रन्थ छवि को निहारत है।
सबको मुक्ति की चाहत है, प्रभु जाप जपै सुख पावत है।।९।।

(धत्ताछन्द)

महावीर जिनन्दं, आनन्द कन्दं, दुःखनिकन्दं सुखकारी।
प्रभु गुण गाऊँ, भाव जगाऊँ, कीर्ति बढ़ाऊँ मनहारी।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

महावीर के दर्शन कर, हो गया धन्य मैं आज।
'अखिल' जगत सब सुखी हों, वर्द्धमान जिनराज।।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री पंच बालयति जिन-पूजन

(पं. अभयकुमारजी कृत)

(स्थापना)

(हरिगीतिका)

निज ब्रह्म में नित लीन परिणति, से सुशोभित हे प्रभो।
पूजित परम निज पारिणामिक, से विभूषित हे विभो।।
आओ तिष्ठो अत्र तुम, सन्निकट हो मुझमय अहो।
बालयति पाँचों प्रभु को, वन्दना शत बार हो।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लि-नेमि-पार्श्व-वीराः पंचबालयति-जिनेन्द्राः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

(वीरछन्द)

हे प्रभु ! ध्रुव की ध्रुव परिणति के, पावन जल में कर स्नान।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द का तुम, करो निरतन्र अमृत-पान।।
क्षणवर्ती पर्यायों का तो, जन्म-मरण है नित्य स्वभाव।
पंच बालयति-चरणों में हो, तन-संयोग-वियोग अभाव।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो ! सुगन्धित चेतन अपनी, परिणति में नित महक रहा।
क्षणवर्ती चैतन्य विवर्तन की, ग्रन्थि में चहक रहा।।
द्रव्य, और गुण पर्यायों में, सदा महकती चेतन गन्ध।
पंच बालयति के चरणों में, नाशूँ राग-द्वेष दुर्गन्ध।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

परिणामों के ध्रुव प्रवाह में, बहे अखण्डित ज्ञायक भाव।
द्रव्य-क्षेत्र अरु काल-भाव में, नित्य अभेद अखण्ड स्वभाव।।
निज गुण-पर्यायों में जिनका, अक्षय पद अविचल अभिराम।
पंच बालयति जिनवर मेरी, परिणति में नित करो विराम।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नर्वपामीति स्वाहा।

गुण अनन्त के सुमनों से हो, शोभित तुम ज्ञायक उद्यान।
त्रैकालिक ध्रुव परिणति में तुम, प्रतिपल करते नित्य विराम।।

इसके आश्रय से प्रभु तुमने, नष्ट किया है काम-कलंक।
पंच बालयति के चरणों में, धुला आज परिणति का पंक।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हे प्रभु ! अपने ध्रुव प्रवाह में, रहो निरन्तर शाश्वत तृप्त।
षट्रस की क्या चाह तुम्हें तुम, निज रस के अनुभव में मस्त।।
तृप्त हुई अब मेरी परिणति, ज्ञायक में करती विश्राम।
पंच बालयति के चरणों में, क्षुधा-रोग का रहा न नाम।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञानमय ज्योति प्रज्वलित, रहती ज्ञायक के आधार।
प्रभो ! ज्ञान-दर्पण में त्रिभुवन, पल-पल होता ज्ञेयाकार।।
अहो ! निरखती मम श्रुत-परिणति, अपने में तव केवलज्ञान।
पंच बालयति के प्रसाद से, प्रकट हुआ निज ज्ञायक भान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रैकालिक परिणति में व्यापी, ज्ञान-सूर्य की निर्मल धूप।
जिससे सकल-कर्म-मल क्षय कर, हुए प्रभो! तुम त्रिभुवन भूप।।
मैं ध्याता तुम ध्येय हमारे, मैं हूँ तुममय एकाकार।
पंच बालयति जिनवर ! मेरे, शीघ्र नशो अब त्रिविध विकार।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञान का ध्रुव प्रवाह फल, सदा भोगता चेतनराज।
अपनी चित् परिणति में रमता, पुण्य-पाप फल का क्या काज।।
महा मोक्षफल की न कामना, शेष रहे अब हे जिनराज।
पंच बालयति के चरणों में, जीवन सफल हुआ है आज।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचम परमभाव की पूजित, परिणति में जो करें विराम।
कारण परमपारिणामिक का, अवलम्बन लेते अभिराम।।
वासुपूज्य अरु मल्लि-नेमिप्रभु-पार्श्वनाथ-सन्मति गुणखान।
अर्घ्य समर्पित पंच बालयति को, पञ्चम गति लहूँ महान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

पंच बालयति नित बसो, मेरे हृदय मँझार।
जिनके उर में बस रहा, प्रिय चैतन्य कुमार।।

(छप्पय)

प्रिय चैतन्य कुमार सदा परिणति में राजे।
पर-परिणति से भिन्न सदा निज में अनुरागे।
दर्शन-ज्ञानमयी उपयोग सुलक्षण शोभित।
जिसकी निर्मलता पर आतम ज्ञानी मोहित।।
ज्ञायक त्रैकालिक बालयति, मम परिणति में व्याप्त हो।
मैं नमूँ बालयति पंच को, पंचम गति पद प्राप्त हो।।

(वीरछन्द)

धन्य-धन्य हे वासुपूज्य जिन!, गुण अनन्त में करो निवास।
निज आश्रित परिणति में शाश्वत, महक रही चैतन्य सुवास।।
सत् सामान्य सदा लखते हो, क्षायिक दर्शन से अविराम।
तेरे दर्शन से निज दर्शन, पाकर हर्षित हूँ गुणखान।।
मोह-मल्ल पर विजय प्राप्त कर, महाबली हे मल्लि जिनेश।
निज गुण परिणति में शोभित हो, शाश्वत मल्लिनाथ परमेश।।
प्रतिपल लोकालोक निरखते, केवलज्ञान स्वरूप चिदेश।
विकसित हो चित् लोक हमारा, तव किरणों से सदा दिनेश।।
राजमती तज नेमि जिनेश्वर!, शाश्वत सुख में लीन सदा।
भोक्ता-भोग्य विकल्प विलय कर, निज में निज का भोग सदा।।
मोह रहित निर्मल परिणति में, करते प्रभुवर सदा विराम।
गुण अनन्त का स्वाद तुम्हारे, सुख में बसता है अविराम।।
जिनका आत्म-पराक्रम लख कर, कमठ शत्रु भी हुआ परास्त।
क्षायिक श्रेणी आरोहण कर, मोह शत्रु को किया विनष्ट।।

पार्श्वनाथ के चरण-युगल में, क्यों बसता यह सर्प कहो।
बल अनन्त लखकर जिनवर का, चूर कर्म का दर्प अहो।।
क्षायिक दर्शन ज्ञान वीर्य से, शोभित हैं सन्मति भगवान।
भरत क्षेत्र के शासन नायक, अन्तिम तीर्थंकर सुखखान।।
विश्व-सरोज प्रकाशक जिनवर, हो केवल-मार्तण्ड महान।
अर्घ्य समर्पित चरण-कमल में, वन्दन वर्धमान भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

पंचम भाव स्वरूप, पंच बालयति को नमूँ।
पाऊँ शुद्ध स्वरूप निज, कारण परिणाममय।।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

चरखा चलता नाँहि, चरखा हुआ पुराना।
पग-खूँटे दो हालन लागे, उर मदरा खखराना।
छींदी हुई पाँखड़ी पाँसू, फिरे नाँहि मनमाना।।
रसना तकली ने बल खाया, सो अब कैसे खूटे।
शब्द-सूत सूधा नहीं निकले, घड़ि-घड़ि पल-पल टूटे।।
आयु-माल का नाँहि भरोसा, अंग चलावे सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहे, वैद-बढ़ि ही हारे।।
नया चरखला रंगा चंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा बरन गये गुल अगले, अब देखें नहिं भावै।।
मोटा महीं कातकर भाई! कर अपना सुरझेरा।
अन्त आग में ईंधन होगा, ''भूधर'' समझ सबेरा।।

श्री भरत–बाहुबली पूजन

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(स्थापना)

(कुण्डलिया)

भरत और बाहुबली, वीतराग–सर्वज्ञ।
हित–उपदेशक लोक में, नमें तुम्हें मर्मज्ञ।।

नमें तुम्हें मर्मज्ञ आतमा के आराधक।
सम्यग्ज्ञानी जीव आतमा के जो साधक।।
अज्ञानीजन अरे आपको ना पहिचानें।
सम्यग्दृष्टि जीव जिनेश्वर तुमको जानें।।१।।

ॐ ह्रीं श्री भरत–बाहुबलिस्वामिनौ अत्र अवतरत–अवतरत संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री भरत–बाहुबलिस्वामिनौ अत्र तिष्ठत–तिष्ठत ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री भरत–बाहुबलिस्वामिनौ अत्र मम सन्निहितौ भवत–भवत वषट् ।

(रेखता)

जल

प्रभो ! यह निर्मल जल अम्लान आपके चरणों में अर्पित।
प्यास की बाधा होवे शान्त होय हमको आतम अनुभव।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां जन्म–जरा–मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

प्रभो ! शीतल चन्दन अनुपम आपको अर्पण करता हूँ।
कषायों की गर्मी हो शान्त और जीवन में हो संयम।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

अनोखे अक्षत अक्षत हैं आपको करते हम अर्पण।
अरे अक्षय पद की हो प्राप्ति विकारों का होवे तर्पण।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

प्रभो ! अत्यन्त मनोहर पुष्प कल्पतरु से हम लाये हैं।
और होकर हम विषय–विरक्त चरण वन्दन को आये हैं।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवैद्य

क्षुधानाशक मधुरिम पक्वान्न कहे जाते हैं दुनियाँ में।
किये सेवन हमने भरपूर क्षुधा न शान्त हुई अबतक।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां क्षुधारोगविनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

प्रभो! हो अन्धकार का नाश दीप रत्नों के लाये हैं।
किन्तु मोहान्धकार का नाश नहीं होता इनसे जग में।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

सुगन्धित द्रव्यों से निर्मित धूप लेकर हम आये हैं।
आज तक एक कर्म भी नाश नहीं इससे कर पाये हैं।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

मुक्तिफल पाने को हे नाथ! मधुर फल लेकर आये हैं।
अफल ही सिद्ध हुये ये सभी मुक्ति के न मिल पाने से।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

अनर्घपद की आशा से प्रभो! सभी द्रव्यों को शामिल कर।
अरे यह अर्घ्य बनाकर नाथ! अनेकों बार चढ़ाया है।।
भरत–बाहुबलि हे जिनराज! आपकी महिमा अपरम्पार।
आपने जीते आठों कर्म आप हो गये भवोदधि पार।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

मोक्ष गये युग आदि में, भरत–बाहुबलि नाथ !।
उनकी पूजन भक्ति से, जीवन हुआ सनाथ।। १ ।।

(रेखता)

भरत–बाहुबलि का जीवन देखकर धन्य हो गये हम।
अरे उनके जैसा जीवन दिखाई दिया हमें न अन्य।।
अरे वे जब दोनों ही भाई साथ में घर में रहते थे।
उनमें था अपार स्नेह और थे दो देहों में एक।। २ ।।

साथ में खेला करते थे साथ में खाया करते थे।
कहीं भी जाना हो तो भाई ! साथ में जाया करते थे।।
अरे हम दोनों के ही भगत और दोनों के गायक हैं।
आप दोनों ही भाई नाथ ! अरे हम सबके नायक हैं ।।३।।

आपने बतलाया सबको सभी अपने–अपने नायक।
न कोई नायक गायक है सभी के सब बस ज्ञायक हैं।।
आप जबतक इस घर में रहे अरे अविरतसमदृष्टि रहे।
यद्यपि थे क्षायिकसमदृष्टि किन्तु अणुव्रत धारण न करे ।। ४।।

क्योंकि अरे शलाकापुरुष कभी अणुव्रत धारण न करें।
अरे वे जब भी धारण करें महाव्रत ही वे धारण करें।।
आप दोनों पौरुष के पिण्ड नहीं थी शक्ति की कोई कमी।
नहीं थी कोई कमजोरी अरे फिर अणुव्रत क्यों धारें।। ५।।

आपने जब संयम धारा अरे निज पौरुष के बल से ।
और जब हुये ध्यान में खड़े तो बाहर को झाँके ही नहीं ।।
भले ही एक वर्ष लग गया बाहुबलि आसन से न डिगे ।
भरत तो अन्तर में जब गये, गये फिर बाहर आये नहीं ।।६।।

अरे इस अद्भुत जोड़ी की होड़ कोई कर सकता नहीं।
अरे दोनों भाई बेजोड़ होड़ की बात नहीं कोई।।
अरे दोनों पौरुष के पिण्ड अलौकिक संयमधारी थे ।
कहाँ तक उनकी महिमा करें परम संयम के धारी थे ।। ७।।

आपने किये घातिया नाश आप अरहन्त हो गये हैं।
हुये हैं पूर्ण वीतरागी आप सर्वज्ञ हो गये हैं।।
आपके द्वारा दुनिया को मिला था हितकारी उपदेश ।
इसलिये हे जिनवर भगवान ! आप भी थे देवों के देव ! ।।८।।

आठ गुण से मण्डित हे नाथ ! आप जयवन्त हो गये हैं ।
अनन्तानन्द ज्ञान के पिण्ड सिद्ध भगवन्त हो गये हैं।।
अनन्त दर्शन अनन्त वीरज अनन्तानन्त ज्ञानमय आप ।
सदा सुख भोगेंगे हे प्रभो ! अनन्तानन्त कालतक आप ।। ९।।

(दोहा)

भरत और बाहुबली, होगय भव से पार।
और हमारा भी प्रभो ! शेष नहीं संसार।। १० ।।

ॐ ह्रीं श्री भरतबाहुबलिस्वामिभ्यां जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

यह असार संसार, अरे आपकी कृपा से।
हम होंगे भव पार, अल्पकाल में ही प्रभो।। ११।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

•

श्री बाहुबली पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

(वीर छन्द)

जयति बाहुबलि स्वामी, जय जय करूँ वंदना बारम्बार।
निज स्वरूप का आश्रय लेकर, आप हुए भवसागर पार।।
हे त्रैलोक्यनाथ त्रिभुवन में, छाई महिमा अपरम्पार।
सिद्धस्वपद की प्राप्ति हो गई, हुआ जगत में जय-जयकार।।
पूजन करने मैं आया हूँ, अष्ट द्रव्य का ले आधार।
यही विनय है चारों गति के, दुःख से मेरा हो उद्धार।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

उज्ज्वल निर्मल जल प्रभु पद-पंकज में आज चढ़ाता हूँ।
जन्म-मरण का नाश करूँ, आनन्दकन्द गुण गाता हूँ।।
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ।
अविनश्वर शिवसुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल मलय सुगन्धित पावन, चन्दन भेंट चढ़ाता हूँ।
भव आताप नाश हो मेरा, ध्यान आपका ध्याता हूँ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम शुभ्र अखण्डित तन्दुल, हर्षित चरण चढ़ाता हूँ।
अक्षयपद की सहज प्राप्ति हो, यही भावना भाता हूँ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम शत्रु के कारण अपना, शील स्वभाव न पाता हूँ।
काम भाव का नाश करूँ मैं, सुन्दर पुष्प चढ़ाता हूँ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृष्णा की भीषण ज्वाला में, प्रतिपल जलता जाता हूँ।
क्षुधा-रोग से रहित बनूँ मैं, शुभ नैवेद्य चढ़ाता हूँ।।
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर चरणों में शीश झुकाता हूँ।
अविनश्वर शिव सुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह ममत्व आदि के कारण, सम्यक् मार्ग न पाता हूँ।
यह मिथ्यात्व तिमिर मिट जाये, प्रभुवर दीप चढ़ाता हूँ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

है अनादि से कर्म बन्ध दुःखमय, न पृथक् कर पाता हूँ।
अष्टकर्म विध्वंस करूँ, अतएव सु-धूप चढ़ाता हूँ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज भाव सम्पदा युक्त होकर, भी भव दुःख पाता हूँ।
परम मोक्षफल शीघ्र मिले, उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य भाव से स्वर्गादिक पद, बार-बार पा जाता हूँ।
निज अनर्घ्य पद मिला न अब तक, इससे अर्घ्य चढ़ाता हूँ।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(वीरछन्द)

आदिनाथ सुत बाहुबलि प्रभु, मात सुनन्दा के नन्दन।
चरम शरीरी कामदेव तुम, पोदनपुर पति अभिनन्दन।।
छह खण्डों पर विजय प्राप्त कर, भरत चढ़े वृषभाचल पर।
अगणित चक्री हुए नाम, लिखने को मिला न थल तिल भर।।
मैं ही चक्री हुआ, अहं का मान धूल हो गया तभी।
एक प्रशस्ति मिटाकर अपनी, लिखी प्रशस्ति स्व हस्त जभी।।

चले अयोध्या किन्तु नगर में, चक्र प्रवेश न कर पाया।
ज्ञात हुआ लघु भ्रात बाहुबलि सेवा में न अभी आया।।
भरत चक्रवर्ती ने चाहा, बाहुबलि आधीन रहे।
ठुकराया आदेश भरत का, तुम स्वतंत्र स्वाधीन रहे।।
भीषण युद्ध छिड़ा दोनों भाई के मन संताप हुए।
दृष्टि-मल्ल-जल युद्ध भरत से करके विजयी आप हुए।।
क्रोधित होकर भरत चक्रवर्ती, ने चक्र चलाया है।
तीन प्रदक्षिणा देकर कर में, चक्र आपके आया है।।
विजय चक्रवर्ती पर पाकर, उर वैराग्य जगा तत्क्षण।
राज्यपाट तज ऋषभदेव के, समवशरण को किया गमन।।
धिक्-धिक् यह संसार और, इसकी असारता को धिक्कार।
तृष्णा की अनन्त ज्वाला में, जलता आया है संसार।।
जग की नश्वरता का तुमने, किया चिंतवन बारम्बार।
देह भोग संसार आदि से, हुई विरक्ति पूर्ण साकार।।
आदिनाथ प्रभु से दीक्षा ले, व्रत संयम को किया ग्रहण।
चले तपस्या करने वन में, रत्नत्रय को कर धारण।।
एक वर्ष तक किया कठिन तप, कायोत्सर्ग मौन पावन।
किन्तु शल्य थी एक हृदय में, भरत-भूमि पर है आसन।।
केवलज्ञान नहीं हो पाया, एक शल्य ही के कारण।
परिषह शीत ग्रीष्म वर्षादिक, जय करके भी अटका मन।।
भरत चक्रवर्ती ने आकर, श्री चरणों में किया नमन।
कहा कि वसुधा नहीं किसी की, मान त्याग दो हे भगवन्।।
तत्क्षण शल्य विलीन हुई, तुम शुक्ल ध्यान में लीन हुए।
फिर अन्तर्मुहूर्त में स्वामी, मोह क्षीण स्वाधीन हुए।।
चार घातिया कर्म नष्ट कर, आप हुए केवलज्ञानी।
जय जयकार विश्व में गूँजा, सारी जगती मुसकानी।।

झलका लोकालोक ज्ञान में, सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायें।
एक समय में भूत भविष्यत्, वर्तमान सब दर्शायें।।
फिर अघातिया कर्म विनाशे, सिद्ध लोक में गमन किया।
अष्टापद से मुक्ति हुई, तीनों लोकों ने नमन किया।।
महा मोक्ष फल पाया तुमने, ले स्वभाव का अवलंबन।
हे भगवान बाहुबलि स्वामी, कोटि-कोटि शत-शत वंदन।।
आज आपका दर्शन करने, चरण-शरण में आया हूँ।
शुद्ध स्वभाव प्राप्त हो मुझको, यही भाव भर लाया हूँ।।
भाव शुभाशुभ भव निर्माता, शुद्ध भाव का दो प्रभु दान।
निज परिणति में रमण करूँ प्रभु, हो जाऊँ मैं आप समान।।
समकित दीप जले अन्तर में, तो अनादि मिथ्यात्व गले।
राग-द्वेष परिणति हट जाये, पुण्य पाप सन्ताप टले।।
त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव का, आश्रय लेकर बढ़ जाऊँ।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा, मुक्ति शिखर पर चढ़ जाऊँ।।
मोक्ष-लक्ष्मी को पाकर भी, निजानन्द रस लीन रहूँ।
सादि अनन्त सिद्ध पद पाऊँ, सदा सुखी स्वाधीन रहूँ।।
आज आपका रूप निरख कर, निज स्वरूप का भान हुआ।
तुम-सम बने भविष्यत् मेरा, यह दृढ़ निश्चय ज्ञान हुआ।।
हर्ष विभोर भक्ति से पुलकित, होकर की है यह पूजन।
प्रभु पूजन का सम्यक् फल हो, कटें हमारे भव बंधन।।
चक्रवर्ति इन्द्रादिक पद की नहीं कामना है स्वामी।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम पद पायें हे! अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घर-घर मंगल छाये जग में वस्तु स्वभाव धर्म जानें।
वीतराग विज्ञान ज्ञान से, शुद्धातम को पहिचानें।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री सप्तर्षि पूजन

(श्री रंगलालजी कृत)

स्थापना (छप्पय)

प्रथम नाम श्रीमन्व, दुतिय स्वरमन्व ऋषीश्वर।
तृतिय मुनि श्री निचय, सर्वसुन्दर चौथो वर।।
पंचम श्री जयवान, विनयलालस षष्ठम भनि।
सप्तम जय मित्राख्य, सर्व चारित्र-धाम गनि।।
ये सातों चारण-ऋद्धि-धर, करूँ तास पद थापना।
मैं पूजूँ मन-वचन-काय करि, जो सुख चाहूँ आपना।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षीश्वराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षीश्वराः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षीश्वराः ! अत्र मम सन्निहिताः भवत भवत वषट्।

(हरिगीतिका)

शुभ-तीर्थ-उद्भव-जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायकैं।
भव-तृषा-कंद-निकंद-कारण, शुद्ध घट भरवायकैं।।
मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिन की पूजा करूँ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनन्द विस्तरूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमनु-स्वरमन्व-निचय-सर्वसुन्दर-जयवान्-विनयलालस-जयमित्राख्य-चारणर्द्धिधारि सप्तर्षिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीखण्ड कदलीनन्द केशर, मन्द-मन्द घिसायकैं।
तसु गंध प्रसरित दिग-दिगन्तर, भर कटोरी लायकैं।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अति धवल अक्षत खण्ड-वर्जित, मिष्ट राजत भोग के।
कलधौत-थारा भरत-सुन्दर, चुनित शुभ उपयोग के।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बहु-वर्ण सुवरण-सुमन आछै, अमल कमल गुलाब के।
केतकी चंपा चारु मरुआ, चुने निज कर चावके।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नाना भाँति चातुर, रचित शुद्ध नये-नये।
सदमिष्ट लाडू आदि भर बहु, पुरट के थारा लये।।
मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिन की पूजा करूँ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनन्द विस्तरूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलधौत-दीपक जड़ित नाना, भरित गोघृत-सारसों।
अतिज्वलित जग-मग ज्योति जाकी, तिमिर नाशनहारसों।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दिक्-चक्र गन्धित होत जाकर, धूप दश-अंगी कही।
सो लाय मन-वच-काय शुद्ध, लगाय कर खेऊँ सही।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायकैं।
द्रावडी दाडिम चारु पुंगी, थाल भर-भर लायकैं।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल-गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठौं द्रव्य-मिश्रित, अर्घ्य कीजे पावना।।मन्वादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(घत्ता)

वन्दूँ ऋषिराजा, धर्म-जहाजा, निज-पर-काजा करत भले।
करुणा के धारी, गगन-विहारी दुःख-अपहारी भरम दले।।
काटत जम-फन्दा, भवि-जन वृन्दा, करत अनन्दा चरणन में।
जो पूजैं ध्यावैं, मंगल गावैं, फेर न आवैं भव-वन में।।

(पद्धरि छन्द)

जय श्रीमनु मुनिराजा महन्त, त्रस-थावर की रक्षा करन्त।
जय-मिथ्या-तम-नाशक पतंग, करुणा रस-पूरित अंग-अंग।।

जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप, पद-सेव करत नित अमर-भूप।
जय पंच अक्ष जीते महान, तप तपत देह कंचन-समान।।
जय निचय सप्त तत्त्वार्थ भास, तप-रमातनों तन में प्रकाश।
जय विषय-रोध सम्बोध भान, परणति के नाशक अचल ध्यान।।
जय जयहिं सर्वसुन्दर दयाल, लखि इन्द्रजालवत जगत-जाल।
जय तृष्णाहारी रमण राम, निज-परिणति में पायो विराम।।
जय आनन्दघन कल्याणरूप, कल्याण करत सबकौ अनूप।
जय मद-नाशन जयवानदेव, निरमद विरचित सब करत सेव।।
जय जयहिं विनयलालस अमान, सब शत्रु मित्र जानत समान।
जय कृशित-काय तपके प्रभाव, छबि छटा उड़ति आनन्द दाय।।
जय मित्र सकल जगके सुमित्र, अनगिनत अधम कीने पवित्र।
जय चन्द्र-वदन राजीव नैन, कबहूँ विकथा बोलत न बैन।।
जय सातों मुनिवर एक संग, नित गगन-गमन करते अभंग।
जय आये मथुरापुर मँझार, तहँ मरी रोग को अति प्रसार।।
जय-जय तिन चरणनि के प्रसाद, सब मरी देवकृत भई वाद।
जय लोक करे निर्भय समस्त, हम नमत सदा नित जोड़ हस्त।।
जय ग्रीष्म-ऋतु पर्वत मँझार, नित करत अतापन योगसार।
जय तृषा-परीषह करत जेर, कहूँ रंच चलत नहिं मन सुमेर।।
जय मूल अठाइस गुणनधार, तप उग्र तपत आनन्दकार।
जय वर्षा-ऋतु में वृक्ष तीर, तहं अति शीतल झेलत समीर।।
जय शीत-काल चौपट मँझार, कै नदी सरोवर तट विचार।
जय निवसत ध्यानारूढ़ होय, रंचक नहिं भटकत रोम कोय।।
जय मृतकासन वज्रासनीय, गौदूहन इत्यादिक गनीय।
जय आसन नानाभाँति धार, उपसर्ग सहत ममता निवार।।

जय जपत तिहारो नाम कोय, लख पुत्र पौत्र कुल वृद्धि होय।
जय भरे लक्ष अतिशय भण्डार, दारिद्रतनो दुःख होय छार।।
जय चोर अगनि डाकिन पिशाच, अरु ईति-भीति सब नसत साँच।
जय तुम सुमरत सुख लहत लोक, सुर असुर नमत पद देत धोक।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिचारणर्द्धिधरसप्तर्षिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(रोला)

ये सातों मुनिराज, महातप लछमी धारी।
परमपूज्य पद धरैं, सकल जग के हितकारी।।
जो मन वच तन शुद्ध, होय सेवे औ ध्यावै।
सो जन-मन 'रंगलाल', अष्ट ऋद्धिन कौं पावै।।

(दोहा)

नमन करत चरनन परत, अहो गरीब निवाज।
पंच परावर्तननितैं, निरवारो ऋषिराज।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सरस्वती पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(दोहा)

जनम-जरा-मृतु छय करै, हरै कुनय जड़रीति।
भवसागरसों ले तिरै, पूजैं जिन वच प्रीति।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(त्रिभंगी)

छीरोदधिगंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुखसंगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी हितचंगा।।
तीर्थंकर की धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर मँगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी।
शारदपद वंदों, मन अभिनंदों, पाप निकंदों दाह हरी।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं चंदसमं।
बहुभक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बहुफूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनन्दरासं लाय धरे।
मम काम मिटायो, शील बढ़ायो, सुख उपजायो दोष हरे।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विधि भाया मिष्ट महा।
पूजूँ थुति गाऊँ, प्रीति बढ़ाऊँ, क्षुधा नशाऊँ हर्ष लहा।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. निर्वपामीति स्वाहा।

करि दीपक ज्योतं, तमछ्य होतं, ज्योति उदोतं तुमहिं चढ़ै।
तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान बढ़ै।।
तीर्थंकर की धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभगंध दशोंकर, पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं।
सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं सेवत हैं।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम छुहारी, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं।
मनवांछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता गावत हैं।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नयनन सुखकारी, मृदु गुणधारी, उज्ज्वल भारी मोल धरैं।
शुभगंध सम्हारा, वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करैं।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै दिव्यज्ञानप्राप्तये वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अच्छत, फूल चरु चत, दीप धूप फल अति लावैं।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत सुख पावैं।।तीर्थंकर.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

ओंकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै।।

(चौपाई)

पहलो आचारांग बखानो, पद अष्टादश सहस प्रमानो।
दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरु भाषं।।
तीजो ठाना अंग सु जानं, सहस बियालिस पद सरधानं।
चौथो समवायांग निहारं, चौंसठ सहस लाख इक धारं।।
पंचम-व्याख्या प्रज्ञप्ति दरसं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठो ज्ञातृकथा विस्तारं, पाँच लाख छप्पन हज्जारं।।
सप्तम उपासकाध्ययनंगं, सत्तर सहस ग्यार लख भंगं।
अष्टम अन्तःकृत दश ईसं, सहस अट्ठाइस लाख तेईसं।।
नवम अनुत्तरदश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं।
दशम प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिरानवै सोल हजारं।।
ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं।
चार कोड़ि अरु पन्द्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु भाखं।।
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इक सौ आठ कोड़िपनवेदं।
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्या हन हैं।।
इक सौं बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो।
ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने।।
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं, सहस चुरासी छह सौ भाखं।
साढ़े इकवीस श्लोक बताये, एक-एक पद के ये गाये।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जा वाणी के ज्ञान तैं, सूझै लोक-अलोक।
'द्यानत' जग जयवन्त हो, सदा देत हों धोक।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अक्षय–तृतीया पर्व पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

(ताटंक)

अक्षय–तृतीया पर्व दान का, ऋषभदेव ने दान लिया।
नृप श्रेयांस दान–दाता थे, जगती ने यशगान किया।।
अहो दान की महिमा, तीर्थंकर भी लेते हाथ पसार।
होते पंचाश्चर्य पुण्य का, भरता है अपूर्व भण्डार।।

मोक्षमार्ग के महाव्रती को, भावसहित जो देते दान।
निजस्वरूप जप वह पाते हैं, निश्चित शाश्वत पदनिर्वाण।।
दान तीर्थ के कर्ता नृप श्रेयांस हुए प्रभु के गणधर।
मोक्ष प्राप्त कर सिद्ध लोक में, पाया शिवपद अविनश्वर।।
प्रथम जिनेश्वर आदिनाथ प्रभु! तुम्हें नमन हो बारम्बार।
गिरि कैलाश शिखर से तुमने, लिया सिद्धपद मंगलकार।।
नाथ आपके चरणाम्बुज में, श्रद्धा सहित प्रणाम करूँ।
त्यागधर्म की महिमा पाऊँ, मैं सिद्धों का धाम वरूँ।
शुभ वैशाख शुक्ल तृतिया का, दिवस पवित्र महान हुआ।
दान धर्म की जय–जय गूँजी, अक्षय पर्व प्रधान हुआ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीरछन्द)

कर्मोदय से प्रेरित होकर, विषयों का व्यापार किया।
उपादेय को भूल हेय तत्त्वों, से मैंने प्यार किया।।
जन्म–मरण दुख नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
अक्षय–तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मन-वच-काया की चंचलता, कर्म आस्रव करती है।
चार कषायों की छलना ही, भवसागर दुःख भरती है।।
भवाताप के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रिय विषयों के सुख क्षणभंगुर, विद्युत-सम चमक अथिर।
पुण्य-क्षीण होते ही आते, महा असाता के दिन फिर।।
पद अखण्ड की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शील विनय व्रत तप धारण, करके भी यदि परमार्थ नहीं।
बाह्य क्रियाओं में उलझे तो, वह सच्चा पुरुषार्थ नहीं।।
कामबाण के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामिति स्वाहा।

विषय लोलुपी भोगों की, ज्वाला में जल-जल दुख पाता।
मृग-तृष्णा के पीछे पागल, नर्क-निगोदादिक जाता।।
क्षुधा व्याधि के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानस्वरूप आत्मा का, जिसको श्रद्धान नहीं होता।
भव-वन में ही भटका करता, है निर्वाण नहीं होता।।
मोह-तिमिर के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म फलों का वेदन करके, सुखी दुखी जो होता है।
अष्ट प्रकार कर्म का बन्धन, सदा उसी को होता है।।
कर्म शत्रु के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो बन्धन से विरक्त होकर, बन्धन का अभाव करता।
प्रज्ञाछैनी ले बन्धन को, पृथक् शीघ्र निज से करता।।

महामोक्ष-फल प्राप्ति हेतु, मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पर मेरा क्या कर सकता है, मैं पर का क्या कर सकता।
यह निश्चय करनेवाला ही, भव-अटवी के दुख हरता।।
पद अनर्घ्य की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

चार दान दो जगत में, जो चाहो कल्याण।
औषधि भोजन अभय अरु, सद् शास्त्रों का ज्ञान।।

(ताटंक)

पुण्य पर्व अक्षय तृतीया का, हमें दे रहा है यह ज्ञान।
दान धर्म की महिमा अनुपम, श्रेष्ठ दान दे बनो महान।।
दान धर्म की गौरव गाथा, का प्रतीक है यह त्यौहार।
दान धर्म का शुभ प्रेरक है, सदा दान की जय-जयकार।।
आदिनाथ ने अर्ध वर्ष तक, किये तपस्या-मय उपवास।
मिली न विधि फिर अन्तराय, होते-होते बीते छह मास।।
मुनि आहारदान देने की, विधि थी नहीं किसी को ज्ञात।
मौन साधना में तन्मय हो, प्रभु विहार करते प्रख्यात।।
नगर हस्तिनापुर के अधिपति, सोम और श्रेयांस सुभ्रात।
ऋषभदेव के दर्शन कर, कृतकृत्य हुए पुलकित अभिजात।।
श्रेयांस को पूर्वजन्म का, स्मरण हुआ तत्क्षण विधिकार।
विधिपूर्वक पड़गाहा प्रभु को, दिया इक्षुरस का आहार।।
पंचाश्चर्य हुए प्रांगण में, हुआ गगन में जय-जयकार।
धन्य-धन्य श्रेयांस दान का, तीर्थ चलाया मंगलकार।।

दान-पुण्य की यह परम्परा, हुई जगत में शुभ प्रारम्भ।
हो निष्काम भावना सुन्दर, मन में लेश न हो कुछ दम्भ।।
चार भेद हैं दान धर्म के, औषधि-शास्त्र-अभय-आहार।
हम सुपात्र को योग्य दान दे, बनें जगत में परम उदार।।
धन वैभव तो नाशवान हैं, अतः करें जी भर कर दान।
इस जीवन में दान कार्य कर, करें स्वयं अपना कल्याण।।
अक्षय तृतीया के महत्त्व को, यदि निज में प्रकटायेंगे।
निश्चित ऐसा दिन आयेगा, हम अक्षय-फल पायेंगे।।
हे प्रभु आदिनाथ! मंगलमय, हम को भी ऐसा वर दो।
सम्यग्ज्ञान महान सूर्य का, अन्तर में प्रकाश कर दो।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

अक्षय तृतीया पर्व की, महिमा अपरम्पार।
त्याग धर्म जो साधते, हो जाते भव पार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

****

दर्शन-स्तुति

निरखत जिनचन्द्र-वदन स्व-पद सुरुचि आई।
प्रकटी निज आन की पिछान ज्ञान भान की।
कला उद्योत होत काम-जामनी पलाई।।निरखत.।।
शाश्वत आनन्द स्वाद पायो विनस्यो विषाद।
आन में अनिष्ट-इष्ट कल्पना नसाई।। निरखत.।।
साधी निज साध की समाधि मोह-व्याधि की।
उपाधि को विराधि कैं आराधना सुहाई।।निरखत.।।
धन दिन छिन आज सुगुनि चिन्ते जिनराज अबै।
सुधरो सब काज 'दौल' अचल रिद्धि पाई।।निरखत.।।

-- पं. दौलतराम

रक्षाबन्धन पर्व पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

(श्री अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनिवर पूजन)

(छन्द–ताटंक)

जय अकम्पनाचार्य आदि सात सौ साधु मुनिव्रत धारी।
बलि ने कर नरमेघ यज्ञ उपसर्ग किया भीषण भारी।।
जय जय विष्णुकुमार महामुनि ऋद्धि विक्रिया के धारी।
किया शीघ्र उपसर्ग निवारण वात्सल्य करुणाधारी।।

रक्षा–बन्धन पर्व मना मुनियों का जय–जयकार हुआ।
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन घर–घर मंगलाचार हुआ।।
श्री मुनि चरणकमल में वन्दूँ पाऊँ प्रभु सम्यग्दर्शन।
भक्ति भाव से पूजन करके निज स्वरूप में रहूँ मगन।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः,
ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जन्म–मरण के नाश हेतु प्रासुक जल करता हूँ अर्पण।
राग–द्वेष परिणति अभाव कर निज परिणति में करूँ रमण।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव सन्ताप मिटाने को मैं चन्दन करता हूँ अर्पण।
देह भोग भव से विरक्त हो निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षयपद अखंड पाने को अक्षत धवल करूँ अर्पण।
हिंसादिक पापों को क्षय कर निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कामबाण विध्वंस हेतु मैं सहज पुष्प करता अर्पण।
क्रोधादिक चारों कषाय हर निज परिणति में करूँ रमण।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधारोग के नाश हेतु नैवेद्य सरस करता अर्पण।
विषयभोग की आकांक्षा हर निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चिर मिथ्यात्व तिमिर हरने को दीपज्योति करता अर्पण।
सम्यग्दर्शन का प्रकाश पा निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट कर्म के नाश हेतु यह धूप सुगन्धित है अर्पण।
सम्यग्ज्ञान हृदय प्रकटाऊँ निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ति प्राप्ति हित उत्तम फल चरणों में करता हूँ अर्पण।
मैं सम्यक्चारित्र प्राप्त कर निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शाश्वत पद अनर्घ्य पाने को उत्तम अर्घ्य करूँ अर्पण।
रत्नत्रय की तरणी खेऊँ निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

वात्सल्य के अंग की, महिमा अपरम्पार।
विष्णुकुमार मुनीन्द्र की, गूँजी जय-जयकार।।

(तांटक)

उज्जयनी नगरी के नृप श्रीवर्मा के मंत्री थे चार।
बलि, प्रहलाद, नमुचि वृहस्पति चारों अभिमानी सविकार।।
जब अकम्पनाचार्य संघ मुनियों का नगरी में आया।
सात शतक मुनि के दर्शन कर नृप श्रीवर्मा हर्षाया।।
सब मुनि मौन ध्यान में रत, लख बलि आदिक ने निंदा की।
कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नहीं तत्त्व की चर्चा की।।
किन्तु लौटते समय मार्ग में, श्रुतसागर मुनि दिखलाये।
वाद-विवाद किया श्री मुनि से, हारे, जीत नहीं पाये।।
अपमानित होकर निशि में मुनि पर प्रहार करने आये।
खड्ग उठाते ही कीलित हो गये हृदय में पछताये।।
प्रातः होते ही राजा ने आकर मुनि को किया नमन।
देश-निकाला दिया मंत्रियों को तब राजा ने तत्क्षण।।
चारों मंत्री अपमानित हो पहुँचे नगर हस्तिनापुर।
राजा पद्मराय को अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर।।
मुँह-माँगा वरदान नृपति ने बलि को दिया तभी तत्पर।
जब चाहूँगा तब ले लूँगा, बलि ने कहा नम्र होकर।।
फिर अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों सहित नगर आये।
बलि के मन में मुनियों की हत्या के भाव उदय आये।।
कुटिल चाल चल बलि ने नृप से आठ दिवस का राज्य लिया।
भीषण अग्नि जलाई चारों ओर द्वेष से कार्य किया।।
हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्व ध्यान में लीन हुए।
नश्वर देह भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए।।
यह नरमेघ यज्ञ रच बलि ने किया दान का ढोंग विचित्र।
दान किमिच्छक देता था, पर मन था अति हिंसक अपवित्र।।

पद्मराय नृप के लघु भाई, विष्णुकुमार महा मुनिवर।
वात्सल्य का भाव जगा, मुनियों पर संकट का सुनकर।।
किया गमन आकाश मार्ग से, शीघ्र हस्तिनापुर आये।
ऋद्धि विक्रिया द्वारा याचक, वामन रूप बना लाये।।
बलि से माँगी तीन पाँव भू, बलिराजा हँसकर बोला।
जितनी चाहो उतनी ले लो, वामन मूर्ख बड़ा भोला।।
हँसकर मुनि ने एक पाँव में ही सारी पृथ्वी नापी।
पग द्वितीय में मानुषोत्तर पर्वत की सीमा नापी।।
ठौर न मिला तीसरे पग को, बलि के मस्तक पर रक्खा।
क्षमा-क्षमा कह कर बलि ने, मुनिचरणों में मस्तक रक्खा।।
शीतल ज्वाला हुई अग्नि की श्री मुनियों की रक्षा की।
जय-जयकार धर्म का गूँजा, वात्सल्य की शिक्षा दी।।
नवधा भक्तिपूर्वक सबने मुनियों को आहार दिया।
बलि आदिक का हुआ हृदय परिवर्तन जय-जयकार किया।।
रक्षासूत्र बाँधकर तब जन-जन ने मंगलाचार किये।
साधर्मी वात्सल्य भाव से, आपस में व्यवहार किये।।
समकित के वात्सल्य अंग की महिमा प्रकटी इस जग में।
रक्षा-बन्धन पर्व इसी दिन से प्रारम्भ हुआ जग में।।
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा दिन था रक्षासूत्र बँधा कर में।
वात्सल्य की प्रभावना का आया अवसर घर-घर में।।
प्रायश्चित्त ले विष्णुकुमार ने पुनः व्रत ले तप ग्रहण किया।
अष्ट कर्म बन्धन को हरकर इस भव से ही मोक्ष लिया।।
सब मुनियों ने भी अपने-अपने परिणामों के अनुसार।
स्वर्ग-मोक्ष पद पाया जग में हुई धर्म की जय-जयकार।।
धर्म भावना रहे हृदय में, पापों के प्रतिकूल चलूँ।
रहे शुद्ध आचरण सदा ही धर्म-मार्ग अनुकूल चलूँ।।

आत्मज्ञान रुचि जगे हृदय में, निज-पर को मैं पहिचानूँ।
समकित के आठों अंगों की, पावन महिमा को जानूँ।।
तभी सार्थक जीवन होगा सार्थक होगी यह नर देह।
अन्तर घट में जब बरसेगा पावन परम ज्ञान रस मेह।।
पर से मोह नहीं होगा, होगा निज आतम से अति नेह।
तब पायेंगे अखंड अविनाशी निजसुखमय शिवगेह।।
रक्षा-बंधन पर्व धर्म का, रक्षा का त्यौहार महान।
रक्षा-बंधन पर्व ज्ञान का रक्षा का त्यौहार प्रधान।।
रक्षा-बंधन पर्व चरित का, रक्षा का त्यौहार महान।
रक्षा-बंधन पर्व आत्म का, रक्षा का त्यौहार प्रधान।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सात शतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

रक्षा बन्धन पर्व पर, श्री मुनि पद उर धार।
मन-वच-तन जो पूजते, पाते सौख्य अपार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अंजुलि-जल सम जवानी क्षीण होती जा रही।
प्रत्येक पल जर्जर जरा नजदीक आती जा रही।।
काल की काली घटा प्रत्येक क्षण मँडरा रही।
किन्तु पल-पल विषय तृष्णा तरुण होती जा रही।।

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

वीरशासन जयन्ती पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

(ताटंक)

वर्धमान अतिवीर वीर प्रभु सन्मति महावीर स्वामी।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर अन्तिम तीर्थंकर नामी ।।
श्री अरिहंतदेव मंगलमय स्व-पर प्रकाशक गुणधामी।
सकल लोक के ज्ञाता-दृष्टा महापूज्य अन्तर्यामी ।।
महावीर शासन का पहला दिन श्रावण कृष्णा एकम।
शासन वीर जयन्ती आती है प्रतिवर्ष सुपावनतम ।।
विपुलाचल पर्वत पर प्रभु के समवशरण में मंगलकार।
खिरी दिव्यध्वनि शासन-वीर जयन्ती-पर्व हुआ साकार।।
प्रभु चरणाम्बुज पूजन करने का आया उर में शुभ भाव।
सम्यग्ज्ञान प्रकाश मुझे दो, राग-द्वेष का करूँ अभाव।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

भाग्यहीन नर रत्न स्वर्ण को जैसे प्राप्त नहीं करता।
ध्यानहीन मुनि निज आतम का त्यों अनुभवन नहीं करता।।
शासन वीर जयन्ती पर जल चढ़ा वीर का ध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

विविध कल्पना उठती मन में, वे विकल्प कहलाते हैं।
बाह्य पदार्थों में ममत्व मन के संकल्प रुलाते हैं।।
शासन वीर जयन्ती पर चंदन अर्पित कर ध्यान करूँ।।खिरी.।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अंतरंग बहिरंग परिग्रह त्यागूँ मैं निर्ग्रन्थ बनूँ।
जीवन मरण, मित्र अरि सुख दुख लाभ हानि में साम्य बनूँ।।
शासन वीर जयन्ती पर, कर अक्षत भेंट स्वध्यान करूँ।।खिरी.।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध सिद्ध ज्ञानादि गुणों से मैं समृद्ध हूँ देह प्रमाण।
नित्य असंख्यप्रदेशी निर्मल हूँ अमूर्तिक महिमावान।।
शासन वीर जयन्ती पर, कर भेंट पुष्प निज ध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परम तेज हूँ परम ज्ञान हूँ परम पूर्ण हूँ ब्रह्म स्वरूप।
निरालम्ब हूँ निर्विकार हूँ निश्चय से मैं परम अनूप।।
शासन वीर जयन्ती पर नैवेद्य चढ़ा निज ध्यान करूँ।।खिरी.।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्व-पर प्रकाशक केवलज्ञानमयी, निजमूर्ति अमूर्ति महान।
चिदानन्द टंकोत्कीर्ण हूँ ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता भगवान।।
शासन वीर जयन्ती पर मैं दीप चढ़ा निज ध्यान करूँ।।खिरी.।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक देहादिक नोकर्म विहीन।
भाव कर्म रागादिक से मैं पृथक् आत्मा ज्ञान प्रवीण।।
शासन वीर जयन्ती पर मैं धूप चढ़ा निज ध्यान करूँ।।खिरी.।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रहित कर्ममल शुद्ध ज्ञानमय, परममोक्ष है मेरा धाम।
भेदज्ञान की महाशक्ति से पाऊँगा अनन्त विश्राम।।
शासन वीर जयन्ती पर मैं सुफल चढ़ा निज ध्यान करूँ।।खिरी.।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

मात्र वासनाजन्य कल्पना है परद्रव्यों में सुखबुद्धि।
इन्द्रियजन्य सुखों के पीछे पाई किंचित् नहीं विशुद्धि।।
शासन वीर जयन्ती पर मैं अर्घ्य चढ़ा निज ध्यान करूँ।।खिरी.।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

विपुलाचल के गगन को, वन्दूँ बारम्बार।
सन्मति प्रभु की दिव्यध्वनि, जहाँ हुई साकार।।१।।

(ताटंक)

महावीर प्रभु दीक्षा लेकर मौन हुए तप संयम धार।
परिषह उपसर्गों को जय कर देश-देश में किया विहार।।
द्वादश वर्ष तपस्या करके ऋजुकूला सरितट आये।
क्षपकश्रेणी चढ़ शुक्ल ध्यान से कर्म घातिया विनसाये।।
स्व-पर प्रकाशक परम ज्योतिमय प्रभु को केवलज्ञान हुआ।
इन्द्रादिक को समवशरण रच मन में हर्ष महान हुआ।।
बारह सभा जुड़ी अति सुन्दर, सबके मन का कमल खिला।
जनमानस को प्रभु की दिव्यध्वनि का, किन्तु न लाभ मिला।।
छ्यासठ दिन तक रहे, मौन प्रभु दिव्यध्वनि का मिला न योग।
अपने आप स्वयं मिलता है, निमित्त-नैमित्तिक संयोग।।
राजगृही के विपुलाचल पर प्रभु का समवशरण आया।
अवधिज्ञान से जान इन्द्र ने गणधर का अभाव पाया।।
बड़ी युक्ति से इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण को वह लाया।
गौतम ने दीक्षा लेते ही ऋषि गणधर का पद पाया।।
तत्क्षण खिरी दिव्यध्वनि प्रभु की द्वादशांगमय कल्याणी।
रच डाली अन्तरर्मुहूर्त में, गौतम ने श्री जिनवाणी।।
सात शतक लघु और महाभाषा अष्टादश विविध प्रकार।
सब जीवों ने सुनी दिव्यध्वनि अपने उपादान अनुसार।।
विपुलाचल पर समवशरण का हुआ आज के दिन विस्तार।
प्रभु की पावन वाणी सुनकर गूँजा नभ में जय-जयकार।।

जन–जन में नव जागृति जागी मिटा जगत का हाहाकार।
जियो और जीने दो का जीवन संदेश हुआ साकार।।
धर्म अहिंसा सत्य और अस्तेय मनुज जीवन का सार।
ब्रह्मचर्य अपरिग्रह से ही होगा जीव मात्र से प्यार।।
घृणा पाप से करो सदा ही किन्तु नहीं पापी से द्वेष।
जीव मात्र को निज–सम समझो यही वीर का था उपदेश।।
इन्द्रभूति गौतम ने गणधर बनकर गूँथी जिनवाणी।
इसके द्वारा परमात्मा बन सकता कोई भी प्राणी।।
मेघ गर्जना करती श्री जिनवाणी का वह चला प्रवाह।
पाप ताप संताप नष्ट हो गये मोक्ष की जागी चाह।।
प्रथमं, करणं, चरणं, द्रव्यं ये अनुयोग बताये चार।
निश्चय नय सत्यार्थ बताया, असत्यार्थ सारा व्यवहार।।
तीन लोक षट् द्रव्यमयी है सात तत्त्व की श्रद्धा सार।
नव पदार्थ छह लेश्या जानो, पंच महाव्रत उत्तम धार।।
समिति गुप्ति चारित्र पालकर तप संयम धारो अविकार।
परम शुद्ध निज आत्मतत्त्व, आश्रय से हो जाओ भव पार।।
उस वाणी को मेरा वंदन उसकी महिमा अपरम्पार।
सदा वीर शासन की पावन, परम जयन्ती जय–जयकार।।
वर्धमान अतिवीर वीर की पूजन का है हर्ष अपार।
काललब्धि प्रभु मेरी आई, शेष रहा थोड़ा संसार।।

ॐ ह्रीं श्रीं सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दिव्यध्वनि प्रभु वीर की देती सौख्य अपार।
आत्मज्ञान की शक्ति से, खुले मोक्ष का द्वार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

क्षमावाणी पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

(स्थापना)

(छन्द-ताटंक)

क्षमावाणी का पर्व सुपावन देता जीवों को संदेश।
उत्तम क्षमाधर्म को धारो जो अतिभव्य जीव का वेश।।
मोह नींद से जागो चेतन अब त्यागो मिथ्याभिनिवेश।
द्रव्यदृष्टि बन निजस्वभाव से चलो शीघ्र सिद्धों के देश।।
क्षमा, मार्दव, आर्जव, संयम, शौच, सत्य को अपनाओ।
त्याग, तपस्या, आकिंचन, व्रत ब्रह्मचर्यमय हो जाओ।।
एक धर्म का सार यही है समतामय ही बन जाओ।
सब जीवों पर क्षमाभाव रख स्वयं क्षमामय हो जाओ।।
क्षमा धर्म की महिमा अनुपम क्षमा धर्म ही जग में सार।
तीन लोक में गूँज रही है क्षमावाणी की जय-जयकार।।
ज्ञाता-द्रष्टा हो समग्र को देखो उत्तम निर्मल भेष।
रागों से विरक्त हो जाओ रहे न दुख का किंचित् लेश।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जीवादिक नव तत्त्वों का श्रद्धान यही सम्यक्त्व प्रथम।
इनका ज्ञान ज्ञान है, रागादिक का त्याग चरित्र परम।।
'संते पुव्वणिबद्धं जाणदि'[१] वह अबंध का ज्ञाता है।
सम्यग्दृष्टि जीव आस्रव बंधरहित हो जाता है।।
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म-मरण क्षय कर मानूँ।
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वभाव को पहचानूँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्त भयों से रहित निशंकित निजस्वभाव में सम्यग्दृष्टि।
मिथ्यात्वादिक भावों में जो रहता वह है मिथ्यादृष्टि।।

---

१. समयसार, गाथा १६६ - सत्ता में रहे हुए पूर्वबद्ध कर्मों को जानता है।

तीन मूढ़ता छह अनायतन तीन शल्य का नाम नहीं।
आठ दोष समकित के अरु आठों मद का कुछ काम नहीं।।
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म मरण क्षय कर मानूँ।
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वरूप को पहचानूँ।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अशुभ कर्म जाना कुशील शुभ को सुशील मानता रे।
जो संसार बंध का कारण वह कुशील जानता न रे।।
कर्म फलों के प्रति जिनकी आकांक्षा उर में रही नहीं।
वह निकांक्षित सम्यग्दृष्टी भव की वांछा रही नहीं।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

राग शुभाशुभ दोनों ही संसार भ्रमण का कारण है।
शुद्धभाव ही एकमात्र परमार्थ भवोदधि तारण है।।
वस्तु स्वभाव धर्म के प्रति जो लेश जुगुप्सा करे नहीं।
निर्विचिकित्सक जीव वही है निश्चय सम्यग्दृष्टि वही।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध आत्मा जो ध्याता वह पूर्ण शुद्धता पाता है।
जो अशुद्ध को ध्याता है वह ही अशुद्धता पाता है।।
पर भावों में जो न मूढ़ है दृष्टि यथार्थ सदा जिसकी।
वह अमूढ़दृष्टि का धारी सम्यग्दृष्टि सदा उसकी।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

राग-द्वेष मोहादिक आस्रव ज्ञानी को होते न कभी।
ज्ञाता-द्रष्टा को ही होते उत्तम संवर भाव सभी।।
शुद्धातम की भक्ति सहित जो पर भावों से नहीं जुड़ा।
उपगूहन का अधिकारी है सम्यग्दृष्टि महान बड़ा।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म बन्ध के चारों कारण मिथ्या अविरति योग कषाय।
चेतयिता इनका छेदन कर, करता है निर्वाण उपाय।।
जो उन्मार्ग छोड़कर निज को निज में सुस्थापित करता।
स्थितिकरण युक्त होता वह सम्यग्दृष्टी स्वहित करता।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य-पापमय सभी शुभाशुभ योगों से रहता वह दूर।
सर्व संग से रहित हुआ वह दर्शन ज्ञानमयी सुख पूर।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरितधारी के प्रति गौ-वत्सल भाव।
वात्सल्य का धारी सम्यग्दृष्टि मिटाता पूर्ण विभाव।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय मोक्षफलप्राप्तयेफलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानविहीन कभी भी पलभर ज्ञानस्वरूप नहीं होता।
बिना ज्ञान के ग्रहण किए कर्मों से मुक्त नहीं होता।।
विद्यारूपी रथ पर चढ़ जो ज्ञानरूप रथ चलवाता।
वह जिन-शासन की प्रभावना करता शिवपथ दर्शाता।।उत्तम.।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

उत्तम क्षमा स्वधर्म को, वन्दन करूँ त्रिकाल।
नाश दोष पच्चीस कर, काटूँ भव जंजाल।।

(ताटंक)

सोलहकारण पुष्पांजलि दशलक्षण रत्नत्रय व्रत पूर्ण।
इनके सम्यक् पालन से हो जाते हैं वसुकर्म विचूर्ण।।
भाद्र मास में सोलहकारण तीस दिवस तक होते हैं।
शुक्ल पक्ष में दशलक्षण पंचम से दस दिन होते हैं।।
पुष्पांजलि दिन पाँच पंचमी से नवमी तक होते हैं।
पावन रत्नत्रयव्रत अन्तिम तीन दिवस के होते हैं।।

आश्विन कृष्णा एकम् उत्सव क्षमावाणी का होता है।
उत्तमक्षमा धार उर श्रावक मोक्षमार्ग को जोता है।।

भाद्र मास अरु माघ मास अरु चैत्र मास में आते हैं।
तीन बार आ पर्वराज जिनवर संदेश सुनाते हैं।।

'जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं'[1] यह तो है व्यवहार कथन।
है अबद्ध अस्पृष्ट कर्म से निश्चय नय का यही कथन।।

जीव-देह को एक बताना यह है नय व्यवहार अरे।
जीव देह तो पृथक्-पृथक् हैं निश्चय नय कह रहा अरे।।

निश्चय नय का विषय छोड़ व्यवहार माहिं करते वर्तन।
उनको मोक्ष नहीं हो सकता और न ही सम्यग्दर्शन।।

'दोण्हवि णयाण भणियं जाणई'[2] जो पक्षातिक्रांत होता।
चित्स्वरूप का अनुभव करता सकलकर्म मल को खोता।।

ज्ञानी ज्ञानस्वरूप छोड़कर जब अज्ञान रूप होता।
तब अज्ञानी कहलाता है पुद्गल बन्ध रूप होता।।

'जह विस भुव भुज्जंतो वेज्जो'[3] मरण नहीं पा सकता है।
ज्ञानी पुद्गल कर्म उदय को भोगे बन्ध न करता है।।

मुनि अथवा गृहस्थ कोई भी मोक्षमार्ग है कभी नहीं।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित ही मोक्षमार्ग है सही-सही।।

मुनि अथवा गृहस्थ के लिंगों में जो ममता करता है।
मोक्षमार्ग तो बहुत दूर भव-अटवी में ही भ्रमता है।।

---

१. समयसार, गाथा १४१ - जीव कर्म से बँधा है तथा स्पर्शित है।

२. समयसार, गाथा १४३ - दोनों ही नयों के कथन मात्र को जानता है।

३. समयसार, गाथा १९४ - जिस प्रकार वैद्य पुरुष विष को भोगता, खाता हुआ भी।

प्रतिक्रमण प्रतिसरण आदि आठों प्रकार के विषकुम्भ।
इनसे जो विपरीत वही हैं मोक्षमार्ग के अमृतकुम्भ।।
पुण्य भाव की भी तो इच्छा ज्ञानी कभी नहीं करता।
परभावों से अरति सदा है निज का ही कर्ता धर्ता।।
कोई कर्म किसी जीव को है सुख-दुख दाता नहीं समर्थ।
जीव स्वयं ही अपने सुख-दुख का निर्माता स्वयं समर्थ।।
क्रोध, मान, माया, लोभादिक नहीं जीव के किंचित् मात्र।
रूप, गंध, रस, स्पर्श शब्द भी नहीं जीव के किंचित् मात्र।।
देह संहनन संस्थान भी नहीं जीव के किंचित् मात्र।
राग-द्वेष-मोहादि भाव भी नहीं जीव के किंचित् मात्र।।
सर्वभाव से भिन्न त्रिकाली पूर्ण ज्ञानमय ज्ञायक मात्र।
नित्य, ध्रौव्य, चिद्रूप, निरंजन, दर्शनज्ञानमयी चिन्मात्र।।
वाक् जाल में जो उलझे वह कभी सुलझ ना पायेंगे।
निज अनुभव रसपान किये बिन नहीं मोक्ष में जायेंगे।।
अनुभव ही तो शिवसमुद्र है अनुभव शाश्वत सुख का स्रोत।
अनुभव परमसत्य शिव सुन्दर अनुभव शिव से ओतप्रोत।।
निज स्वभाव के सन्मुख हो जा, पर से दृष्टि हटा भगवान।
पूर्ण सिद्धपर्याय प्रकट कर आज अभी पा ले निर्वाण।।
ज्ञान-चेतना सिंधु स्वयं तू स्वयं अनन्तगुणों का भूप।
त्रिभुवनपति सर्वज्ञ ज्योतिमय चिंतामणि चेतन चिद्रूप।।
यह उपदेश श्रवण कर हे प्रभु! मैत्री भाव हृदय धारूँ।
जो विपरीत वृत्तिवाले हैं उन पर मैं समता धारूँ।।
धीरे-धीरे पाप-पुण्य शुभ-अशुभ आस्रव संहारूँ।
भव-तन भोगों से विरक्त हो निजस्वभाव को स्वीकारूँ।।
दशधर्मों को पढ़ सुनकर अन्तर में आये परिवर्तन।
व्रत उपवास तपादिक द्वारा करूँ सदा ही निज चिंतन।।

राग-द्वेष अभिमान पाप हर काम क्रोध को चूर करूँ।
जो संकल्प-विकल्प उठे प्रभु उनको क्षण-क्षण दूर करूँ।।
अणु भर भी यदि राग रहेगा नहीं मोक्ष पद पाऊँगा।
तीन लोक में काल अनंता राग लिये भरमाऊँगा।।
राग शुभाशुभ के विनाश से वीतराग बन जाऊँगा।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा स्वयं सिद्ध पद पाऊँगा।।
पर्यूषण में दूषण त्यागूँ बाह्य क्रिया में रमे न मन।
शिव पथ का अनुसरण करूँ मैं बन के नाथ सिद्ध नन्दन।।
जीव मात्र पर क्षमा भाव रख मैं व्यवहार धर्म पालूँ।
निज शुद्धातम पर करुणा कर निश्चय धर्म सहज पालूँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

मोक्ष-मार्ग दर्शा रहा, क्षमावाणी का पर्व।
क्षमाभाव धारण करो, राग-द्वेष हर सर्व।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

भजन

वन्दों अद्भुत चन्द्रवीर जिन, भविचकोर चित हारी।
चिदानन्द अंबुधि अब उछर्यो भव तप नाशन हारी।।टेक।।
सिद्धारथ नृप कुल नभ मण्डल, खण्डन भ्रम-तम भारी।
परमानन्द जलधि विस्तारन, पाप ताप छय कारी।।१।।
उदित निरन्तर त्रिभुवन अन्तर, कीरत किरन पसारी।
दोष मलंक कलंक अखकि, मोह राहु निरवारी।।२।।
कर्मावरण पयोध अरोधित, बोधित शिव मगचारी।
गणधरादि मुनि उड्गान सेवत, नित पूनम तिथि धारी।।३।।
अखिल अलोकाकाश उलंघन, जासु ज्ञान उजयारी।
'दौलत' तनसा कुमुदिनिमोदन, ज्यों चरम जगतारी।।४।।

दीपमालिका पर्व पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

(वीरछन्द)

महावीर निर्वाण दिवस पर, महावीर पूजन कर लूँ।
वर्द्धमान अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ।।
पावापुर से मोक्ष गये प्रभु, जिनवर पद अर्चन कर लूँ।
जगमग जगमग दिव्यज्योति से, धन्य मनुजजीवन कर लूँ।।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, शुद्धभाव मन में भर लूँ।
दीपमालिका पर्व मनाऊँ, भव-भव के बन्धन हर लूँ।।
ज्ञान-सूर्य का चिर-प्रकाश ले, रत्नत्रय पथ पर बढ़ लूँ।
परभावों का राग तोड़कर, निजस्वभाव में मैं अड़ लूँ।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त-श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चिदानन्द चैतन्य अनाकुल, निजस्वभाव मय जल भर लूँ।
जन्म-मरण का चक्र मिटाऊँ, भव-भव की पीड़ा हर लूँ।।
दीपावलि के पुण्य दिवस पर, वर्द्धमान पूजन कर लूँ।
महावीर अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, निज चन्दन उर में धर लूँ।
चारों गति का ताप मिटाऊँ, निज पंचमगति आदर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अजर अमर अक्षय अविकल, अनुपम अक्षतपद उर धर लूँ।
भवसागर तर मुक्ति वधू से, मैं पावन परिणय कर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श रहित, निज शुद्ध पुष्प मन में भर लूँ।
काम-बाण की व्यथा नाश कर, मैं निष्काम रूप धर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मशक्ति परिपूर्ण शुद्ध, नैवेद्य भाव उर में धर लूँ।
चिर-अतृप्ति का रोग नाशकर, सहज तृप्त निज पद वर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्ण ज्ञान कैवल्य प्राप्ति हित, ज्ञानदीप ज्योतित कर लूँ।
मिथ्या-भ्रम-तम-मोह नाशकर, निज सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्यभाव की धूप जलाकर, घाति-अघाति कर्म हर लूँ।
क्रोध-मान-माया-लोभादि, मोह-द्रोह सब क्षय कर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अमिट अनन्त अचल अविनश्वर, श्रेष्ठ मोक्षपद उर धर लूँ।
अष्ट स्वगुण से युक्त सिद्धगति, पा सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण अनन्त प्रकटाऊँ अपने, निज अनर्घ्य पद को वर लूँ।
शुद्धस्वभावी ज्ञान-प्रभावी, निज सौन्दर्य प्रकट कर लूँ।।दीपा.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

शुभ आषाढ़ शुक्ल षष्ठी को, पुष्पोत्तर तज प्रभु आये।
माता त्रिशला धन्य हो गई, सोलह सपने दरशाये।।
पन्द्रह मास रत्न बरसे, कुण्डलपुर में आनन्द हुआ।
वर्द्धमान के गर्भोत्सव पर, दूर शोक-दुख-द्वंद्व हुआ।।

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को, सारी जगती धन्य हुई।
नृप सिद्धार्थराज हर्षाये, कुण्डलपुरी अनन्य हुई।।
मेरु सुदर्शन पाण्डुक वन में, सुरपति ने कर प्रभु अभिषेक।
नृत्य वाद्य मंगल गीतों के, द्वारा किया हर्ष अतिरेक।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

मगसिर कृष्णा दशमी को, उर में छाया वैराग्य अपार।
लौकान्तिक देवों के द्वारा धन्य-धन्य प्रभु जय-जय कार।।
बाल ब्रह्मचारी गुणधारी, वीर प्रभु ने किया प्रयाण।
वन में जाकर दीक्षा धारी, निज में लीन हुए भगवान।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीतिस्वाहा।

द्वादश वर्ष तपस्या करके, पाया तुमने केवलज्ञान।
कर बैसाख शुक्ल दशमी को, त्रेसठ कर्म प्रकृति अवसान।।
सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को, युगपत् एक समय में जान।
वर्द्धमान सर्वज्ञ हुए प्रभु, वीतराग अरिहन्त महान।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, वर्धमान प्रभु मुक्त हुए।
सादि-अनन्त समाधि प्राप्त कर, मुक्ति-रमा से युक्त हुए।।
अन्तिम शुक्लध्यान के द्वारा, कर अघातिया का अवसान।
शेष प्रकृति पच्यासी को भी, क्षय करके पाया निर्वाण।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

महावीर ने पावापुर से, मोक्षलक्ष्मी पाई थी।
इन्द्र-सुरों ने हर्षित होकर, दीपावली मनाई थी।।
केवलज्ञान प्राप्त होने पर, तीस वर्ष तक किया विहार।
कोटि-कोटि जीवों का प्रभु ने, दे उपदेश किया उपकार।।
पावापुर उद्यान पधारे, योगनिरोध किया साकार।
गुणस्थान चौदह को तजकर, पहुँचे भवसमुद्र के पार।।
सिद्धशिला पर हुए विराजित, मिली मोक्षलक्ष्मी सुखकार।
जल-थल-नभ में देवों द्वारा, गूँज उठी प्रभु की जयकार।।
इन्द्रादिक सुर हर्षित आये, मन में धारे मोद अपार।
महामोक्ष कल्याण मनाया, अखिल विश्व को मंगलकार।।
अष्टादश गणराज्यों के, राजाओं ने जयगान किया।
नत-मस्तक होकर जन-जन ने, महावीर गुणगान किया।।
तन कपूरवत् उड़ा शेष नख, केश रहे इस भूतल पर।
मायामयी शरीर रचा, देवों ने क्षण भर के भीतर।।
अग्निकुमार सुरों ने झुक, मुकुटानल से तन भस्म किया।
सर्व उपस्थित जनसमूह, सुरगण ने पुण्य अपार लिया।।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या का, दिवस मनोहर सुखकर था।
उषाकाल का उजियारा कुछ, तम-मिश्रित अति मनहर था।।
रत्न-ज्योतियों का प्रकाश कर, देवों ने मंगल गाये।
रत्न-दीप की आवलियों से, पर्व दीपमाला लाये।।
सब ने शीश चढ़ाई भस्मी, पद्म सरोवर बना वहाँ।
वही भूमि है अनुपम सुन्दर, जल मन्दिर है बना वहाँ।।
प्रभु के ग्यारह गणधर में थे, प्रमुख श्री गौतम स्वामी।
क्षपकश्रेणि चढ़ शुक्लध्यान से हुए देव अन्तर्यामी।।

इसी दिवस गौतम स्वामी को, सन्ध्या केवलज्ञान हुआ।
केवलज्ञान लक्ष्मी पाई, पद सर्वज्ञ महान हुआ।।
देवों ने अति हर्षित होकर, रत्न-ज्योति का किया प्रकाश।
हुई दीपमाला द्विगुणित, आनन्द हुआ छाया उल्लास।।
प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर, हो जाता मन अति पावन।
परम पूज्य निर्वाणभूमि शुभ, पावापुर है मन-भावन।।
अखिल जगत में दीपावली, त्यौहार मनाया जाता है।
महावीर निर्वाण महोत्सव, धूम मचाता आता है।।
हे प्रभु! महावीर जिन स्वामी, गुण अनन्त के हो धामी।
भरतक्षेत्र के अन्तिम तीर्थंकर, जिनराज विश्वनामी।।
मेरी केवल एक विनय है, मोक्ष-लक्ष्मी मुझे मिले।
भौतिक लक्ष्मी के चक्कर में, मेरी श्रद्धा नहीं हिले।।
भव-भव जन्म-मरण के चक्कर, मैंने पाये हैं इतने।
जितने रजकण इस भूतल पर, पाये हैं प्रभु दुख उतने।।
अवसर आज अपूर्व मिला है, शरण आपकी पाई है।
भेदज्ञान की बात सुनी है, तो निज की सुधि आई है।।
अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा, जब तक मोक्ष नहीं पाऊँ।
दो आशीर्वाद हे स्वामी! नित्य नये मंगल गाऊँ।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दीपमालिका पर्व पर, महावीर उर धार।
भावसहित जो पूजते, पाते सौख्य अपार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

****

श्रुतपंचमी पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

स्याद्वादमय द्वादशांगयुत माँ जिनवाणी कल्याणी।
जो भी शरण हृदय से लेता हो जाता केवलज्ञानी।।
जय जय जय हितकारी शिवसुखकारी माता जय जय जय।
कृपा तुम्हारी से ही होता भेदज्ञान का सूर्य उदय।।
श्री धरसेनाचार्य कृपा से मिला परम जिनश्रुत का ज्ञान।
भूतबली मुनि पुष्पदन्त ने षट्खण्डागम रचा महान।।
अंकलेश्वर में ग्रंथराज यह पूर्ण हुआ था आज के दिन।
जिनवाणी लिपिबद्ध हुई थी पावन परम आज के दिन।।
ज्येष्ठशुक्ल पंचमी दिवस जिनश्रुत का जय-जयकार हुआ।
श्रुतपंचमी पर्व पर श्री जिनवाणी का अवतार हुआ।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

शुद्ध स्वानुभव जल धारा से यह जीवन पवित्र कर लूँ।
साम्यभाव पीयूष पान कर जन्म-जरामय दुख हर लूँ।।
श्रुतपंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वंदन कर लूँ।
षट्खण्डागम धवल जयधवल महाधवल पूजन कर लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव का उत्तम पावन चन्दन चर्चित कर लूँ।
भव दावानल के ज्वालामय अघसंताप ताप हर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के परमोत्तम अक्षत शुद्ध हृदय धर लूँ।
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति से अनुपम अक्षय पद वर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के पुष्पों से निज अन्तर सुरभित कर लूँ।
महाशील गुण के प्रताप से मैं कंदर्प-दर्प हर लूँ।।
श्रुत पंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वंदन कर लूँ।
षट्खण्डागम धवल जयधवल महाधवल पूजन कर लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के अति उत्तम प्रभु नैवेद्य प्राप्त कर लूँ।
अमल अतीन्द्रिय निजस्वभाव से दुखमय क्षुधाव्याधि हर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धस्वानुभव के प्रकाशमय दीप प्रज्वलित मैं कर लूँ।
मोहतिमिर अज्ञान नाश कर निज कैवल्य ज्योति वर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अज्ञानांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव गन्ध सुरभिमय ध्यान धूप उर में भर लूँ।
संवर सहित निर्जरा द्वारा मैं वसु कर्म नष्ट कर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव का फल पाऊँ मैं लोकाग्र शिखर वर लूँ।
अजर अमर अविकल अविनाशी पदनिर्वाण प्राप्त कर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय महा मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव दिव्य अर्घ्य ले रत्नत्रय सुपूर्ण कर लूँ।
भव-समुद्र को पार करूँ प्रभु निज अनर्घ्य पद मैं वर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(ताटंक)

श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।
गूँजा जय-जयकार जगत में जिनश्रुत के अवतार का।।टेक।।
ऋषभदेव की दिव्यध्वनि का लाभ पूर्ण मिलता रहा।
महावीर तक जिनवाणी का विमल वृक्ष खिलता रहा।।

हुए केवली अरु श्रुतकेवलि ज्ञान अमर फलता रहा।
फिर आचार्यों के द्वारा यह ज्ञानदीप जलता रहा।।
भव्यों में अनुराग जगाता मुक्तिवधू के प्यार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।१।।
गुरु-परम्परा से जिनवाणी निर्झर-सी झरती रही।
मुमुक्षुओं को परम मोक्ष का पथ प्रशस्त करती रही।।
किन्तु काल की घड़ी मनुज की स्मरणशक्ति हरती रही।
श्री धरसेनाचार्य हृदय में करुण टीस भरती रही।।
द्वादशांग का लोप हुआ तो क्या होगा संसार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।२।।
शिष्य भूतबलि पुष्पदन्त की हुई परीक्षा ज्ञान की।
जिनवाणी लिपिबद्ध हेतु श्रुत-विद्या विमल प्रदान की।।
ताड़ पत्र पर हुई अवतरित वाणी जनकल्याण की।
षट्खण्डागम महाग्रन्थ करणानुयोग जय ज्ञान की।।
ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी दिवस था सुर-नर मंगलाचार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।३।।
धन्य भूतबली पुष्पदन्त जय श्री धरसेनाचार्य की।
लिपि परम्परा स्थापित करके नई क्रांति साकार की।।
देवों ने पुष्पों की वर्षा नभ से अगणित बार की।
धन्य-धन्य जिनवाणी माता निज-पर भेद विचार की।।
ऋणी रहेगा विश्व तुम्हारे निश्चय का व्यवहार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।४।।
धवला टीका वीरसेन कृत बहत्तर हजार श्लोक।
जय धवला जिनसेन वीरकृत उत्तम साठ हजार श्लोक।।
महाधवल है देवसेन कृत है चालीस हजार श्लोक।
विजयधवल अरु अतिशय धवल नहीं उपलब्ध एक श्लोक।।

षट्खण्डागम टीकाएँ पढ़ मन होता भव पार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।५।।
फिर तो ग्रन्थ हजारों लिक्खे ऋषि-मुनियों ने ज्ञानप्रधान।
चारों ही अनुयोग रचे जीवों पर करके करुणा दान।।
पुण्य कथा प्रथमानुयोग द्रव्यानुयोग है तत्त्व प्रधान।
एक्सरे करणानुयोग चरणानुयोग कैमरा महान।।
यह परिणाम नापता है वह बाह्य चरित्र विचार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।६।।
जिनवाणी की भक्ति करें हम जिनश्रुत की महिमा गायें।
सम्यग्दर्शन का वैभव ले भेद-ज्ञान निधि को पायें।।
रत्नत्रय का अवलम्बन लें निज स्वरूप में रम जायें।
मोक्षमार्ग पर चलें निरन्तर फिर न जगत में भरमायें।।
धन्य-धन्य अवसर आया है अब निज के उद्धार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।७।।
गूँजा जय-जय नाद जगत में जिनश्रुत जय-जयकार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खण्डागमाय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

श्रुतपंचमी सुपर्व पर, करो तत्त्व का ज्ञान।
आत्मतत्त्व का ध्यान कर, पाओ पद निर्वाण।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

*** स्व-पर के भिन्नत्व का अबोध, पर के प्रति अहं एवं ममता उत्पन्न करता है।**

श्री निर्वाणक्षेत्र पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(सोरठा)

परम पूज्य चौबीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये।
सिद्धभूमि निश-दीस, मन-वच-तन पूजा करौं।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौष्ट्।
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम सन्निहितानि भवत् भवत् वषट्।

(गीता)

शुचि क्षीर-दधि-समनीर निरमल, कनक-झारी में भरौं।
संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं।।
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल शीतल विस्तरौं।
भव-ताप कौ सन्ताप मेटो, जोर कर विनती करौं।।
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोती-समान अखण्ड तन्दुल, अमल आनन्द धरि तरौं।
औगुन-हरौ गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ फूल-रास सुवास-वासित, खेद सब मन के हरौं।
दुःख-धाम काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज अनेक प्रकार जोग, मनोग धरि भय परिहरौं।
यह भूख-दूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक-प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरौं।
संशय-विमोह-विभरम-तम-हर, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-धूप परम-अनूप पावन, भाव पावन आचरौं।
सब करम पुञ्ज जलाय दीज्यो, जोर-कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चार गतिसों निरवरौं।
निहचैं मुकति-फल-देहु मोको, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्ध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

श्रीचौबीस जिनेश, गिरि कैलाशादिक नमों।
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतैं।।

(चौपाई १६ मात्रा)

नमों ऋषभ कैलासपहारं, नेमिनाथ गिरनार निहारं।
वासुपूज्य चम्पापुर वन्दौं, सन्मति पावापुर अभिनन्दौं।।

वन्दौं अजित अजित-पद-दाता, वन्दौं सम्भव भव-दुःख घाता।
वन्दौं अभिनन्दन गण-नायक, वन्दौं सुमति सुमति के दायक।।

वन्दौं पद्म मुकति-पद्माकर, वन्दौं सुपास आश-पासहर।
वन्दौं चन्द्रप्रभ प्रभु चन्दा, वन्दौं सुविधि सुविधि-निधि-कन्दा।।
वन्दौं शीतल अघ-तप-शीतल, वन्दौं श्रेयांस श्रेयांस महीतल।
वन्दौं विमल-विमल उपयोगी, वन्दौं अनन्त-अनन्त सुखभोगी।।

वन्दौं धर्म-धर्म विस्तारा, वन्दौं शान्ति, शान्ति मनधारा।
वन्दौं कुन्थु, कुन्थु रखवालं, वन्दौं अर अरि हर गुणमालं।।
वन्दौं मल्लि काम मल चूरन, वन्दौं मुनिसुव्रत व्रत पूरन।
वन्दौं नमि जिन नमित सुरासुर, वन्दौं पार्श्व-पास भ्रम जगहर।।
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेद महागिरि भू पर।
एक बार वन्दै जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहिं होई।।
नरपति नृप सुर शक्र कहावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव पावै।
विघन विनाशन मंगलकारी, गुण-विलास वन्दौं भवतारी।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(घत्ता)

जो तीरथ जावै, पाप मिटावै, ध्यावै गावै, भगति करै।
ताको जस कहिये, संपति लहिये, गिरि के गुण को बुध उचरै।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

हे जिन तेरो सुजस उजागर, गावत हैं मुनिजन ज्ञानी।।टेक।।
दुर्जय मोह महाभट जाने, निज वश कीने हैं जग प्रानी।
सो तुम ध्यान कृपान पान गहिं, तत् छिन ताकी थिति हानी।।१।।
सुप्त अनादि अविद्या निद्रा, जिन जन निज सुधि बिसरानी।
ह्वै सचेत तिन निज निधि पाई, श्रवण सुनी जब तुम वानी।।२।।
मंगलमय तू जग में उत्तम, तू ही शरण शिवमग दानी।
तुम पद सेवा परम औषधि, जन्म-जरा-मृत गद हानि।।३।।
तुमरे पंचकल्याणक माहीं, त्रिभुवन मोह दशा हानी।
विष्णु विदाम्बर जिष्णु दिगम्बर, बुध शिव कहि ध्यावत ध्यानी।।४।।
सर्व दर्व गुण परिजय परिणति, तुम सुबोध में नहिं छानी।
तातें 'दौल' दास उर आशा, प्रकट करी निज रस सानी।।५।।

निर्वाणकाण्ड (भाषा)

(श्री भैया भगवतीदास कृत)

(दोहा)

वीतराग वन्दौं सदा, भावसहित सिर नाय।
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय।।

(चौपाई)

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुरि नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, बन्दौं भाव-भगति उर धार।।
चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखर समेद जिनेसुर बीस, भावसहित बन्दौं निश-दीस।।
वरदत्तराय रु इन्द्र मुनिन्द, सायरदत्त आदि गुणवृन्द।
नगर तारवर मुनि हूँठकोड़ि[1], बन्दौं भावसहित कर जोड़ि।।
श्री गिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात।
शम्भु प्रद्युम्न कुमार द्वै भाय, अनिरुध आदि नमूँ तसुपाय।।
रामचन्द के सुत द्वै वीर, लाडनरिन्द आदि गुणधीर।
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मँझार, पावागिरि बन्दौं निरधार।।
पाण्डव तीन द्रविड़-राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुंजयगिरि के सीस, भावसहित बन्दौं निश-दीस।।
जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये।
श्री गजपन्थ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहुँ काल।।
राम हणू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोड़ि निन्याणव मुक्ति पयान, तुंगीगिरि वन्दौं धरि ध्यान।।
नंग-अनंगकुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्द्ध प्रमाण।
मुक्ति गये सोनागिरि शीश, ते बन्दौं त्रिभुवनपति ईस।।
रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते बन्दौं धरि परम हुलास।।

---

1. साढ़े तीन करोड़

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठकोड़ि वन्दौं भव पार।।
बड़वानी बड़नगर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, ते बन्दौं भव-सागर-तर्ण।।
सुवरणभद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर शिखर मँझार।
चेलना नदी-तीर के पास, मुक्ति गये बन्दौं नित तास।।
फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिररूप।
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहाँ, मुक्ति गये बन्दौं नित तहाँ।।
बालि महाबालि मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार, ते बन्दौं नित सुरत सँभार।।
अचलापुर की दिश ईसान, तहाँ मेंढ़गिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूँ चित लाय।।
वंशस्थल वन के ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय।
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम।।
जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वन्दन करूँ जोरि जुग पान।।
समवसरण श्रीपार्श्व-जिनंद, रेसन्दीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते बन्दौं नित धरम-जिहाज।।
मथुरापुर पवित्र उद्यान, जम्बूस्वामीजी निर्वाण।
चरमकेवली पंचम काल, ते बन्दौं नित दीनदयाल।।
तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजै तहाँ।
मन-वच-काय सहित सिरनाय, वन्दन करहिं भविक गुणगाय।।
संवत् सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वन्दन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल।।

****

स्वयंभूस्तोत्र (भाषा)

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(चौपाई)

राजविषैं जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भुवि शिवपद लियो।
स्वयंबोध स्वयंभू भगवान, बन्दौं आदिनाथ गुणखान।।
इन्द्र क्षीरसागर-जल लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय।
मदन-विनाशक सुख करतार, बन्दौं अजित अजित-पदकार।।
शुकल ध्यानकरि करम विनाशि, घाति-अघाति सकल दुखराशि।
लह्यो मुकतिपद सुख अविकार, बन्दौं सम्भव भव-दुःख टार।।
माता पच्छिम रयन मँझार, सुपने सोलह देखे सार।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, बन्दौं अभिनन्दन मन लाय।।
सब कुवादवादी सरदार, जीते स्याद्वाद-धुनि धार।
जैन-धरम-परकाशक स्वाम, सुमतिदेव-पद करहुँ प्रनाम।।
गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर-शोभा अधिकाय।
बरसे रतन पंचदश मास, नमौं पदमप्रभु सुख की रास।।
इन्द फनिन्द नरिन्द त्रिकाल, बानी सुनि सुनि होहिं खुस्याल[1]।
द्वादश सभा ज्ञान-दातार, नमौं सुपारसनाथ निहार।।
सुगुन छियालिस हैं तुम माहिं, दोष अठारह कोऊ नाहिं।
मोह-महातम-नाशक दीप, नमौं चन्द्रप्रभ राख समीप।।
द्वादशविध तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश।
निज अनिच्छ भवि इच्छक दान, बन्दौं पुहुपदन्त मन आन।।
भवि-सुखदाय सुरगतैं आय, दशविध धरम कह्यो जिनराय।
आप समान सबनि सुख देह, बन्दौं शीतल धर्म-सनेह।।
समता-सुधा कोप-विष नाश, द्वादशांग वानी परकाश।
चार संघ आनंद-दातार, नमों श्रियांस जिनेश्वर सार।।
रत्नत्रय चिर मुकुट विशाल, सोभै कण्ठ सुगुन मनि-माल।
मुक्ति-नार भरता भगवान, वासुपूज्य बन्दौं धर ध्यान।।
परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी-ध्यानी हित-उपदेश।
कर्म नाशि शिव-सुख-विलसन्त, बन्दौं विमलनाथ भगवन्त।।

---

1. हर्षित

अन्तर-बाहिर परिग्रह टारि, परम दिगम्बर-व्रत को धारि।
सर्व जीव-हित-राह दिखाय, नमौं अनन्त वचन-मन लाय।।
सात तत्त्व पंचास्तिकाय, अरथ नवों छ दरब बहु भाय।
लोक अलोक सकल परकास, बन्दौं धर्मनाथ अविनाश।।
पंचम चक्रवर्ती निधि भोग, कामदेव द्वादशम मनोग।
शान्तिकरन सोलम जिनराय, शान्तिनाथ बन्दौं हरषाय।।
बहु थुति करे हरष नहिं होय, निन्दे दोष गहैं नहिं कोय।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, बन्दौं कुन्थुनाथ शिव-भूप।।
द्वादश गण[1] पूजैं सुखदाय, थुति वन्दना करैं अधिकाय।
जाकी निज-थुति कबहुँ न होय, बन्दौं अर-जिनवर-पद दोय।।
पर-भव रत्नत्रय-अनुराग, इह भव ब्याह-समय वैराग।
बाल-ब्रह्म पूरन-व्रत धार, बन्दौं मल्लिनाथ जिनसार।।
बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लोकान्त करै पग लाग।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहि, बन्दौं मुनिसुव्रत व्रत देहि।।
श्रावक विद्यावन्त निहार, भगति-भाव सों दियो अहार।
बरसी रतन-राशि तत्काल, बन्दौं नमिप्रभु दीन-दयाल।।
सब जीवन की बन्दी छोर, राग-द्वेष द्वय बन्धन तोर।
रजमति तजि शिव-तिय सों मिले, नेमिनाथ बन्दौं सुखनिले।।
दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनिधार।
गयो कमठ शठ मुख कर श्याम, नमों मेरु-सम पारसस्वाम।।
भव-सागर तैं जीव अपार, धरम-पोत में धरे निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान बन्दौं बहु बार।।

(दोहा)

चौबीसों पद-कमल-जुग, बन्दौं मन-वच-काय।
'द्यानत' पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय।।

1. सभा

चौबीस तीर्थंकरों के अर्घ्य

१. श्री ऋषभनाथ भगवान का अर्घ्य

(ताटंक)

शुचि निरमल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय।
दीप धूप फल अर्घ्य सु लेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि-बलि जाऊँ मन-वच-काय।
हे करुणानिधि! भव-दुख मेटो, यातैं मैं पूजूँ प्रभु पाय।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२. श्री अजितनाथ भगवान का अर्घ्य

(त्रिभंगी)

जल-फल सब सज्जै, बाजत बज्जै, गुनगन रज्जै मन मज्जै।
तुम पद जुगमज्जै, सज्जन जज्जै, ते भव भज्जै निजकज्जै।।
श्री अजित जिनेशं, नुतनक्रेशं, चक्रधरेशं खग्गेशं।
मनवांछित दाता, त्रिभुवनत्राता, पूजों ख्याता जग्गेशं।।

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. श्री संभवनाथ भगवान का अर्घ्य

(चौबोला)

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु, दीप धूप फल अर्घ्य किया।
तुमको अरपों भावभगति धर, जै जै जै शिवरमनि पिया।।
संभवजिन के चरन चरचतैं, सब आकुलता मिट जावै।
निज निधि ज्ञान-दरश-सुख-वीरज, निराबाध भविजन पावै।।

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

४. श्री अभिनन्दननाथ भगवान का अर्घ्य

(हरिगीतिका)

अष्ट द्रव्य सँवारि सुन्दर, सुजस गाय रसाल ही।
नचत रचत जजों चरन जुग, नाय नाय सुभाल ही।।
कलुषताप निकन्द श्री अभिनन्द, अनुपम चन्द है।
पदवंद वृन्द जजे प्रभु भवदन्द-फन्द निकन्द है।।

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

५. श्री सुमतिनाथ भगवान का अर्घ्य

(कवित्त)

जल चंदन तन्दुल प्रसून चरु, दीप धूप फल सकल मिलाय।
नाचि राचि शिरनाय समरचों, जय जय जय जय जय जिनराय।।
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवन के राय।
तुम पदपद्म सद्मशिवदायक, जजत मुदित मन उदित सुभाय।।

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

६. श्री पद्मप्रभ भगवान का अर्घ्य

(चाल होली)

जल फल आदि मिलाय गाय गुन, भगति भाव उमगाय।
जजों तुमहिं शिवतियवर जिनवर, आवागमन मिटाय।।
मन-वच-तन त्रय धार देत ही, जनम जरा मृत जाय।
पूजों भावसों, श्री पदमनाथ पद सार, पूजों भावसों।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

७. श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का अर्घ्य

(चौपाई आँचलीबद्ध)

आठों दरब साजि गुनगाय, नाचत राचत भगति बढ़ाय।
दयानिधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो।।
तुम पद पूजों मन-वच-काय, देव सुपारस शिवपुरराय।
दयानिधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो।।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

८. श्री चन्द्रप्रभ भगवान का अर्घ्य

(अवतार)

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों।।
श्री चंदनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै,
मन-वच-तन जजत अमंद, आतमजोति जगै।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

९. श्री पुष्पदन्त भगवान का अर्घ्य

(चाल होली)

जल फल सकल मिलाय मनोहर, मन-वच-तन हुलसाय।
तुम पद पूजौं प्रीति लायकै, जय जय त्रिभुवनराय।।
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१०. श्री शीतलनाथ भगवान का अर्घ्य

(वसंततिलका)

कंश्रीफलादि[1] वसु प्रासुक द्रव्य साजै।
नाचे रचे मचत बज्जत सज्ज बाजै।।
रागादि दोष मलमर्दन हेतु येवा।
चर्चों पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा।।

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

११. श्री श्रेयांसनाथ भगवान का अर्घ्य

(हरिगीता)

जल मलय तंदुल सुमन चरु अरु दीप धूप फलावली।
करि अर्घ्य चरचों चरनजुग प्रभु मोहि तार उतावली।।
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवनवन्द आनन्दकन्द हैं।
दुख दन्द-फन्द निकन्द पूरनचन्द जोति अमन्द हैं।।

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१२. श्री वासुपूज्य भगवान का अर्घ्य

(जोगीरासा)

जल-फल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरों यह लाई।।
वासुपूज वसुपूज तनुज पद, वासव सेवत आई।
बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

---

1. जल

१३. श्री विमलनाथ भगवान का अर्घ्य

(सोरठा)

आठों दरब सँवार, मन-सुखदायक पावने।
जजों अर्घ्य भर थार, विमल विमल शिवतिय रमन।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१४. श्री अनन्तनाथ भगवान का अर्घ्य

(हरिगीता)

शुचि नीर चन्दन शालिशंदन, सुमन चरु दीवा धरों।
अरु धूप फल जुत अरघ करि, कर जोर जुग विनती करों।।
जगपूज परमपुनीत मीत, अनन्त संत सुहावनों।
शिवकंतवंत महंत ध्यावो, भ्रन्तवन्त नशावनों।।

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१५. श्री धर्मनाथ भगवान का अर्घ्य

(जोगीरासा)

आठों दरब साज शुचि चितहर, हरषि हरषि गुन गाई।
बाजत दृम दृम दृम मृदंग गत, नाचत ता थेई थाई।।
परम धरम-शम-रमन धरम-जिन, अशरन शरन निहारी।
पूजूँ पाय गाय गुन सुन्दर, नाचौं दै दै तारी।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१६. श्री शान्तिनाथ भगवान का अर्घ्य

(त्रिभंगी)

वसु द्रव्य सँवारी, तुम ढिंग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुनाधारी, यातैं थारी शरनारी।
श्री शान्तिजिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं।
हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं दयामृतेशं मक्रेशं।।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१७. श्री कुन्थुनाथ भगवान का अर्घ्य

(चाल लावनी)

जल चन्दन तन्दुल प्रसून चरु, दीप धूप लेरी।
फलजुत जजन करों मन सुख धरी, हरो जगत फेरी।।

कुन्थु सुन अरज दास केरी, नाथ सुनि अरज दास केरी।
भवसिन्धु पस्यो हों नाथ, निकारो बाँह पकर मेरी।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१८. श्री अरनाथ भगवान का अर्घ्य

(त्रिभंगी)

सुचि स्वच्छ पटीरं, गंधगहीरं, तंदुलशीरं पुष्प चरूँ।
वर दीपं धूपं, आनन्दरूपं, लै फल भूपं अर्घ्य करूँ।।
प्रभु दीनदयालं, अरिकुलकालं, विरदविशालं सुकुमालम्।
हनि मम जंजालं, हे जगपालं, अनगुनमालं वरभालम्।।

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१९. श्री मल्लिनाथ भगवान का अर्घ्य

(जोगीरासा)

जल फल अरघ मिलाय गाय गुन पूजौं भगति बढ़ाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीधर, शरन गही मैं आई।।
राग-दोष मद मोह हरन को, तुम ही हौ वरवीरा।
यातैं शरन गही जगपतिजी, वेग हरो भवपीरा।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२०. श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान का अर्घ्य

(गीतिका)

जल गंध आदि मिलाय आठों, दरब अरघ सजों वरों।
पूजों चरन-रज भगत जुत, जातैं जगत सागर तरों।।
शिवसाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ मुनि गुनमाल है।
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन विरद विशाल है।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२१. श्री नमिनाथ भगवान का अर्घ्य

जल फलादि मिलाय मनोहरं, अरघ धारत ही भय भौ हरं।
जजतु हौं नमि के गुन गायकें, जुगपदांबुज प्रीति लगायकें।।

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२२. श्री नेमिनाथ भगवान का अर्घ्य

(चाल होली)

जल-फल आदि साज शुचि लीने, आठों दरब मिलाय।
अष्टमथिति के राजकरन कों, जजों अंग वसु नाय।।
दाता मोक्ष के, श्री नेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२३. श्री पार्श्वनाथ भगवान का अर्घ्य

नीर गन्ध अक्षतान् पुष्प चरु लीजिए।
दीप-धूप-श्रीफलादि अर्घ्य तैं जजीजिये।।
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा।
दीजिए निवास मोक्ष, भूलिए नहीं कदा।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२४. श्री महावीर भगवान का अर्घ्य

(अवतार)

(१) जल-फल वसु सजि हिमथार, तन-मन मोद धरों।
गुण गाऊँ भवदधि तार, पूजत पाप हरों।।
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मतिनायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(हरिगीत)

(२) इस अर्घ्य का क्या मूल्य है अन्-अर्घ्य पद के सामने।
उस परम पद को पा लिया, हे पतित-पावन! आपने।।
सन्तप्त मानस शान्त हों, जिनके गुणों के गान में।
वे वर्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

****

कृत्रिम व अकृत्रिम चैत्यालयों के अर्घ (हिन्दी)

भूत भविष्यत् वर्तमान की तीस चौबीसी मैं ध्याऊँ।
चैत्य चैत्यालय कृत्रिमाकृत्रिम, तीन लोक के मन लाऊँ।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्धी तीस चौबीसी, त्रिलोक सम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिम चैत्याचैत्यालयेभ्य अर्घ्य नि.

वसुकोटि छप्पन लाख ऊपर, सहस सत्याणव मानिये।
शतच्यार पै गिनले इक्यासी, भवन जिनवर जानिये।।
तिहुँलोक भीतर सासते, सुर असुर नर पूजा करें।
तिन भवन को हम अर्घ लेकै, पूजि है जग दुःख हरै।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य सम्बन्ध्यष्टकोटि-षट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिम-जिन चैत्यालयेभ्यो पूर्णार्घ्यं नि. ।।४।।

चैत्य भक्ति आलोचना चाहुँ, कायोत्सर्ग अघ नासन हेत।
कृत्रिमाकृत्रिम तीन लोक में, राजत हैं जिन बिंब अनेक।।
चतुर्निकाय के देव जजैं, ले अष्ट द्रव्य निज कुटुम्ब समेत।
निज शक्ति अनुसार जजूं मैं, कर समाधि पाऊँ शिवखेत।।

पुष्पांजलि क्षेपण

पूर्व मध्य अपरान्ह की बेला, पूर्वाचार्यों के अनुसार।
देव वन्दना करूँ भाव से, सकल कर्म की नासनहार।।
पंच महा गुरु सुमिरन करके, कायोत्सर्ग करूँ सुखकार।
सहज स्वभाव शुद्ध लख अपना, जाऊँगा मैं अब भव पार।।

(कायोत्सर्ग पूर्वक नौ बार णमोकार मंत्र की जाप्य करें।)

दरबार तुम्हारा मनहर है, प्रभु दर्शन कर हर्षाये हैं।
दरबार तुम्हारे आये हैं, दरबार तुम्हारे आये हैं।।टेक।।
भक्ति करेंगे चित से तुम्हारी, तृप्त भी होगी चाह हमारी।
भाव रहें नित उत्तम ऐसे, घट के पट में लाये हैं।।दरबार.।।१।।
जिसने चिंतन किया तुम्हारा, मिला उसे संतोष सहारा।
शरणे जो भी आये हैं, निज आतम को लख पाये हैं।।दरबार.।।२।।
विनय यही है प्रभू हमारी, आतम की महके फुलवारी।
अनुगामी हो तुम पद पावन, 'वृद्धि' चरण सिर नाये हैं।।दरबार.।।३।।

अकृत्रिम चैत्यालयों के अर्घ्य

(शार्दूलविक्रीडित)

कृत्रिमाकृत्रिम-चारु-चैत्य-निलयान् नित्यं त्रिलोकी-गतान्,
वंदे भावनव्यंतर-द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान् ।
सद्गंधाक्षत-पुष्प-दाम-चरुकैः सद्दीपधूपैः फलै-
र्द्रव्यैनीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ।।१ ।।

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिम-चैत्यालयसंबंधि-जिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(उपजाति)

वर्षेषु-वर्षान्तर-पर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानाम्।।२।।

(मालिनी)

अवनि-तल-गतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां,
वन-भवन-गतानां दिव्य-वैमानिकानां ।
इह मनुज-कृतानां देवराजार्चितानां,
जिनवर-निलयानां भावतोऽहं स्मरामि ।।३ ।।

(शार्दूलविक्रीडित)

जंबू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-क्षेत्र त्रये ये भवा-
श्चन्द्रांभोज-शिखंडि-कण्ठ-कनक-प्रावृड्घनाभा जिनाः।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्ट-कर्मेन्धनाः,
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ।।४ ।।

(स्रग्धरा)

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजत-गिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचिके कुंडले मानुषांके।
इष्वाकारे जनाद्रौ दधि-मुख-शिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भवन-महितले यानि चैत्यालयानि।।५।।

(शार्दूलविक्रीडित)

द्वौ कुंदेंदु-तुषार-हार-धवलौ द्वाविन्द्रनील-प्रभौ,
द्वौ बंधूक-सम-प्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ।
शेषाः षोडश जन्म-मृत्यु-रहिताः संतप्त-हेम-प्रभाः,
ते संज्ञान-दिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु नः ।।६ ।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि-कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

देव-शास्त्र-गुरु का अर्घ्य

(गीता)

(१) जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निरमल फल विविध बहु, जनम के पातक हरूँ।।
इह भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित भवि, करत शिव पंकति मचूँ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

(दोहा)

वसु विधि अर्घ्य संजोयकै, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(२) क्षण भर निजरस को पी चेतन मिथ्यामल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है।।
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जग-मग करता है।
दर्शन-बल पूर्ण प्रकट होता, यह ही अरहंत अवस्था है।।
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु, निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु, अरहन्त अवस्था पाऊँगा।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(३) बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचपरमेष्ठी का अर्घ्य

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ।।
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धपरमेष्ठी का अर्घ्य (संस्कृत)

(वसन्ततिलका)

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं,
सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनन्तवीर्यम् ।
कर्मौघकक्षदहनं सुखसस्य बीजं,
वन्दे सदा निरुपमं वर सिद्धचक्रम् ।।

(अनुष्टुप)

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी-निकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धपरमेष्ठी का अर्घ्य (हिन्दी)

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
पहनीं, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की।।
सुरभि धूपायन की फैली, शुभ कर्मों का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया।।
जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझ को स्वभाव का भान हुआ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ।।
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौबीस तीर्थंकर का अर्घ्य

जीवन में अभिलाषायें तज, शुद्धभाव धारण करलें।
अरे अर्घ्य यह अर्पण करके हम, अनर्घ्यपद प्राप्त करें।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक, श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं, उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

चौबीस तीर्थंकर का अर्घ्य

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों।।
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष मही।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरांतेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय पूजन का अर्घ्य

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये।।
यह अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विदेहक्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थंकरों का अर्घ्य

जल फल आठों दर्व, अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इन्द्रनि हू तैं, थुति पूरी न करी है।।
'द्यानत' सेवक जानके, (हो) जगतैं लेहु निकार।
सीमंधर जिन आदि दे, (स्वामी) बीस विदेह मँझार।।
श्री जिनराज हो, भव तारणतरण जिहाज, श्री महाराज हो।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सीमंधर भगवान का अर्घ्य

निर्मल जल-सा प्रभु निज स्वरूप, पहचान उसी में लीन हुए।
भव-ताप उतरने लगा तभी, चन्दन-सी उठी हिलोर हिये।।
अभिराम-भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति-प्रसून लगे खिलने।
क्षुत्-तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने।।
मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईंधन ध्वस्त हुए।
फल हुआ प्रभो ! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन स्वस्थ हुए।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महावीर भगवान का अर्घ्य

इस अर्घ्य का क्या मूल्य है अन्-अर्घ्य पद के सामने?
उस परम-पद को पा लिया, हे पतित-पावन आपने।।
संतप्त-मानस शान्त हों, जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच-बालयति का अर्घ्य

सजि वसुविधि द्रव्य मनोज्ञ, अर्घ्य बनावत हैं।
वसुकर्म अनादि संयोग, ताहि नसावत हैं।।
श्री वासु पूज्य-मल्लि-नेमि, पारस वीर अति।
नमूँ मन-वच-तन धरि प्रेम, पाँचों बालयति।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर-पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर द्वीप का अर्घ्य

यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीनो शिवखेत, भूमि समरपतु हों।।
नन्दीश्वर श्री जिनधाम, बावन पुंज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरों।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षण धर्म का अर्घ्य

(सोरठा)

आठों दरव सँवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों।
भव-आताप निवार, दशलक्षण पूजों सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय का अर्घ्य

(सोरठा)

आठों दरव निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये।
जनम रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शन का अर्घ्य

(सोरठा)

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा।।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान का अर्घ्य

(सोरठा)

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा।।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र का अर्घ्य

(सोरठा)

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यक् चारितसार, तेरह विधि पूजों सदा।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचमेरु का अर्घ्य

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाजी को करहुँ प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलहकारण का अर्घ्य

जल फल आठों दरब चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करों मनलाय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो।।
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

(अडिल्ल[1])

पंच परम परमेष्ठी पूजूँ भाव से।
उनकी वाणी पूजूँ अधिक उछाह से।।
रतनत्रयमय परम शुद्ध उपयोग है।
दश धर्मों से मंडित पावन योग है।। १ ।।
गिरि कैलाश महान और पावापुरी।
सम्मेदाचल गिरनारी चम्पापुरी।।
आदि अनेकों सिद्धक्षेत्र मन भावने।
और अनेकों अतिशय क्षेत्र सुहावने।। २ ।।
तीन लोक में थान-थान अति ही घने।
कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालय बने।।
इन सबकी पूजन करता हूँ चाव से।
और भावना भाता अति उत्साह से।। ३ ।।
इन सबकी वंदना करूँ अति चाव से।
और भावना बारह भाऊँ भाव से।।
धर्मध्यान शुद्धोपयोग का योग है।
और परम तप स्वाध्याय संयोग है।। ४ ।।
इन सबकी भक्ति पूजन आराधना।
और आतमा में तन्मय हो साधना।।
यह सब चाहूँ और न कोई चाह है।
इन सबमें ही मेरा अति उत्साह है।। ५ ।।

(दोहा)

एकमात्र आराध्य है, अपना ज्ञायकभाव।
उसमें तन्मय होय तो, होय विभाव अभाव।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधुपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यो नमः उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नमः श्री सम्मेदशिखर-गिरनारगिरि-कैलाशगिरि-चम्पापुर-पावापुर-आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः त्रिलोकसम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नमः सर्वपूज्यपदेभ्यो नमः महार्घ्यं ....

---

१. अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा? .... की धुन पर गायें।

महाऽर्घ्य

मैं देव श्री अरहंत पूजूँ, सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ, साधु पूजूँ भाव सों।।
अरहन्त भाषित बैन पूजूँ, द्वादशांग रची गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरण, शिवहेत सब आशा हनी।।
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि, दयामय पूजूँ सदा।
जजि भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहिं कदा।।
त्रैलोक्य के कृत्रिम-अकृत्रिम, चैत्य-चैत्यालय जजूँ।
पंचमेरु-नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूँ।।
कैलाश श्री सम्मेदगिरि, गिरनार मैं पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ शर्मदा।।
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ, बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस वसु जय, होय पति शिव गेह के।।

(दोहा)

जल गंधाक्षत पुष्प चरु, दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहु विधि भक्ति बढ़ाय।।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्तसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो, द्वादशांगजिनवाणीभ्यो उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय, दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः त्रिलोकसम्बन्धीकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो, पंचमेरौ अशीतिचैत्यालयेभ्यो, नन्दीश्वर-द्वीपस्थद्विपंचाशज्जिनालयेभ्यो, श्रीसम्मेदशिखर-गिरनारगिरि-कैलाशगिरि-चम्पापुर-पावापुर-आदिसिद्धक्षेत्रेभ्यो, अतिशयक्षेत्रेभ्यो, विदेहक्षेत्रस्थितसीमंधरादिविद्यमान-विंशतितीर्थंकरेभ्यो, ऋषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो, भगवज्जिनसहस्राष्टनामेभ्यश्च अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

****

शान्तिपाठः (संस्कृत)

(चौपाई)

शान्तिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शील-गुण-व्रत-संयम-पात्रम्।
अष्टशतार्चित-लक्षण-गात्रं, नौमि जिनोत्तममम्बुनेत्रम्।।१।।
पंचमभीप्सित-चक्रधराणां पूजितमिन्द्र-नरेन्द्र-गणैश्च।
शान्तिकरं गण-शान्तिमभीप्सुः, षोडश-तीर्थकरं प्रणमामि।।२।।
दिव्य-तरुः सुर-पुष्प-सुवृष्टिर्दुन्दुभिरासन-योजन-घोषौ।
आतपवारण-चामर-युग्मे, यस्य विभाति च मण्डलतेजः।।३।।
तं जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं, शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं, मह्यमरं पठते परमां च।।४।।

(वसन्ततिलका)

येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पाद-पद्माः।
ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपा-
स्तीर्थंकराः सतत-शान्तिकरा भवन्तु।।५।।

(इन्द्रवज्रा)

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवज्जिनेन्द्रः।।६।।

(शार्दूलविक्रीडित)

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः,
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौर-मारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके,
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्व-सौख्य-प्रदायी।।७।।

(अनुष्टुप)

प्रध्वस्त-घाति-कर्माणः केवलज्ञान-भास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः।।८।।

(प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः)

(मन्दाक्रान्ता)

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः संगतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुण-गण-कथा दोष-वादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्मतत्त्वे,
संपद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ।।९ ।।

(आर्या)

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तवपदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाण-संप्राप्तिः ।।१० ।।

(गाथा)

अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ता-हीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव य, मज्झ वि दुक्ख-क्खयं दिंतु।।११।।

दुक्ख-खओ कम्म-खओ, समाहिमरणं च बोहि-लाहो य।
मम होउ जगद-बंधव तव जिणवर चरण सरणेण।।१२।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें।)

(क्षमापना)

(अनुष्टुप)

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि शास्त्रोक्तं न कृतं मया।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु तत्प्रसादाज्जिनेश्वर।।१ ।।
आह्वाननं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं नैव जानामि क्षमस्व परमेश्वर।।२ ।।
मन्त्र-हीनं क्रिया-हीनं द्रव्य-हीनं तथैव च।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष-रक्ष जिनेश्वर।।३ ।।
मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्।।४ ।।
सर्व-मंगल-मांगल्यं सर्वकल्याणकारकं ।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्।।५ ।।

शान्ति–पाठ (भाषा)

(चौपाई)

शांतिनाथ मुख शशि–उनहारी, शील–गुण–व्रत–संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजैं।।
पंचम चक्रवर्ति पद धारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्र–नरेन्द्र पूज्य जिन–नायक, नमो शांति–हित शांति विधायक।।
दिव्य विटप बहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामंडल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी।।
शांति–जिनेश शांति सुखदाई, जगत पूज्य पूजौं शिर नाई।
परम शांति दीजे हम सबको, पढ़ैं तिन्हें पुनि चार संघ को।।

(वसन्ततिलका)

पूजैं जिन्हें मुकुट–हार–किरीट लाके।
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।।
सो शांतिनाथ वर–वंश जगत प्रदीप।
मेरे लिए करहिं शान्ति सदा अनूप।।

(इन्द्रवज्रा)

संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीन को औ यतिनायकों को।
राजा–प्रजा–राष्ट्र–सुदेश को ले, कीजे सुखी हे जिन! शांति को दे।।

(स्रग्धरा)

होवै सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो, धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समय पै, तिल भर न रहै, व्याधियों का अंदेशा।।
होवे चोरी न जारी, सुसमय वरते, हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारैं जिनवर–वृष को, जो सदा सौख्यकारी।।

(दोहा)

घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज।
शांति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज।।

(मंदाक्रान्ता)

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगति का।
सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढाकूँ सभी का।।
बोलूँ प्यारे वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ।
तौ लौं सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौ लौं न पाऊँ।।

(आर्या)

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहौं प्रभु, जब लौं पाया न मुक्ति-पद मैंने।।
अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कछु कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणाकरि पुनि छुड़ाहु भव दुख से।
हे जगबन्धु जिनेश्वर! पाऊँ तव चरण-शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें।)

(क्षमापना)

(दोहा)

बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसाद तैं परम गुरु, सो सब पूरन होय।।१।।
पूजन-विधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करहु भगवान।।२।।
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव।।३।।
तुम चरणन ढिंग आयके, मैं पूजूँ अति चाव।
आवागमन रहित करो, मेटो सकल विभाव।।४।।

नाथ तुम्हारी पूजा में सब, स्वाहा करने आया।
तुम जैसा बनने के कारण, शरण तुम्हारी आया।।टेक।।
पंचेन्द्रिय का लक्ष्य करूँ मैं, इस अग्नि में स्वाहा।
इन्द्र-नरेन्द्रों के वैभव की, चाह करूँ मैं स्वाहा।
तेरी साक्षी से अनुपम मैं यज्ञ रचाने आया।।१।।
जग की मान प्रतिष्ठा को भी, करना मुझको स्वाहा।
नहीं मूल्य इस मन्द भाव का, व्रत-तप आदि स्वाहा।
वीतराग के पथ पर चलने का प्रण लेकर आया।।२।।
अरे जगत के अपशब्दों को, करना मुझको स्वाहा।
पर लक्ष्यी सब ही वृत्ती को, करना मुझको स्वाहा।
अक्षय निरंकुश पद पाने और पुण्य लुटाने आया।।३।।
तुम हो पूज्य पुजारी मैं, यह भेद करूँगा स्वाहा।
बस अभेद में तन्मय होना, और सभी कुछ स्वाहा।
अब पामर भगवान बने, यह सीख सीखने आया।।४।।

शान्ति-पाठ (लघु)

(हरिगीतिका)

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव, सुरपति चक्री करैं।
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथाविधि पूजा करैं।।
धन-क्रिया-ज्ञान रहित न जाने, रीत पूजन नाथजी।
हम भक्तिवश तुम चरण आगै, जोड़ लीने हाथजी।।१।।

दुःख-हरन मंगलकरन, आशा-भरन जिन पूजा सही।
यह चित्त में श्रद्धान मेरे, शक्ति है स्वयमेव ही।।
तुम सारिखे दातार पाये, काज लघु जाचूँ कहा।
मुझ आप-सम कर लेहु स्वामी, यही इक वांछा महा।।२।।

संसार भीषण विपिन में, वसु कर्म मिल आतापियो।
तिस दाहतैं आकुलित चिरतैं, शान्तिथल कहुँ ना लियो।।
तुम मिले शान्तिस्वरूप, शान्ति सुकरन समरथ जगपती।
वसु कर्म मेरे शान्ति कर दो, शान्तिमय पंचमगती।।३।।

जबलौं नहीं शिव लहूँ, तबलौं देह यह नर पावना।
सत्संग शुद्धाचरण श्रुत, अभ्यास आतम भावना।।
तुम बिन अनंतानंत काल, गयो रुलत जगजाल में।
अब शरण आयो नाथ युग कर, जोर नावत भाल मैं।।४।।

(दोहा)

कर प्रमाण के मान तैं, गगन नपै किहि भंत।
त्यों तुम गुण वर्णन करत, कवि पावे नहिं अंत।।५।।

✻ अपने दोषों के कारण एवं कर्त्ता तुम स्वयं ही हो, विश्व में अन्य कोई नहीं।

शान्ति पाठ

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(हरिगीत)

हे शान्ति के सागर जिनेश्वर! शान्ति के ही रूप हो।
नासाग्रदृष्टि शान्त मुद्रा, स्वयं शान्तिस्वरूप हो।।
सारे जगत में शान्ति हो, सारा जगत यह चाहता।
किन्तु सारे जगत को, अपना बनाना चाहता।। १ ।।
जबकि इक अणुमात्र भी, तो जगत में इसका नहीं।
अधिक क्या अणुमात्र को, अपना बना सकता नहीं।।
यह बात शाश्वत सत्य है, कोई किसी का रंच भी।
अच्छा-बुरा या अन्य कुछ भी, कभी कर सकता नहीं।। २ ।।
मारना अर बचाना या, दुःख-सुख का दान भी।
कोई किसी का ना करे, आदान और प्रदान भी।।
यह बात केवलि ने कही, जिनशास्त्र में उल्लेख है।
जैन शासन में समझ लो, यह छठी का लेख है।। ३ ।।
शान्ति और अशान्ति ये तो, आतमा के भाव हैं।
कोई किसी के क्यों करे, ये तो स्वयं के भाव हैं।।
रे स्वयं मिथ्या मान्यता को, बुद्धिपूर्वक छोड़ दें।
एवं स्वयं ही स्वयं में, निज आतमा को जोड़ दें।। ४ ।।
शान्ति होती प्राप्त केवल, आतमा के ज्ञान से।
आतमा के ज्ञान से अर, आतमा के ध्यान से।।
यह ही परम सत्यार्थ है, यह ही परम भूतार्थ है।
और सब व्यवहार है बस, एक यह परमार्थ है।। ५ ।।

व्यवहार से हम भावना, भाते सुखी संसार हो।
सुख-शान्ति चारों ओर हो, ना समृद्धि का पार हो।।
अनुकूलता हो सब तरफ, न आर हो न पार हो।
अधिक क्या अब हम कहें, बस सब सुखी संसार हो।। ६ ।।

(दोहा)

सभी जीव इस लोक के, सुखी रहें सर्वत्र।
मौसम की अनुकूलता, बनी रहे सर्वत्र।। ७ ।।
प्राप्त करें सब जगत में, निज आनन्द अपार।
निज आतम का ध्यान धर, आतम शान्ति अपार।।८।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

विसर्जन पाठ

(दोहा)

जो कुछ जैसी बन पड़ी, अपनी शक्ति प्रमाण।
हमने पूजन की प्रभो, अपनी भक्ति प्रमाण।। १ ।।
हमने जाना जो प्रभो, जिनवाणी का मर्म।
उसके ही अनुसार सब, यह व्यवहारिक धर्म।। २ ।।
इसमें जो कुछ रहीं हों, कमियाँ विविध प्रकार।
विधि के जाननहार जन, इसमें करें सुधार।। ३ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

****

नीरव-निर्झर

(बाबू युगलजी कृत)

सामायिक-पाठ

(वीरछन्द)

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणा-स्रोत बहें दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो।।१।।
यह अनन्त बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको।।२।।
सुख-दुख, वैरी-बन्धु वर्ग में, काँच-कनक में समता हो।
वन-उपवन, प्रासाद-कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो।।३।।
जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुंदर-पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ।।४।।
एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो।।५।।
मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जायें सद्भावों से।।६।।
चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु! मैं भी आदि उपांत।
अपनी निंदा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त।।७।।
सत्य-अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत-विपरीत प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया।।८।।
कभी वासना की सरिता का, गहन-सलिल मुझ पर छाया।
पी-पी कर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया।।९।।
मैंने छली और मायावी, हो असत्य आचरण किया।
पर-निन्दा गाली चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया।।१०।।
निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता-सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे।।११।।

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे।।१२।।
दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे।।१३।।
जो भवदुःख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगीजन के ध्यानगम्य वह, बसे हृदय में देव महान।।१४।।
मुक्ति-मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म-मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप।।१५।।
निखिल-विश्व के वशीकरण वे, राग रहे ना द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे।।१६।।
देख रहा जो निखिल-विश्व को, कर्मकलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र।।१७।।
कर्मकलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्यप्रकाश।
मोह-तिमिर को भेद चला जो, परम शरण मुझको वह आप्त।।१८।।
जिसकी दिव्यज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्यप्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्व-पर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त।।१९।।
जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि-अन्त से रहित शान्त शिव, परमशरण मुझको वह आप्त।।२०।।
जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय-विषाद-चिन्ता सब जिसके, परम शरण मुझको वह देव।।२१।।
तृण, चौकी, शिल-शैल, शिखर नहीं, आत्मसमाधि के आसन।
संस्तर, पूजा, संघ-सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन।।२२।।
इष्ट-वियोग, अनिष्ट-योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी है विश्व वासना, उपादेय निर्मल आतम।।२३।।

बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें।।२४।।
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृग-तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ।।२५।।
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञानस्वभावी है।
जो कुछ बाहर है, सब पर है, कर्माधीन विनाशी है।।२६।।
तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो सुत-तिय-मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे।।२७।।
महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़ देह संयोग।
मोक्ष-महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग।।२८।।
जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प-जालों को छोड़।
निर्विकल्प, निर्द्वन्द्व आतमा, फिर-फिर लीन उसी में हो।।२९।।
स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते।।३०।।
अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
पर देता है यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी बुद्धि।।३१।।
निर्मल, सत्य, शिवं, सुन्दर है, 'अमितगति' वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण।।३२।।

****

*** अयोग्य कार्य हुए हों तो लज्जित होकर उनको भविष्य में नहीं करने की प्रतिज्ञा करना।**

अमूल्य तत्त्व विचार

(बाबू युगलजी कृत)

(हरिगीतिका)

बहु पुण्य-पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे! भवचक्र का, फेरा न एक कभी टला।।१।।
सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है।।२।।
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या? वृद्धि नय पर तोलिये।।३।।
संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है।
नहिं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है।।४।।
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, लो जहाँ भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्तस्तत्त्व जिससे, बन्धनों से मुक्त हो।।५।।
परवस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दुख भरा।।६।।
मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुखःमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या?।।७।।
इसका विचार विवेक पूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये।।८।।
किसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानुभूति प्रसूत है।।९।।
तारो अरे! तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लिख लीजिये।।१०।।

****

एक देखिये, जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समल, विमल न विचारिये, यही सिद्धि नहीं और।।

आलोचना पाठ

(श्री जौहरीलालजी कृत)

(दोहा)

बंदौं पाँचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज।।१।।

(सखी छन्द)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति काज, तुम सरण लही जिनराज।।२।।
इक बे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी।।३।।
समरंभ समारंभ आरंभ, मन-वच-तन कीने प्रारंभ।
कृत-कारित-मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं।।४।।
शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतैं।
तिनकी कहुँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी।।५।।
विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने।।६।।
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो।।७।।
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर-वनितासों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह भीने, पन पाप जु या विधि कीने।।८।।
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय-सेवन को।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने।।९।।
फल पंच उदुंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाहे।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये विषयन दुखकारे।।१०।।
दुइवीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो।।११।।

अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये।।१२।।
परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संयोग।
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम।।१३।।
निद्रावश शयन कराया, सुपने मधि दोष लगाया।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष-फल खायो।।१४।।
किये आहार बिहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरा उठायी, बिन शोधी वस्तु जु खायी।।१५।।
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गई है।।१६।।
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन भिन अब कैसें कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये।।१७।।
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी।।१८।।
पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो।।१९।।
हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा।।२०।।
हा हा! परमाद बसाई, विन देखे अगनि जलाई।
ता मधि जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये।।२१।।
बींध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाड़ू ले जागा बुहारी, चिंवटी आदिक जीव बिदारी।।२२।।
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई।।२३।।
जल-मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
नदियन विच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये।।२४।।

अन्नादिक शोध कराई, तामधि जु जीव निसराई।
तिनको नहिं जतन करायो, गलियारैं धूप डरायो।।२५।।
पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी।।२६।।
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई।।२७।।
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसें कहि जावे।।२८।।
तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है।।२९।।
जो गाँवपती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी।।३०।।
द्रौपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन-से किये अकामी, दुख मेटहु अंतरजामी।।३१।।
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी।।३२।।
इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजै, परमातम निज-पद दीजै।।३३।।

(दोहा)

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीजे मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय।।३४।।
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरि' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरन आनन्द।।३५।।

निज स्वरूप को परम रस, जामैं भरो अपार।
बन्दूँ परमानन्दमय, समयसार अविकार।।

मेरी भावना

(पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार 'युगवीर' कृत)

जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्तिभाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी में लीन रहो।।१।।
विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो, निशि-दिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ-त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख-समूह को हरते हैं।।२।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।।
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूँ।
पर-धन-वनिता पर न लुभाऊँ, सन्तोषामृत पिया करूँ।।३।।
अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्याभाव धरूँ।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ।।४।।
मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा-स्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर-कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आये।
साम्य-भाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जाये।।५।।
गुणीजनों को देख हृदय में मेरे, प्रेम उमड़ आये।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पाये।।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आये।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जाये।।६।।

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आये या जाये।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जाये।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आये।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पाये।।७।।
होकर सुख में मग्न न फूले, दुःख में कभी न घबराये।
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक, अटवी में नहिं भय खाये।।
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जाये।
इष्ट-वियोग-अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलाये।।८।।
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरायें।
बैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गायें।।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जायें।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म फल सब पायें।।९।।
ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा-धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे।।१०।।
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।।
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करैं।
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख-संकट सहा करैं।।११।।

****

*** मृत्यु से वस्तु दूर होती है और त्याग से वस्तु की वासना का अन्त होता है।**

वैराग्य भावना

(पं. भूधरदासजी कृत)

(दोहा)

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं।
त्यों चक्री सुख में मगन, धर्म विसारै नाहिं।।१।।

(जोगीरासा या नरेन्द्र छन्द)

इह विध राज करै नर नायक, भोगें पुण्य विशाला।
सुखसागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो काला।।
एक दिवस शुभ कर्म संयोगे, क्षेमंकर मुनि वन्दे।
देखे श्रीगुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे।।२।।
तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन में दिठि दीनी।।
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राजरमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे।।३।।
मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भरम बुधि भागी।
भव-तन-भोग स्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी।।
इह संसार महा-वन भीतर, भ्रमते ओर न आवै।
जामन मरण जरा दव दाझै, जीव महादुःख पावै।।४।।
कबहूँ जाय नरक थिति भुंजे, छेदन-भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरे तहँ, बध-बन्धन भयकारी।।
सुरगति में परसम्पत्ति देखे, राग उदय दुःख होई।
मानुषयोनि अनेक विपतिमय, सर्व सुखी नहिं कोई।।५।।
कोई इष्ट-वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट-संयोगी।
कोई दीन दरिद्री विगुचे, कोई तन के रोगी।।
किस ही घर कलिहारी नारी, कै बैरी-सम भाई।
किस ही के दुःख बाहिर दीखे, किस ही उर दुचिताई।।६।।

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै।
खोटी संततिसों दुःख उपजै, क्यों प्राणी सुख सौवै।।
पुण्य-उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता।
यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दुःख दाता।।७।।
जो संसार-विषै सुख होता, तीर्थङ्कर क्यों त्यागै।
काहे को शिव-साधन करते, संजमसों अनुरागै।।
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जलसों शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होई।।८।।
सप्त कुधातु भरी मल मूरत, चाम लपेटी सोहै।
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है।।
नव मल द्वार स्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै।।९।।
पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावे।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै।।
राचन जोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे, यामें सार यही है।।१०।।
भोग बुरे भवरोग बढ़ावें, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होय विपाक समय अति, सेवत लागे नीके।।
वज्र अग्नि विष से विषधर से, ये अधिके दुःखदाई।
धर्म रतन के चोर प्रबल अति, दुर्गति पन्थ सहाई।।११।।
मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानें।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, तो सब कंचन मानें।।
ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मनवांछित जन पावे।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवे।।१२।।
मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे।।

राज समाज महा अघ कारण, वैर बढ़ावनहारा।
वेश्या-सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पतयारा।।१३।।
मोह महारिपु वैर विचार्यो, जगजिय संकट डारे।
तन काराग्रह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये जिय के हितकारी।
ये ही सार, असार और सब, यह चक्री चितधारी।।१४।।
छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी।।
इत्यादिक सम्पति बहुतेरी, जीरण तृण-सम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुत को, राज्य दियो बड़भागी।।१५।।
होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्री गुरु चरन धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे।।
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी।
ऐसी सम्पत्ति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी।।१६।।

(दोहा)

परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित पन्थ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ।।

****

अरहन्त के प्रतिबिम्ब का वचन द्वार से स्तवन करना, नमस्कार करना, तीन प्रदक्षिणा देना, अंजुलि मस्तक चढ़ाना, जल-चन्दनादिक अष्ट द्रव्य चढ़ाना; सो द्रव्यपूजा है। अरहंत के गुणों में एकाग्र चित्त होकर, अन्य समस्त विकल्प-जाल छोड़कर गुणों में अनुरागी होना तथा अरहंत के प्रतिबिम्ब का ध्यान करना; सो भाव पूजा है।

छहढाला

(पं. दौलतरामजी कृत)

मंगलाचरण

(सोरठा)

तीन भुवन में सार, वीतराग-विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं।।

पहली ढाल

(चौपाई)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार।।१।।
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियौ अनादि, भूल आप को भरमत बादि।।२।।
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्रिय तन धार।।३।।
एक श्वास में अठ-दश बार, जन्म्यो-मर्‍यो भर्‍यो दुखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।।४।।
दुर्लभ लहि ज्यौं चिंतामणी, त्यौं पर्याय लही त्रसतणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‍यो सही बहु पीर।।५।।
कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशू हति खाये भूर।।६।।
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अति दीन।
छेदन-भेदन भूख पियास, भार-वहन हिम-आतप त्रास।।७।।
बध-बन्धन आदिक दुःख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अति संक्लेश भावतैं मर्‍यो घोर श्वभ्र-सागर में पर्‍यो।।८।।
तहाँ भूमि परसत दुःख इसो, बिच्छू सहस डसैं नहिं तिसो।
तहाँ राध-शोणित वाहिनी, कृमि-कुल कलित देह दाहिनी।।९।।

सेमर तरु दल जुत असिपत्र, असि ज्यौं देह विदारैं तत्र।
मेरु-समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।१०।।

तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधु-नीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय।।११।।

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहु सागर लौं सहे, करम-जोग तैं नरगति लहै।।१२।।

जननी उदर बस्यो नव मास, अंग-सकुचतैं पायो त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर।।१३।।

बालपने में ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरुणीरत-रह्यौ।
अर्द्धमृतक-सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो।।१४।।

कभी अकाम-निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषयचाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो।।१५।।

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय।
तहँ तैं चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै।।१६।।

दूसरी ढाल

(पद्धरि छन्द)

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चरण-वश, भ्रमत भरत दुख जन्म-मरण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन, तिन संक्षेप कहूँ बखान।।१।।

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिन माहिं विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप।।२।।

पुद्गल-नभ-धर्म-अधर्म-काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान।।३।।

मैं सुखी-दुखी मैं रंक-राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन।।४।।

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रकट ये दुःख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन।।५।।

शुभ-अशुभ बंध के फल मँझार, रति-अरति करै निजपदबिसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपको कष्टदान।।६।।

रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान।।७।।

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह।।८।।

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह।।९।।

धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म-जल-उपल नाव।
जे राग-द्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन।।१०।।

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव-भ्रमण छेव।
रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत।।११।।

जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान।।१२।।

एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि-रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास।।१३।।

जो ख्याति-लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध-विध देह-दाह।
आतम-अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।।१४।।

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पन्थ लाग।
जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतमसुपाग।।१५।।

तीसरी ढाल

(जोगीरासा/नरेन्द्र छन्द)

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिए।
आकुलता शिव माहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिए।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव-मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारन सो व्यवहारो।।१।।
परद्रव्यन तैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है।।
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई।।२।।
जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्ध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिन को, ज्यों का त्यों सरधानो।।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य-विशेषैं, दृढ़ प्रतीति उर आनो।।३।।
बहिरातम अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह-जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है।।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी।।४।।
मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टी, तीनों शिव मगचारी।।
सकल-निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी।।५।।
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल, वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता।।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर-आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै।।६।।

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दो, फरस वसू जाके हैं।।
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनुरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी।।७।।
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानों।
नियत वर्तना निस-दिन सो, व्यवहारकाल परमानों।।
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा।।८।।
ये ही आतम को दुख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बँधे-विधि सौं, सो बन्धन कबहुँ न सजिये।।
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बल तैं विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये।।९।।
सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इह विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी।।
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
ये हु मान समकित को कारण, अष्ट अंगजुत धारो।।१०।।
वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो।।
अष्ट अंग अरु दोष पचीसौं, तिन संक्षेपहु कहिये।
बिन जाने तैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये गहिये।।११।।
जिन-वच में शंका न धार, वृष भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै।।
निज-गुण अरु पर-औगुण ढाँके, वा निज धर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज-पर को सुदिढ़ावै।।१२।।
धर्मी सों गौ-बच्छ प्रीति-सम, कर जिन-धर्म दिपावै।
इन गुन तैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै।।

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप कौ, मद न ज्ञान कौ, धन-बल कौ मद भानै।।१३।।
तप कौ मद न मद जु प्रभुता कौ, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो येहि दोष वसु, समकित को मल ठानै।।
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै है।
जिन-मुनि जिन-श्रुत बिन कुगुरादिक, तिन्है न नमन करै है।।१४।।
दोष-रहित गुण-सहित सुधी जे, सम्यग्दरश सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं।।
गेही पै, गृह में न रचे ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है।
नगर-नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है।।१५।।
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षँढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी।।
तीनलोक तिहुँकाल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी।।१६।।
मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा।
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्रा।।
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।१७।।

चौथी ढाल

(दोहा)

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान।।१।।

(रोला)

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हू, प्रकाश दीपक तैं होई।।२।।

तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिन माहीं।
मति-श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मन तैं उपजाहीं।।
अवधिज्ञान मनपर्जय, दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानै जिय स्वच्छा।।३।।
सकल द्रव्य के गुन अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानैं एकै काल प्रकट, केवलि भगवन्ता।।
ज्ञान-समान न आन, जगत में सुख को कारण।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण।।४।।
कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माहिं त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायौ।
पै निज आतम-ज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ।।५।।
तातैं जिनवर कथित, तत्त्व-अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै।।
यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनिवौ जिनवानी।
इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधि समानी।।६।।
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै।।
तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो।।७।।
जे पूरब शिव गये, जाहिं अरु आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं।।
विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै।।८।।
पुण्य-पाप फल माहिं, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।।

लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ।।९।।
सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै।।
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न सँहारै।
पर-वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै।।१०।।
जल मृतिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल, नारि सों रहे विरत्ता।।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिशि गमन-प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै।।११।।
ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा।।
काहू की धन-हानि, किसी जय-हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनिज कृषी तैं।।१२।।
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै।।
राग-द्वेष करतार कथा, कबहूँ न सुनीजै।
और हु अनरथदण्ड, हेतु अघ तिन्हैं न कीजै।।१३।।
धरि उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
परब चतुष्टय माहिं, पाप तज प्रोषध धरिये।।
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहिं अहारै।।१४।।
बारह व्रत के अतीचार, पन पन न लगावै।
मरण समय संन्यास धारि, तसु दोष नशावै।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँ तैं चय नर-जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै।।१५।।

पाँचवी ढाल

बारह भावना

(चाल छन्द)

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव-भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंतैं अनुप्रेक्षा भाई।।१।।
इन चिन्तत सम-सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिव-सुख ठानै।।२।।
जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।३।।
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र-तन्त्र बहु होई, मरतैं न बचावे कोई।।४।।
चहुँ गति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार-असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा।।५।।
शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एक हि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।६।।
जल-पय ज्यौं जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा।।७।।
पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तैं मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी।।८।।
जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे।।९।।
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।१०।।
निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै।।११।।

किन हू न कर्यो न धरै को, षट् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक माहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता।।१२।।
अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ।।१३।।
जे भावमोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै।।१४।।
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी।।१५।।

छठवीं ढाल

(हरिगीतिका)

षट् काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवार तैं, हिंसा न भावित अवतरी।।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयौ गहैं।
अठ-दश सहस विधि शील धर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहैं।।१।।
अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चउ कर मही लखि, समिति ईर्य्या तैं चलैं।।
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग हर जिनके वचन, मुख-चन्द्र तैं अमृत झरैं।।२।।
छ्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर अशन को।
लैं तप बढ़ावन हेत नहिं तन, पोषते तजि रसन को।।
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखि कैं गहैं लखि कैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोकि तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं।।३।।
सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते।।
रस रूप गन्ध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय जयन पद पावने।।४।।

समता सम्हारैं थुति उचारैं वन्दना जिनदेव को।
नित करैं, श्रुति-रति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को।।
जिनके न न्हौन न दन्तधोवन, लेश अम्बर आवरन।
भू माहिं पिछली रयनि में, कछु शयन एकासन करन।।५।।
इक बार दिन में लैं अहार, खड़े अलप निज-पान में।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज-ध्यान में।।
अरि-मित्र महल-मसान कंचन-काँच निन्दन-थुतिकरन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन में, सदा समता धरन।।६।।
तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहिं भव-सुख-कदा।।
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रकटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब।।७।।
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज भाव को न्यारा किया।।
निज माहिं निज के हेतु, निज कर आपको आपै गह्यौ।
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, मँझार कछु भेद न रह्यौ।।८।।
जहँ ध्यान-ध्याता-ध्येय को, न विकल्प वच-भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ।।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत, ये तीनधा एकै लसा।।९।।
परमाण-नय-निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विषै।।
मैं साध्य-साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनि तैं।
चित्पिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुणकरण्ड, च्युति पुनि कलनि तैं।।१०।।
यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यौ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यौ।।
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि, चउ घाति विधि कानन दह्यौ।
सब लख्यौ केवलज्ञान करि, भविलोक कों शिवमग कह्यौ।।११।।

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिन माहिं अष्टम भू बसैं।
वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं।।
संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये।।१२।।
निज माहिं लोक अलोक, गुण-परजाय प्रतिबिम्बित भये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल यथा तथा शिव परिणये।।
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादि भ्रमण पंच प्रकार, तजि वर सुख लिया।।१३।।
मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-मल हरैं।।
इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरौ।
जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ।।१४।।
यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निज-पद बेइये।।
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो, पद यहै, क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि, दाव मत चूको यहै।।१५।।

(दोहा)

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वैशाख।
कर्‍यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख।।
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द-अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पाओ भव-कूल।।१६।।

****

भोंदू[1] धनहित अघ करे, अघ से धन नहिं होय।
धरम करत धन पाइये, मन-वच जानो सोय।।

1. अज्ञानी

भक्तामरस्तोत्रम्

(आचार्य मानतुंग कृत)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक्प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्।।१।।

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।२।।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्।।३।।

वक्तुं गुणान्गुण-समुद्र शशाङ्क-कान्तान्
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्।।४।।

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्।।५।।

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैकहेतुः।।६।।

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्त-लोकमलि-नीलमशेषमाशु
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम्॥७॥
मत्त्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ता-फलद्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः॥८॥
आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि॥९॥
नात्यद्भुतं भुवन-भूषण भूत-नाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति॥१०॥
दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः
क्षारं जलं जल-निधेरसितुं क इच्छेत्॥११॥
यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैक-ललाम-भूत।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति॥१२॥
वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि।
निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्।

बिम्बं कलङ्क–मलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाश–कल्पम् ।।१३ ।।
संपूर्ण–मण्डल–शशाङ्क–कला–कलाप–
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर–नाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ।।१४ ।।
चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि–
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्त–काल–मरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रि–शिखरं चलितं कदाचित् ।।१५ ।।
निर्धूम–वर्तिरपवर्जित–तैल–पूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ।।१६ ।।
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु गम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर–निरुद्ध–महा प्रभावः
सूर्यातिशायि–महिमासि मुनीन्द्र! लोके ।।१७ ।।
नित्योदयं दलित–मोह–महान्धकारं
गम्यं न राहु वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्तिः
विद्योतयज्जगदपूर्व–शशाङ्क–बिम्बम् ।।१८ ।।
किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दु–दलितेषु तमस्सु नाथ ।
निष्पन्न–शालि–वन–शालिनी जीव–लोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जल–भार–नम्रैः ।।१९ ।।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ।।२० ।।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ।।२१ ।।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ।।२२ ।।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ।।२३ ।।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं
ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ।।२४ ।।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्
त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात्।
धातासि धीर-शिव-मार्ग-विधेर्विधानाद्
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ।।२५ ।।

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।

तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि शोषणाय ।।२६ ।।
को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।
दोषैरुपात्तविविधाश्रय-जात-गर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ।।२७ ।।
उच्चैरशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ।।२८ ।।
सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता-वितानं
तुङ्गोदयाद्रि शिरसीव सहस्र रश्मेः ।।२९ ।।
कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम् ।
उद्यच्छशांक-शुचिनिर्झर-वारि-धार
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ।।३० ।।
छत्र त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम् ।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ।।३१ ।।
गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूति-दक्षः ।
सद्धर्मराज-जय-घोषण-घोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ।।३२ ।।

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि रुद्धा।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रपाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ।।३३ ।।
शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते
लोक-त्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ।।३४ ।।
स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणै प्र्रयोज्यः ।।३५ ।।
उन्निद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ती
पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ।।३६ ।।
इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि ।।३७ ।।
श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्तभ्रमद् भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्टवा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।।३८ ।।
भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः।

बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि

नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ।।३९ ।।

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं

दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम् ।

विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं

त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ।।४० ।।

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं

क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।

आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शङ्क

स्त्वन्नाम-नाग-दमनी ह्वदि यस्य पुंसः ।।४१ ।।

वल्गत्तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीमनाद-

माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।

उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं

त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ।।४२ ।।

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-

वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे ।

युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-

स्त्वत्पाद-पंकज-वनाश्रयिणो लभन्ते ।।४३ ।।

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र

पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ ।

रंगत्तरंग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा-

स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ।।४४ ।।

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः

शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः ।

त्वत्पाद-पंकज-रजोमृत-दिग्ध-देहा

मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः ।।४५ ।।

आपाद-कण्ठमुरुश्रृंखल-वेष्टितांगा
गाढं वृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जंघा।
त्वन्नाम-मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति।।४६।।

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-
संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते।।४७।।

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्त्रं
तं 'मानतुंग' मवशा समुपैति लक्ष्मीः।।४८।।

भक्तामर स्तोत्र (भाषा)

(पं. हेमराजजी कृत)

(दोहा)

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार।
धरम-धुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार।।

(चौपाई)

सुर-नत-मुकुट रतन-छवि करैं, अन्तर पाप-तिमिर सब हरैं।
जिनपद वंदों मन-वच-काय, भव-जल-पतित उतारन-सहाय।।१।।
श्रुत पारग इन्द्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव।
शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिस प्रभु की वरनों गुन-माल।।२।।
विबुध-वंद्य-पद मैं मति-हीन, हो निलज्ज थुति-मनसा कीन।
जल-प्रतिबिम्ब बुध को गहै, शशि-मण्डल बालक ही चहै।।३।।
गुन-समुद्र तुम गुन अविकार, कहत न सुर-गुरु पावें पार।
प्रलय-पवन-उद्धत जल-जन्तु, जलधि तिरै को भुज-बलवन्त।।४।।

सो मैं शक्तिहीन थुति करूँ, भक्तिभाव वश कुछ नहिं डरूँ।
ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेत, मृगपति सन्मुख जाय अचेत।।५।।
मैं शठ सुधी हँसन को धाम, मुझ तव भक्ति बुलावै राम।
ज्यों पिक अंब-कली-परभाव, मधु-ऋतु मधुर करै आराव।।६।।
तुम जस जंपत जन छिनमाहिं, जनम-जनम के पाप नशाहिं।
ज्यों रवि उगै फटै तत्काल, अलिवत नील निशा-तम-जाल।।७।।
तव प्रभावतैं कहूँ विचार, होसी यह थुति जन-मन-हार।
ज्यों जल-कमल-पत्र पै परै, मुक्ताफल की द्युति विस्तरै।।८।।
तुम गुन-महिमा हत-दुःख-दोष, सो तो दूर रहो सुख-पोष।
पाप-विनाशक है तुम नाम, कमल-विकासी ज्यों रवि-धाम।।९।।
नहिं अचम्भ जो होहिं तुरन्त, तुमसे तुम गुण वरणत संत।
जो अधीन को आप समान, करै न सो निंदित धनवान।।१०।।
इकटक जन तुमको अविलोय, अवरविषै रति करै न सोय।
को करि क्षीर-जलधि जल पान, क्षार नीर पीवै मतिमान।।११।।
प्रभु तुम वीतराग गुन-लीन, जिन परमाणु देह तुम कीन।
हैं तितने ही ते परमाणु, यातैं तुम सम रूप न आनु।।१२।।
कहँ तुम मुख अनुपम अविकार, सुर-नर-नाग-नयन-मनहार।
कहाँ चन्द्र-मण्डल सकलंक, दिन में ढाक-पत्र सम रंक।।१३।।
पूरन-चन्द्र-ज्योति छबिवंत, तुम गुन तीन जगत लंघंत।
एक नाथ त्रिभुवन आधार, तिन विचरत को करै निवार।।१४।।
जो सुर-तियविभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तो न अचंभ।
अचल चलावै प्रलय समीर, मेरु-शिखर डगमगै न धीर।।१५।।
धूमरहित वाती गत नेह, परकाशै त्रिभुवन घर एह।
वात-गम्य नाहीं परचण्ड, अपर दीप तुम बलो अखण्ड।।१६।।
छिपहु न लुपहु राहुकी छाहिं, जग-परकाशक हो छिनमाहिं।
घन अनवर्त्त दाह विनिवार, रवितैं अधिक धरो गुणसार।।१७।।

सदा उदित विदलित मनमोह, विघटित नेह राहु अविरोह।
तुम मुख–कमल अपूरब चंद, जगत विकासी जोति अमन्द।।१८।।
निशदिन शशि रवि को नहिं काम, तुम मुखचंद हरै तम घाम।
जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघ तो कौनहु काज।।१९।।
जो सुबोध सोहै तुममाहिं, हरि हर आदिकमें सो नाहिं।
जो दुति महा–रतन में होय, काँच–खण्ड पावै नहिं सोय।।२०।।

(नाराच छन्द)

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया।
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया।।
कछु न तोहि देख के जहाँ तुही विशेखिया।
मनोग चित्त–चोर और भूल हूँ न पेखिया।।२१।।
अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं।
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं।।
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै।
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै।।२२।।
पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो।
कहैं मुनीश अन्धकार–नाश को सुभान हो।।
महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके।
न और मोहि मोखपंथ देह तोहि टालके।।२३।।
अनन्त नित्य चित्त की अगम्य रम्य आदि हो।
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो।।
महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो।
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो।।२४।।
तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धि के प्रमानतैं।
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं।।
तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं।
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थ के विचारतैं।।२५।।

नमों करूँ जिनेश तोहि आपदा निवार हो।
नमों करूँ सु भूरि भूमि-लोक के सिंगार हो।।
नमों करूँ भवाब्धि-नीर-राशि-शोष-हेतु हो।
नमों करूँ महेश तोहि मोखपंथ देतु हो।।२६।।

(चौपाई)

तुम जिन पूरन गुन-गन भरे, दोष गर्व करि तुम परिहरे।
और देव-गण आश्रय पाय, स्वप्न न देखे तुम फिर आय।।२७।।
तरु अशोक-तर किरन उदार, तुम तन शोभित है अविकार।
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत, दिनकर दिपै तिमिर निहनंत।।२८।।
सिंहासन मनि-किरन-विचित्र, तापर कंचन-वरन पवित्र।
तुम तन शोभित किरन-विथार, ज्यों उदयाचल रवि तमहार।।२९।।
कुन्द-पहुप-सित-चमर ढुरंत, कनक-वरन तुम तन शोभंत।
ज्यों सुमेरु-तट निर्मल कांति, झरना झरैं नीर उमगांति।।३०।।
ऊँचे रहैं सूर दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपैं अगोप।
तीन लोक की प्रभुता कहैं, मोती-झालरसौं छबि लहैं।।३१।।
दुन्दुभि-शब्द गहर गम्भीर, चहुँ दिशि होय तुम्हारे धीर।
त्रिभुवन-जन शिवसंगम करैं, मानूँ जय-जय रव उच्चरै।।३२।।
मन्द पवन गन्धोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पहुप सुवृष्ट।
देव करैं विकसित दल सार, मानौं द्विज-पंकति अवतार।।३३।।
तुम तन-भामण्डल जिनचन्द, सब दुतिवंत करत है मन्द।
कोटिशंख रवि तेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करै अछाय।।३४।।
स्वर्ग-मोख-मारग संकेत, परम-धरम उपदेशन हेत।
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध, सब भाषागर्भित हित साध।।३५।।

(दोहा)

विकसित-सुवरन-कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहिं।
तुम पद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं।।३६।।

ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय।
सूरज में जो जोत है, नहिं तारा-गण होय।।३७।।

(षट्पद)

मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि-कुल झंकारै।
तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं।।
काल-वरन विकराल कालवत सनमुख आवैं।
ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजावैं।।
देखि गयन्द न भय करै, तुम पद-महिमा छीन।
विपति रहित सम्पति सहित, वरतैं भक्त अदीन।।३८।।
अति मद-मत्त-गयन्द कुम्भथल नखन विदारै।
मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै।।
बाँकी दाढ़ विशाल वदन में रसना लोलै।
भीम भयानक रूप देखि जन थरहर डोलै।।
ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर आयो होय।
शरण गये तुम चरण की, बाधा करै न सोय।।३९।।
प्रलय-पवनकर उठी आग जो तास पटन्तर।
बमैं फुलिंग शिखा उतंग पर जलैं निरन्तर।।
जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानों।
तडतडाट दव-अनल जोर चहुँ दिशा उठानो।।
सो इक छिन में उपशमें, नाम-नीर तुम लेत।
होय सरोवर परिनमै, विकसित कमल समेत।।४०।।
कोकिल-कंठ-समान श्याम-तन क्रोध जलंता।
रक्त-नयन फुंकार मार विष-कण उगलन्ता।।
फण को ऊँचो करै वेग ही सन्मुख धाया।
तब जन होय निशंक देख फणिपति को आया।।
जो चाँपै निज पगतलैं, व्यापै विष न लगार।
नाग-दमनि तुम नाम की, है जिनके आधार।।४१।।

जिस रनमाहिं भयानक रव कर रहे तुरंगम।
घन-से गज गरजाहिं मत्त मानो गिरि जंगम।।
अति कोलाहल माहिं बात जहँ नाहिं सुनीजै।
राजन को परचंड, देख बल धीरज छीजै।।
नाथ तिहारे नामतैं, सो छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अन्धकार विनशाय।।४२।।
मारै जहाँ गयन्द कुम्भ हथियार विदारै।
उमगै रुधिर प्रवाह बेग जल-सम विस्तारै।।
होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल पूरे।
तिस रन में जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे।।
दुर्जय अरिकुल जीत के, जय पावैं निकलंक।
तुम पद-पंकज मन बसै, ते नर सदा निशंक।।४३।।
नक्र चक्र मगरादि मच्छ करि भय उपजावै।
जामैं बड़वा अग्नि दाहतैं नीर जलावै।
पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी।
गरजै अतिगम्भीर लहर की गिनती न ताकी।।
सुखसों तिरै समुद्र को, जे तुम गुन सुमराहिं।
लोल कलोलन के शिखर, पार यान ले जाहिं।।४४।।
महा जलोदर रोग भार पीड़ित नर जे हैं।
वात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहै हैं।।
सोचत रहैं उदास नाहिं जीवन की आशा।
अति घिनावनी देह धरैं दुर्गन्धि-निवासा।।
तुम पद-पंकज-धूल को, जो लावैं निज-अंग।
ते नीरोग शरीर लहि, छिन में होय अनंग।।४५।।
पाँव कंठतैं जकर बाँध साँकल अति भारी।
गाढ़ी बेड़ी पैरमाहिं जिन जाँघ विदारी।।
भूख प्यास चिंता शरीर दुःखजे विललाने।
सरन नाहिं जिन कोय भूप के बन्दीखाने।।

तुम सुमरत स्वयमेव ही, बन्धन सब खुल जाहिं।
छिनमें ते संपति लहैं, चिंता भय विनसाहिं।।४६।।

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल।
फणपति रण परचंड नीर-निधि रोग महाबल।।
बन्धन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै।
तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै।।

इस अपार संसार में, शरन नाहिं प्रभु कोय।
यातैं तुम पद-भक्त को, भक्ति सहाई होय।।४७।।

यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन सँवारी।
विविध-वर्णमय-पुहुप गूँथ मैं भक्ति विथारी।।
जे नर पहिरे कंठ भावना मन में भावैं।
'मानतुंग' ते निजाधीन-शिव-लछमी पावैं।।

भाषा भक्तामर कियो, 'हेमराज' हित हेत।
जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिव-खेत।।४८।।

(दोहा)

****

दया दान पूजा शील पूँजी सों अजानपने,
जितनी ही तू अनादि काल में कमायगो।
तेरे बिन विवेक की कमाई न रहे हाथ,
भेद-ज्ञान बिना एक समय में गमायगो।।
अमल अखंडित स्वरूप शुद्ध चिदानन्द,
याके वणिज माहिं एक समय जो रमायगो।
मेरी समझ मान जीव अपने प्रताप आप,
एक समय की कमाई तू अनन्त काल खायगो।।

भक्तामर : काव्य कलश

(डॉ. अखिल बंसल कृत)

जो मुकुटों में लगी मणी, देवों को कांतिमान करती।
पद पंकज आभा से शोभित, जन–जन के संकट हरती।।
पतित बहुत पावन हैं होते, भव सागर तिर जाते हैं।
जिन चरणों में श्रद्धा रखते, क्षण में पाप पलाते हैं।। १ ।।

द्वादशांग वाणी के ज्ञाता, प्रखर बुद्धि के धारी वो।
इन्द्रों के द्वारा हैं पूजित, तीन लोक हितकारी जो।।
प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का, मिलकर सब गुणगान करें।
धरम धुरंधर करुणासागर, के चरणों में ध्यान धरें।। २ ।।

देवों द्वारा आप पूज्य हो, सारे जग के नायक हो।
करता हूँ सर्वस्व समर्पण, तुम प्रभु सुख के दायक हो।।
चंद्र बिम्ब ज्यों जल में झलकत, बालक पकड़े बिना विचार।
मैं तो अल्पबुद्धि हूँ स्वामी, लाज छोड़ आया प्रभु द्वार।। 3 ।।

मैं हूँ अल्पबुद्धि का धारक, सुर–गुरु सम न करूं बखान।
चंद्रकांति सम उज्ज्वल हो तुम, कुन्दधवल हो महिमावान।।
प्रलय काल तूफानी तेवर, मगरमच्छ होते गतिमान।
कैसे बच सकता है वह भी, जो भुज से बलवंत महान।। ४ ।।

मुनिजन के आराध्य देव हो, गुण अनंत के हो भण्डार।
मैं तो शक्तिहीन हूँ स्वामी, भक्तिवश आया प्रभुद्वार।।
ज्यों अपने मृगछौना खातिर, विसरजात हिरणी औकात।
भिड़ जाती वह सिंहराज से, त्यों जिनवर में भी गुण गात।। ५ ।।

हूँ अल्पज्ञ शास्त्र का ज्ञाता, हँसी उड़ावें विद्वद्जन।
पर भक्तिवश दौड़ा आता, खिल जाता है अन्तर्मन।।
जैसे ऋतु बसंत में कोयल, आम्र मंजरी पा गुंजाय।
वैसे ही प्रभु निकट तुम्हारे, रोम-रोम पुलकित हो जाय।। ६ ।।

जिनवर का जो करें स्तवन, संचित पाप विनश जाते।
पल भर में वह छिन्न-भिन्न हो, स्वयं विलोपित हो जाते।।
'अखिल' लोक में व्याप्त अंधेरा, सूर्य किरण हर लेती है।
भक्तिलीन होने वालों के, कर्मों का क्षय करती है।।७।।

मैं तो हूँ अल्पज्ञ सरीखा, मन भावों को लेकर साथ।
आया हूँ जिनवर के द्वारे, सदा नवाता चरणन माथ।।
कमल पत्र पर जलकण गिरता, मोतीवत दमके दिन रात।
मनोभाव स्तोत्र संजोया, आनंदित क्षण तव सौगात।।८।।

सहस्र-रश्मि स्पर्श करें जब, जलज सरोवर प्रातःकाल।
खिल उठते शतदल प्रफुल्ल हो, भक्तिभाव का फलित विशाल।।
हे जिनदेव! आपकी महिमा, किन शब्दों में गाई जाय।
सुनते हैं जो कथा आपकी, उनके अघ हैं तुरत नशाय।।९।।

तन्मयता से करें स्तुति, जो वे जन पुण्य कमाते हैं।
हे जगदीश्वर! क्या अचरज है, तुम-सम वे बन जाते हैं।।
ऐसे स्वामी लाभ न देवें, जो समृद्ध कहाते हैं।
स्वाश्रित को निज-सम करने में, किंचित् भाव न लाते हैं।।१०।।

जो भी तुम्हें देखता जिनवर, वह अतीव सुख पाता है।
फिर क्या और किसी को देखें, कोई नहीं सुहाता है।।
क्षीर–सिंधु अमृत–पय पीकर, लवण सिंधु न भाता है।
वीतरागता मन को भावे, वहीं चित्त रम जाता है।।११।।

जो थे शुभ परमाणु जगत में, उनसे निर्मित ऋषभ जिनेश।
तुम त्रिभुवन के अतुलनीय प्रभु, मूर्तिमान सौंदर्य दिनेश।।
तुम ही अद्वितीय अवनी पर, नहीं किसी का ऐसा रूप।
शांत रूप पुद्गल परमाणु, संग विचरते हैं तव भूप।।१२।।

नेत्र–रम्य मुखमण्डल सुर–सम, तीनों लोक विजेता हो।
किससे उपमा करें आपकी, भू–मण्डल के नेता हो।।
शशिसमान न कह सकता मैं, युतकलंक दिन में द्युतिहीन।
उसी भांति जो ढाक पाण्डु–सा, मुरझा कर हो जाता छीन।।१३।।

निधि अनंत के स्वामी हो तुम, सभी कलाओं से भरपूर।
स्वाश्रित रहते हैं जो प्राणी, उनको कभी न करते दूर।।
पूर्णचंद्र की विमल प्रभावत्, तव गुण लांघे तीनों लोक।
आप सदृश स्वामी नहीं जग में, शरण पाय विचरें बेरोक।।१४।।

जो विकार भावों को लेकर, आती हैं सुर बालाएँ।
तनिक चित्त भी हर न सकें वे, धधक रही जो ज्वालाएँ।।
प्रचण्ड़ पवन का वेग तनिक भी, हिला न पाया मेरु शिखर।
फिर इसमें आश्चर्य कहाँ का, खड़े रहे जो आप निडर।।१५।।

आप हो ऐसे अद्भुत दीपक, जो प्रकाश फैलाते हो।
तेल-रहित बिनधूम्र बाति जल, तीनों लोक दिखाते हो।।
वायु-वेग से उखड़े कानन, पर दीपक न बुझ पाया।
स्वपर-प्रकाशक अनुपम था वह, जगत राह जो दिखलाया।।१६।।

भले अस्त हो सांध्य दिवाकर, और ढके भी राहु प्रबल।
परन्तु आप हैं बड़े विलक्षण, रखते हो जो ज्ञान विमल।।
अनंत ऋद्धि से युक्त प्रभाकर, तीन लोक में फैला तेज।
सघन घनों में कहाँ शक्ति वह, जो कर दे तुमको निस्तेज।।१७।।

चन्द्रबिम्ब सम रूप तुम्हारा, मोह महातम हरता है।
दबता राहु न मेघों से पर, जग उजियारा करता है।।
अंचल तम को हरे निशाकर, तुम करते जग का उद्धार।
मुख-सरोज है विश्वप्रकाशक, कांतिरूप तेरा अवतार।।१८।।

अंधकार जब होय निशा का, या रवि-शशि का दिव्य प्रकाश।
तव मुखेन्दु हर लेता तम को, करता उसका सत्यानाश।।
मोह महातम मिट जाता सब, फैले आभा जब चहुंओर।
वन्य शालि के खेत पकें जब, व्यर्थ गगन में घन का शोर।।१९।।

तुम तो सम्यग्ज्ञान-दिवाकर, स्वपर-प्रकाशक महिमावान।
आभा का किंचित् शतांश भी, पा न सके हरि-हर-भगवान।।
अद्भुत कांतिपूर्ण मणिधारक, नैसर्गिक है प्रभा अनंत।
कांच कभी क्या बन सकता है, मणिसमान रविकर द्युतिमंत।।२०।।

अवलोकन मैंने किया आज, थे हरिहर सब मिथ्या भगवन।
पर निरख आपकी सम दृष्टि, मन में पाया संतोष गहन।।
जो वीतरागता की मुद्रा, मेरे मन को अब भाई है।
मुझे कहीं न कोई मिला, प्रभुता मम हृदय समाई है।।२१।।

इस भूमि पर शत सुत जनती, सत् नारी शत–शत है बार।
अनुपम सुत को जनने वाली, महितल पर कोई इक नार।।
सर्व दिशा तारा गण व्यापै, नहीं जगह कोई खाली।
महाप्रतापी पूर्व दिशा ही, दिनकर को जनने वाली।।२२।।

परम पुरुष हो तेजमयी तुम, मोह–तिमिर हरने वाले।
राग–द्वेष मल से निर्मल हो, सम्यक् पथ चलने वाले।।
मुक्तिमार्ग के पथिक तुम्ही हो, नहीं जगत में कोई और।
मृत्युंजय अधिकारी बनने, नहीं मुझे है कोई ठौर।।२३।।

आदि, अचिन्त्य, विभु, योगीश्वर, आदि ब्रह्म कोई कहता।
अक्षय, ईश्वर या अनंत जो, काम विकारों के हरता।
अमल विमल हो ज्ञान स्वरूपी, निर्मलता के हो आगर ।
धूमकेतु वत् जगदीश्वर तुम, अनंत गुणों के हो सागर ।।२४।।

सुख–सम्वर्द्धक ज्ञान तुम्हारा, कहता शंकर हो करुणेश।
आद्य प्रवर्तक मुक्तिमार्ग के, तुम ही ब्रह्मा, विष्णु ,महेश।।
जगतपूज्य हितकारी तुम हो, तुम ही तो हो बुद्ध जिनेश।
पुरुषोत्तम तुम हो जगती के, तुमको ही कहते वृषभेष।।२५।।

तीनों लोकों का दुख हरते, अत: आपको नमन करूँ।
निर्मल भूषण हो क्षिति तल के, प्रभुवर तुमको नमन करूँ।।
'अखिल' विश्व के तुम परमेश्वर, नाथ आपको नमन करूँ।
भव समुद्र शोषक हो जिनवर, भगवन! तुमको नमन करूँ।।२६।।

सुगुण सिमटकर तुझ में व्यापे, मिला न भू पर कोई थान।
इसमें क्या आश्चर्य किसी को, दुर्गुण आश्रय नहीं जहान।।
स्वप्नों में भी तनिक न आवें, जो अवगुण से करते प्रीत।
सद्‌गुण जिनमें विद्यमान हैं, सदा मिली है उनको जीत।।२७।।

कंचन जैसा दमके यह तन, श्याम घटाएं हैं घनघोर।
तेजस्वी दिनकर की किरणें, तम को हरती हैं चहुं ओर।।
अशोक निकट तरु विभा विभूषित, विमल प्रभा परिपूर्ण विशाल।
दिव्य रूप सबको प्रिय लगता, रवि-रश्मि वत् फैला जाल।।२८।।

उदयाचल के शैल शिखर पर, करे निशातम का अवसान।
कनक कांति वत बिम्ब मनोहर, उदित उदय हो महिमावान।।
मणि-मुक्ता से युक्त सिंहासन, स्वयं विराजे हो भगवान।
सूर्यबिम्ब सम आलोकित हो, तभी कहें प्रभु बड़े महान।।२९।।

मेरु-शिखर के मध्य स्वर्ण-तट, अनुपम सुषमा का आगार।
चंद्रकांति सम जल का झरना, झर-झर झरे बहे जलधार।।
श्वेत शुभ्र वत चंवर ढुराते, मिलकर करते सब गुणगान।
कंचन-सी काया के धारक, देह आपकी आभावान।।३०।।

मोती की झालर से चमके, चंद्रप्रभा अपने ही आप ।
तीन छत्र मस्तक पर शोभित, पास न आवै सूरज ताप।।
मार्तण्ड की प्रखर रश्मियां, हो जाती हैं तेज विहीन।
मानो आप स्वयं कहते हो, जग में और न कोई प्रवीन।।३१।।

समवशरण की आभा से, जग का विषाद मिट जाता है।
तीनों लोक खुशी से झूमें, गीत सुयश का गाता है।।
तीर्थंकर की मधुर स्वरों में, नाद गूँजती है चहुँ ओर।
विजय-दुन्दुभि गूंजे नभ में, उसका कहीं ओर ना छोर।।३२।।

पारिजात मंदार मनोहर, कल्प-विटप के हैं उपवन।
मंद समीरन के झोंकों से, खिल जाता है अन्तर्मन।।
ऐसे दिव्य पुष्प की वर्षा, नभ-मण्डल को महकाती।
श्री-मुख से वचनों को सुनकर, गंध सुवासित फैलाती।।३३।।

भामण्डल का तेजस वर्तुल, अति शोभित कर देता है।
त्रिजग कांति फीकी कर देता, सभी कष्ट हर लेता है।।
कोटि दिवाकर के सम ज्योति, फैला देते प्रबल प्रताप।
शशिमण्डल सी उसकी आभा, तम निष्प्रभ हो अपने आप ।।३४।।

निरक्षरी अनहद वाणी की, महिमा देखी अपरम्पार।
जो भी ग्राह्य करे जीवन में, खुलते स्वर्ग मुक्ति के द्वार।।
सत्यधर्म दिग्दर्श करा दे, अमर तत्त्व का होवे भान।
सुर-नर-साधु हों या पशु जन, सभी करें अपना कल्यान।।३५।।

सुषमा लख भाषित होता है, नख से फूटै दिव्य प्रकाश।
स्वर्ण जलज नव कांति फैले, झिलमिल करता है आकाश।।
जहाँ जहाँ पग विमल पड़े हैं, कनक–कुसुम को देव रचाय।
उन चरणों को छूकर पावन, प्रमुदित मन से महिमा गाय।।३६।।

समवसरण की दिव्य विभूति, केवल जिनवर ने पाई।
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी, सबने प्रभु महिमा गाई।।
नहीं कुदेवों में सौन्दर्य, कभी किसी ने देखा है।
रवि चमकीला गगनांचल पर, सब ग्रह आभा हरता है।।३७।।

मस्ती में दिखता मतंग जब, गालों से झरती मदधार।
मत्त मधुप–दल मधुरस पीने, मंड़रा कर करते गुंजार।।
ऐरावत सम उद्धत होकर, गज आक्रामक हो जाते।
शरण आपकी पाने वाले, किंचित् भी न घबराते।।३८।।

मत्त गजों के छिन्न–भिन्न, मस्तक से गिरते हैं भू तल।
गज मुक्ताओं से पट जाता, कान्तिमान यह अवनीतल।।
क्रोधित सिंह छलांगें भरकर, पहुंच जाय जब तुंग शिखर।
शांत भाव से वह भी बैठे, जहाँ विराजे श्री जिनवर।।३९।।

प्रलयकाल दहकाता हो जब, धधक रही ज्वाला सब ओर।
प्रबल वायु का वेग गहन हो, अग्नि कणों पर चले न जोर।।
दावानल जब नर्तन करती, विश्व विनाश के हो उन्मुख।
नाम जपे जैसे ही प्रभु का, बहती जलधार मिले सब सुख।।४०।।

लाल नेत्र कोयल वत काला, फण फैलाए बड़ा विशाल।
जिसे देख थर–थर सब कांपे, वह भुजंग है अति विकराल।।
नाम नागदम मणि हो जिसके, वह निर्द्वन्द्व विचरता है।
रखकर पग वह क्रुद्ध नाग पर, निशंकित डग भरता है।।४१।।

जिस रणभूमि में गज गर्जें, हय भी भरें जहां हुंकार।
वीर नरेशों की सेना का, कोलाहल हो सीमा पार।।
दूर अकेले बैठे लेता, शक्तिहीन नर प्रभु का नाम।
सूर्य तिमिर जैसे हर लेता, दुश्मन का हो काम तमाम।।४२।।

क्षत–विक्षत कुंजर तन होते, जब भालों से पड़ती मार।
वीर लड़ाकू आतुर होकर, शत्रु पक्ष पर करते वार।।
जो अरण्य में आश्रय लेकर, चरण–कमल बैठे जिनराज।
ऐसे भक्त विजयश्री पाते, मिले उन्हें अनुपम सुख साज।।४३।।

बड़वानल की भीषण लहरें, उठें सिंधु लेकर तूफान।
भंवर चक्र में जैसे फँसते, जलचर जीव मगर बलवान।।
चारों ओर बवंडर भारी, बीचों बीच जलधि जलयान।
विपदाओं से पार उतरते, करें आपका जो नित ध्यान।।४४।।

रोग जलोदर जैसी व्याधि, जिसे असह्य पीड़ा करती।
जीने की जो आश छोड़ते, नहीं त्रास उनकी घटती।।
आकुल–व्याकुल रुग्ण दुखी तव, पदरज शीश लगाते हैं।
स्वस्थ निरोगी सुंदर काया, कामदेव सम पाते हैं।।४५।।

लोह शृंखलाओं से बँधकर, नख–शिख तक जकड़ा हो तन।
रगड़ खाय छिल जाती जंघा, अती त्रस्त उत्पीड़न मन।।
ऐसे कारागृह का जीवन, जो भी जीते बंदी जन।
नाम आपका जपते भगवन, तत्क्षण खुल जाते बंधन।।४६।।

निर्मल गुण का करें स्तवन, प्रतिदिन चिंतन और मनन।
भयाक्रांत पीड़ित हों कितने, सभी दुखों का होय हनन।।
हाथी, सिंह और दावानल, सर्प, युद्ध, सागर, प्रहार।
सभी अष्ट भय करें पलायन, गाओ गीत मंगलाचार।।४७।।

बहुरंगी भावों से पुष्पित, उपवन है यह दिव्य ललाम।
भक्तिभाव से गूंथा इसको, 'अखिल' कुसुम चुनकर अभिराम।।
'मानतुंग'की सुंदर रचना, सभी भव्यजन याद करें।
श्रद्धा सहित पठन–पाठन कर, मोक्ष लक्ष्मी तुरत वरें।।४८।।

****

ऐसै जिनराज ताहि वंदत बनारसी

जामैं लोकालोक के सुभाव प्रतिभासे सब,
जगी, ग्यान सकति विमल जैसी आरसी।
दर्शन उद्योत लीयौ अंतराय अंत कीयौ,
गयौ महा मोह भयौ परम महारसी।।
संन्यासी सहज जोगी जोग सौं उदासी जामैं,
प्रकृति पच्चासी लगि रही जरि छारसी।
सौहै घट–मंदिर मैं चेतन प्रगटरूप,
ऐसे जिनराज ताहि वंदत बनारसी।।२९।।

–कविवर बनारसीदासजी : समयसार नाटक, जीवद्वार

महावीराष्टक स्तोत्र

(कविवर भागचन्दजी कृत)

(शिखरिणी)

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचिताः,
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि लसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षीमार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)॥१॥

अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्द-रहितम्,
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)॥२॥

नमन्नाकेन्द्राली मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलं,
लसत्-पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनु भृताम्।
भव ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)॥३॥

यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्-स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुखनिधिः।
लभंते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमु तदा,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)॥४॥

कनत्-स्वर्णाभासोऽप्यपगत- तनुर्ज्ञान-निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थ-तनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगत-भवरागोऽद्भुत-गतिः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)॥५॥

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
वृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)॥६॥

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ।।७।।

महा-मोहातंक-प्रशमन-परा-कस्मिन्भिषग्,
निरापेक्षो बंधुर्विदित-महिमा मंगलकरः।
शरण्यः साधूनां भव-भय-भृतामुत्तम-गुणो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ।।८।।

(अनुष्टुप)

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
यःपठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम्।।

****

मंगलाष्टक

(शार्दूलविक्रीडित)

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मंगलम्।।१।।

श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र-मुकुट- प्रद्योत-रत्नप्रभा
भास्वत्पाद-नखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिनसिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।२।।

सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्तिश्री नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मंगलम्।।३।।

नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णुप्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशतिः,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।४।।

ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगता पंच ये,
ये चाष्टांगमहानिमित्तकुशला येऽष्टाविधाश्चारणाः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।५।।

कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।६।।

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रौप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।७।।

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मंगलम्।।८।।

इत्थं श्री जिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसंपत्प्रदम्,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणां मुखात्।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रियते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि।।९।।

****

समाधिमरण भाषा

(पं. सूरचन्दजी कृत)

(नरेन्द्र छन्द)

वन्दौ श्री अरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जग में दुःख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई।।
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माहीं।
अन्त समय में यह वर माँगूँ, सो दीजे जग राई।।१।।
भव-भव में तन धार नये मैं, भव-भव शुभ संग पायो।
भव-भव में नृप रिद्धि लई मैं, मात-पिता सुत थायो।।
भव-भव में तन पुरुष-तनों धर, नारी हू तन लीनों।
भव-भव में मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनों।।२।।
भव-भव में सुरपदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव-भव में गति नरकतनी धर, दुख पाये विधि योगे।।
भव-भव में तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी।
भव-भव में साधर्मी जन को, संग मिल्यो हितकारी।।३।।
भव-भव में जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो।
भव-भव में मैं समवसरण में, देख्यो जिनगुण भीनो।।
एती वस्तु मिली भव-भव में, सम्यक्गुण नहिं पायो।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो।।४।।
काल अनादि भयो जग भ्रमतैं, सदा कुमरणहिं कीनों।
एक बार हूँ सम्यक्युत मैं, निज आतम नहिं चीनों।।
जो निज-पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुःख काँई।
देह विनासी मैं निजभासी, शांति स्वरूप सदाई।।५।।
विषय-कषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो।
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो।।
यों कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो।।६।।

अब यह अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह माँगो।
रोग जनित पीड़ा मत होवो, अरु कषाय मत जागो।।
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजै।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजै।।७।।
यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै।।
अतिदुर्गन्ध अपावनसों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै।
देह विनासी, जिय अविनासी, नित्यस्वरूप कहावै।।८।।
यह तन जीर्ण कुटी-सम आतम, यातैं प्रीति न कीजै।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामैं क्या छीजै।।
मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो।।९।।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माहीं।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं।।
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै।
क्लेशभाव को त्याग सयाने, समताभाव धरीजै।।१०।।
जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई।।
राग-द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुःखदाई।
अन्त समय में समता धारो, परभव पन्थ सहाई।।११।।
कर्म महादुठ बैरी मेरो, तासेती दुःख पावै।
तन पिंजर में बन्द कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै।।
भूख तृषा दुःख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़ै।
मृत्युराज अब आय दयाकर, तनपिंजरसों काढ़ै।।१२।।
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये।
गन्ध सुगन्धित अतर लगाये, षट्रस असन कराये।।

रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तनकेरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी।।१३।।
मृत्युराय को शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊँ।
जामैं सम्यकरतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ।।
देखो तन-सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं।
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई।।१४।।
यह सब मोह बढ़ावन हारे, जिय को दुर्गतिदाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता।।
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो संपति तेती।।१५।।
चौ आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुक्ति में जावो।।
मृत्यु कल्पद्रुम-सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारै।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे।।१६।।
इस तन में क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन हो है।
तेजकांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है।।
पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै।
ता पर भी ममता नहिं छोड़ै, समता उर नहिं लावै।।१७।।
मृत्युराज उपकारी जिय को, तनसों तोहि छुड़ावै।
नातर या तन बन्दीगृह में, पर्यो-पर्यो बिललावै।।
पुद्‌गल के परमाणु मिलकर, पिण्डरूप तन भासी।
याही मूरत मैं अमूरती, ज्ञान ज्योति गुणखासी।।१८।।
रोग-शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्‌गल लारै।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे।।
या तनसों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है।
खान-पान दे याको पोष्यो, अब सम-भाव ठन्यो है।।१९।।

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो।
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो।।
तन विनशनतैं नाश जानि निज, यह अयान दुःखदाई।
कुटुम्ब आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई।।२०।।
अब निज भेद जथारथ समझ्यो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी।
उपजैं विनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी।।
इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल सागै।
मैं जब अपनो रूप विचारों, तब वे सब दुख भागैं।।२१।।
बिन समता तनऽनंत धरे मैं, तिन में ये दुख पायो।
शस्त्रघाततैं अनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो।।
बार अनन्तहि अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो।।२२।।
बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराज को भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई।।
यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप तप कीजै।
जप तप बिन इस जग के माहीं, कोई कभी ना सीजै।।२३।।
स्वर्ग सम्पदा तपसों पावै, तपसों कर्म नसावै।
तप ही सों शिवकामिनिपति ह्वै, यासों तप चित लावै।।
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई।
मात-पिता सुत बांधव तिरिया, ये सब हैं दुःखदाई।।२४।।
मृत्यु समय में मोह करें ये, तातैं आरत हो है।
आरततैं गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है।।
और परीग्रह जेते जग में, तिनसों प्रीत न कीजे।
परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजे।।२५।।
जे-जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो।।

जो परभव में संग चलें तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजै।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजै।।२६।।
दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो।
षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो।।
चारों परवी प्रोषध कीजे, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो।।२७।।
अन्त समय में यह शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावें, ऋद्धि देहिं अधिकाई।।
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाकैं।
जा सेती गति चार दूर कर, बसहु मोक्षपुर जाकैं।।२८।।
मन थिरता करकै तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं।।
आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ पावन, आराधन उरधारी।।२९।।
तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाकै।
भावसहित अनुमोदे तासों, दुर्गति होय न ताकै।।
अरु समता निज उर में आवै, भाव अधीरज जावै।
यों निश-दिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विचलावै।।३०।।
धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुग बच्चाजुत, पाँव भख्यो दुःखकारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३१।।
धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहीं, आतम सों हित लायो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३२।।

देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीश जलै जिम लकड़ी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३३।।
सनतकुमार मुनी के तन में, कुष्ठ वेदना व्यापी।
छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्त्यो गुण आपी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३४।।
श्रेणिक सुत गंगा में डूब्यो, तब जिननाम चितार्‌यो।
धर सलेखना परिग्रह छोड्यो, शुद्ध भाव उर धार्‌यो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३५।।
समंतभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
तो दुःख में मुनि नेक न डिगियो, चिन्त्यौ निजगुण भाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३६।।
ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबी तट जानो।
नद्‌दी में मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३७।।
धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३८।।
श्रीदत मुनि को पूर्वजन्म को, बैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुख शीततनो सो, सह्यो साध मन लाके।।

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३९।।
वृषभसेन मुनि उष्ण शिला पर, ध्यान धर्यो मनलाई।
सूर्यघाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४०।।
अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई।
वैरी चण्ड ने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४१।।
विद्युतचर ने बहु दुख पायो, तो भी धीर न त्यागी।
शुभभावनसों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४२।।
पुत्र चिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घाता।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, ता पर निज गुण राता।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४३।।
दण्डकनामा मुनि की देही, बाणन कर अरि भेदी।
ता पर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४४।।
अभिनन्दन मुनि आदि पाँच सौ, घानी पेलि जु मारे।
तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरबकर्म विचारे।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४५।।

चाणक मुनि गौघर के माहीं, मून्द अगिनि परजाल्यो।
श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हाल्यो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४६।।
सात शतक मुनिवर दुःख पायो, हथनापुर में जानो।
बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४७।।
लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये।
पाँचों पांडव मुनि के तन में, तौ भी नाहिं चिगाये।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४८।।
और अनेक भये इस जग में, समता-रस के स्वादी।
वे ही हमको हों सुखदाता, हरि हैं टेव प्रमादी।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों।
ये ही मोकों सुख के दाता, इन्हें सदा उर धारों।।४९।।
यों समाधि उरमाहीं लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मद को, ज्योतिस्वरूपी ध्यावो।।
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामांतर के काजै।
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजै।।५०।।
मात-पितादिक सर्व कुटुम सब, नीके शकुन बनावै।
हल्दी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै।।
एक ग्राम जाने के कारण, करें शुभाशुभ सारे।
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे।।५१।।
सब कुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावै सारे।
ये अपशकुन करै सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारै।।
अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्मध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो, मोहतनों दुख हानो।।५२।।

होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो।
जब परगति को करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो।।
मोहजाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों निश्चय उर धारो।।५३।।

(दोहा)

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, 'सूरचन्द' शिवथान।।
पंच उभय नव एक नभ, सम्बत् सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय।।५४।।

श्री सिद्धचक्र माहात्म्य

श्री सिद्धचक्र गुणगान करो मन आन भाव से प्राणी,
कर सिद्धों की अगवानी।।टेक।।
सिद्धों का सुमरन करने से, उनके अनुशीलन चिन्तन से,
प्रकटै शुद्धात्मप्रकाश, महा सुखदानी ऽ ऽ ऽ
पाओगे शिव रजधानी ।।श्री सिद्धचक्र. ।।१।।
श्रीपाल तत्त्वश्रद्धानी थे, वे स्व-पर भेदविज्ञानी थे,
निज-देह-नेह को त्याग, भक्ति उर आनी ऽ ऽ ऽ
हो गई पाप की हानि ।।श्री सिद्धचक्र. ।।२।।
मैना भी आतमज्ञानी थी, जिनशासन की श्रद्धानी थी,
अशुभभाव से बचने को, जिनवर की पूजन ठानी ऽ ऽ ऽ
कर जिनवर की अगवानी।।श्री सिद्धचक्र. ।।३।।
भव-भोग छोड़ योगीश भये, श्रीपाल ध्यान धरि मोक्ष गये,
दूजे भव मैना पावे शिव रजधानी ऽ ऽ ऽ
केवल रह गयी कहानी ।।श्री सिद्धचक्र. ।।४।।
प्रभु दर्शन-अर्चन-वन्दन से, मिटता है मोह-तिमिर मन से,
निज शुद्ध-स्वरूप समझने का, अवसर मिलता भवि प्राणी ऽ ऽ ऽ
पाते निज निधि विसरानी।।श्री सिद्धचक्र. ।।५।।
भक्ति से उर हर्षाया है, उत्सव युत पाठ रचाया है,
जब हरष हिये न समाया, तो फिर नृत्य करन की ठानी ऽ ऽ ऽ
जिनवर भक्ति सुखदानी ।।श्री सिद्धचक्र. ।।६।।
सब सिद्धचक्र का जाप जपो, उन ही का मन में ध्यान धरो,
नहिं रहे पाप की मन में नाम निशानी ऽ ऽ ऽ
बन जाओ शिवपथ गामी।।श्री सिद्धचक्र. ।।७।।
जो भक्ति करे मन-वच-तन से, वह छूट जाये भव-बंधन से,
भविजन! भज लो भगवान, भगति उर आनी ऽ ऽ ऽ
मिट जैहै दुखद कहानी ।।श्री सिद्धचक्र. ।।८।।

बारह भावना

(पं. जयचन्दजी छाबड़ा कृत)

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्यदृष्टि आपा लखो, परजय नय करि गौन।।१।।
शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनौ दोय।
मोह-उदय जिय के वृथा, आन कल्पना होय।।२।।
पर द्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फल गति चार में, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध।।३।।
परमारथ तैं आत्मा, एक रूप ही जोय।
कर्म निमित्त विकल्प घने, तिन नासे शिव होय।।४।।
अपने-अपने सत्त्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय।।५।।
निर्मल अपनी आत्मा, देह अपावन गेह।
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह।।६।।
आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय-दृष्टि निहार।
सब विभाव परिणाममय, आस्रवभाव विडार।।७।।
निजस्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि।
समिति गुप्ति संजम धरम, धरै पाप की हानि।।८।।
संवरमय है आत्मा, पूर्व कर्म झड़ जाय।
निजस्वरूप को पाय कर, लोक शिखर तिष्ठाय।।९।।
लोकस्वरूप विचारि कें, आतम रूप निहारि।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि।।१०।।
बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं।
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं।।११।।
दर्श-ज्ञानमय चेतना, आतम धर्म बखानि।
दया-क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि।।१२।।

बारह भावना

(पं. भूधरदासजी कृत)

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।।१।।
दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखन हार।।२।।
दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।३।।
आप अकेलो अवतरे, मरे अकेलो होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।।४।।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय।
घर संपति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय।।५।।
दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह।।६।।
मोह-नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्मचोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं।।७।।
सत्‌गुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमै।
तब कछु बनै उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं।।८।।
ज्ञान-दीप तप तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर।।
पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार।।९।।
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान।।१०।।
धन कन कंचन राजसुख, सबहिं सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।।११।।
जाँचे सुर तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचै बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन।।१२।।

तत्त्वार्थसूत्रम् (मोक्षशास्त्रम्)

(आचार्य उमास्वामी द्वारा विरचित)

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ।।

त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं नव-पद-सहितं जीव-षट्काय-लेश्याः
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदाः ।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन-महितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः ।।१ ।।

सिद्धे जयप्पसिद्धे, चउविहाराहणाफलं पत्ते ।
वंदित्ता अरहंते, वोच्छं आराहणा कमसो ।।२ ।।

उज्झोवणमुज्झवणं णिव्वाहणं साहणं च णिच्छरणं ।
दंसणणाणचरित्तं तवाणमाराहणा भणिया ।।३ ।।

प्रथम अध्याय

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ।।१ ।। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।।२ ।। तन्निसर्गादधिगमाद्वा ।।३ ।। जीवाजीवास्रवबन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम् ।।४ ।। नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ।।५ ।। प्रमाणनयैरधिगमः ।।६ ।। निर्देशस्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थितिविधा-नतः ।।७ ।। सत्संख्याक्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्पबहुत्वैश्च ।।८ ।। मति-श्रुतावधिमनःपर्यय केवलानि ज्ञानम् ।।९ ।। तत्प्रमाणे ।।१० ।। आद्ये परोक्षम् ।।११ ।। प्रत्यक्षमन्यत् ।।१२ ।। मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ।।१३ ।। तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।।१४ ।। अवग्रहेहावाय-धारणाः ।।१५ ।। बहु-बहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्त-ध्रुवाणां सेतराणाम् ।।१६ ।। अर्थस्य ।।१७ ।। व्यञ्जनस्यावग्रहः ।।१८ ।। न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ।।१९ ।। श्रुतं मति-पूर्वं द्व्यनेक-द्वादश-भेदम् ।।२० ।। भव प्रत्ययोऽवधिर्देव नारकाणाम् ।।२१ ।। क्षयोपशम-निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ।।२२ ।। ऋजु-विपुलमती मनःपर्ययः ।।२३ ।। विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यांतद्विशेषः ।।२४ ।। विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधि-मनः-पर्यययोः ।।२५ ।। मति-

श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व पर्यायेषु ।।२६ ।। रूपिष्ववधेः ।।२७ ।। तदनन्त-भागे मनःपर्ययस्य ।।२८ ।। सर्व-द्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ।।२९ ।। एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ।।३० ।। मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च ।।३१ ।। सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ।।३२ ।। नैगम-संग्रहव्यवहारर्जु-सूत्र-शब्द-समभिरुढैवंभूता नयाः ।।३३ ।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ।।१ ।।

द्वितीय अध्याय

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-पारिणामिकौ च ।।१ ।। द्वि-नवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ।।२ ।। सम्यक्त्व-चारित्रे ।।३ ।। ज्ञानदर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च ।।४ ।। ज्ञानाज्ञानदर्शन-लब्धयश्चतुस्त्रित्रि-पञ्च-भेदाः सम्यक्त्वचारित्र-संयमासंयमाश्च ।।५ ।। गति-कषाय-लिंग-मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्ध-लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्यैकैकैकैक-षड्भेदाः ।।६ ।। जीवभव्याभव्यत्वानि च ।।७ ।। उपयोगो लक्षणम् ।।८ ।। स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः ।।९ ।। संसारिणो मुक्ताश्च ।।१० ।। समनस्काऽमनस्काः ।।११ ।। संसारिणस्त्रस-स्थावराः ।।१२ ।। पृथिव्यप्तेजो वायु-वनस्पतयः स्थावराः ।।१३ ।। द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ।।१४ ।। पञ्चेन्द्रियाणि ।।१५ ।। द्विविधानि ।।१६ ।। निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ।।१७ ।। लब्ध्युपयोगो भावेन्द्रियम् ।।१८ ।। स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि ।।१९ ।। स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दा-स्तदर्थाः ।।२० ।। श्रुतमनिन्द्रियस्य ।।२१ ।। वनस्पत्यन्तानामेकम् ।।२२ ।। कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ।।२३ ।। संज्ञिनः समनस्काः ।।२४ ।। विग्रह-गतौ कर्म-योगः ।।२५ ।। अनुश्रेणिः गतिः ।।२६ ।। अविग्रहा जीवस्य ।।२७ ।। विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ।।२८ ।। एकसमयाऽविग्रहा ।।२९ ।। एकं द्वौ त्रीन्वानाहरकः ।।३० ।। सम्मूर्च्छन-गर्भोपपादा जन्म ।।३१ ।। सचित-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैक-शस्तद्योनयः ।।३२ ।। जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ।।३३ ।। देव-

नारकाणामुपपादः ।।३४।। शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ।।३५।। औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि ।।३६।। परं परं सूक्ष्मम् ।।३७।। प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ।।३८।। अनन्तगुणे परे ।।३९।। अप्रतीघाते ।।४०।। अनादिसम्बन्धे च ।।४१।। सर्वस्य ।।४२।। तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ।।४३।। निरुपभोगमन्त्यम् ।।४४।। गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ।।४५।। औपपादिकं वैक्रियिकम् ।।४६।। लब्धि-प्रत्ययं च ।।४७।। तैजसमपि ।।४८।। शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ।।४९।। नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ।।५०।। न देवाः ।।५१।। शेषास्त्रिवेदाः ।।५२।। औपपादिक-चरमोत्तम-देहाऽसंख्येय-वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ।।५३।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

तृतीय अध्याय

रत्न-शर्करा-बालुका-पंक-धूम-तमो-महातमः-प्रभा-भूमयो घनाम्बुवाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ।।१।। तासु त्रिंशत्पञ्चविंशति-पंचदशदश-त्रि-पञ्चोनैक-नरक-शतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ।।२।। नारका नित्याऽशुभतर-लेश्या-परिणामदेह-वेदना-विक्रियाः ।।३।। परस्परोदीरित-दुःखाः ।।४।। संक्लिष्टासुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ।।५।। तेष्वेक-त्रि-सप्तदश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ।।६।। जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप-समुद्राः ।।७।। द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व-परिक्षेपिणो वलयाकृतयः ।।८।। तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजन-शतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ।।९।। भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ।।१०।। तद्विभाजिनःपूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वताः ।।११।। हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत-हेममयाः ।।१२।। मणि-विचित्र-पार्श्वा उपरिमूले च तुल्य-विस्ताराः ।।१३।। पद्म-महापद्म-तिगिंच्छ-केशरि-महापुण्डरीक-

पुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ।।१४।। प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ।।१५।। दश-योजनावगाहः ।।१६।। तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ।।१७।। तद्द्विगुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ।।१८।। तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः ।।१९।। गंगा-सिन्धुरोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता-सीता-सीतोदा-नारी-नरकान्तासुवर्ण-रूप्यकूला-रक्ता-रक्तोदाः सरितस्तन्म-ध्यगाः ।।२०।। द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ।।२१।। शेषास्त्वपरगाः ।।२२।। चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता गंगा-सिन्ध्वादयो नद्यः ।।२३।। भरतः षड्विंशति-पंचयोजनशत-विस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा-योजनस्य ।।२४।। तद्द्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ताः ।।२५।। उत्तरा दक्षिण-तुल्याः ।।२६।। भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ।।२७।। ताभ्यामपरा-भूमयोऽवस्थिताः ।।२८।। एकद्वित्रिपल्योपम-स्थितयो हैमवतक-हारिवर्षक-दैवकुरवकाः ।।२९।। तथोत्तराः ।।३०।। विदेहेषु संख्येय-कालाः ।।३१।। भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत-भागः ।।३२।। द्विर्धातकीखण्डे ।।३३।। पुष्करार्द्धे च ।।३४।। प्राङ्मानुषोत्तरा-न्मनुष्याः ।।३५।। आर्या म्लेच्छाश्च ।।३६।। भरतैरावत-विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ।।३७।। नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ।।३८।। तिर्यग्योनिजानां च ।।३९।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

चतुर्थ अध्याय

देवाश्चतुर्णिकायाः ।।१।। आदितस्त्रिषु पीतान्त-लेश्याः ।।२।। दशाष्ट-पंच-द्वादश-विकल्पाः कल्पोपन्न-पर्यन्ताः ।।३।। इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिका-श्चैकशः ।।४।। त्रायस्त्रिंशल्लोकपाल-वर्ज्या व्यन्तर-ज्योतिष्काः ।।५।।

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।।६।। काय प्रवीचारा आ ऐशानात्।।७।। शेषाः स्पर्श-रूप-शब्दमनःप्रवीचाराः ।।८।। परेऽप्रवीचाराः ।।९।। भवनवासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सुपर्णाग्नि-वात-स्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमाराः ।।१०।। व्यन्तराः किन्नर-किंपुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूतपिशाचाः ।।११।। ज्योतिष्काः सूर्यचन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्रप्रकीर्णक-तारकाश्च ।।१२।। मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृ-लोके।।१३।। तत्कृतः काल-विभागः ।।१४।। बहिरवस्थिताः ।।१५।। वैमानिकाः ।।१६।। कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ।।१७।। उपर्युपरि ।।१८।। सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरलान्तव-कापिष्ठशुक्रमहाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानत-प्राणत-योरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त-जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ।।१९।। स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्याविशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः ।।२०।। गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ।।२१।। पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रि-शेषेषु ।।२२।। प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः।।२३।। ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः ।।२४।। सारस्वतादित्य-वह्न्यरुण-गर्दतोयतुषिता-व्याबाधारिष्टाश्च ।।२५।। विजयादिषु द्वि-चरमाः ।।२६।। औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ।।२७।। स्थितिरसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्ध-हीन-मिताः ।।२८।। सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके।।२९।। सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त ।।३०।। त्रि-सप्त-नवैकादश-त्रयोदश-पंचदशभिरधिकानि तु ।।३१।। आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च।।३२।। अपरापल्योपममधिकम्।।३३।। परतः परतःपूर्वा पूर्वानन्तराः ।।३४।। नारकाणां च द्वितीयादिषु।।३५।। दश-वर्ष-सहस्राणि प्रथमायाम्।।३६।। भवनेषु च ।।३७।। व्यन्तराणां च।।३८।। परा पल्योपममधिकम्।।३९।। ज्योतिष्काणां च।।४०।। तदष्ट-भागोऽपरा।।४१।। लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्।।४२।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

पंचम अध्याय

अजीवकाया धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः ।।१ ।। द्रव्याणि ।।२ ।। जीवाश्च ।।३ ।। नित्यावस्थितान्यरूपाणि ।।४ ।। रूपिणः पुद्गला ।।५ ।। आ आकाशादेकद्रव्याणि ।।६ ।। निष्क्रियाणि च ।।७ ।। असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ।।८ ।। आकाशस्यानन्ताः ।।९ ।। संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ।।१० ।। नाणोः ।।११ ।। लोकाकाशेऽवगाहः ।।१२ ।। धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ।।१३ ।। एकप्रदेशादिषुभाज्यः पुद्गलानाम् ।।१४ ।। असंख्येय-भागादिषु जीवानाम् ।।१५ ।। प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ।।१६ ।। गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ।।१७ ।। आकाशस्यावगाहः ।।१८ ।। शरीर-वाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ।।१९ ।। सुखदुःख-जीवित-मरणोपग्रहाश्च ।।२० ।। परस्परोपग्रहो जीवनाम् ।।२१ ।। वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वे च कालस्य ।।२२ ।। स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः-पुद्गलाः ।।२३ ।। शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ।।२४ ।। अणवः स्कन्धाश्च ।।२५ ।। भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ।।२६ ।। भेदादणुः ।।२७ ।। भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः ।।२८ ।। सद्द्रव्य-लक्षणम् ।।२९ ।। उत्पादव्ययध्रौव्य-युक्तं सत् ।।३० ।। तद्भावाव्ययं नित्यम् ।।३१ ।। अर्पितानर्पितसिद्धेः ।।३२ ।। स्निग्धरुक्षत्वाद्बन्धः ।।३३ ।। न जघन्य-गुणानाम् ।।३४ ।। गुण-साम्ये सदृशानाम् ।।३५ ।। द्व्यधिकादि-गुणानां तु ।।३६ ।। बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ।।३७ ।। गुण-पर्ययवद्-द्रव्यम् ।।३८ ।। कालश्च ।।३९ ।। सोऽनन्तसमयः ।।४० ।। द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ।।४१ ।। तद्भावः परिणामः ।।४२ ।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ।।५ ।।

षष्ठ अध्याय

काय-वाङ् मनःकर्म योगः ।।१ ।। स आस्रवः ।।२।। शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ।।३ ।। सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ।।४ ।। इन्द्रिय-कषायाव्रत-क्रियाः पञ्चचतुः पञ्च-पञ्चविंशति-संख्याः पूर्वस्य भेदाः ।।५ ।। तीव्र-मन्द-ज्ञाता-ज्ञातभावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्त

द्विशेषः ।।६ ।। अधिकरणं जीवाजीवाः ।।७।। आद्यं संरम्भ–समारम्भारम्भ–योग–कृत–कारितानुमत–कषाय–विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ।।८ ।। निर्वर्तना–निक्षेप–संयोग–निसर्गा द्वि–चतुर्द्वि–त्रि–भेदाः परम् ।।९ ।। तत्प्रदोषनिह्नव–मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ।।१० ।। दुःख–शोक–तापाक्रन्दन–वध–परिदेवनान्यात्म–परोभय–स्थानान्यसद्वेद्यस्य ।।११ ।। भूत–व्रत्यनुकम्पा–दान सरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ।।१२ ।। केवलिश्रुतसंघ–धर्म–देवावर्णवादो दर्शन–मोहस्य ।।१३ ।। कषायोदयात्तीव्र–परिणामश्चारित्रमोहस्य ।।१४ ।। बह्वारम्भ–परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ।।१५ ।। माया तैर्यग्योनस्य ।।१६ ।। अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ।।१७ ।। स्वभाव–मार्दवं च ।।१८ ।। निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ।।१९ ।। सरागसंयमसंयमासंयमा कामनिर्जराबाल–तपांसि देवस्य ।।२० ।। सम्यक्त्वं च ।।२१ ।। योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ।।२२ ।। तद्विपरीतं शुभस्य ।।२३ ।। दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसीसाधु–समाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्य बहुश्रुत–प्रवचनभक्तिरावश्यका–परिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ।।२४ ।। परात्मनिन्दा–प्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।।२५ ।। तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ।।२६ ।। विघ्नकरणमन्तरायस्य ।।२७ ।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ।।६ ।।

सप्तम अध्याय

हिंसानृतस्तेयाब्रह्म–परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।।१ ।। देशसर्वतोऽणु–महती ।।२ ।। तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ।।३ ।। वाङ्मनोगुप्तीर्यादान–निक्षेपण–समित्यालोकितपानभोजनानि पंच ।।४ ।। क्रोध–लोभ–भीरुत्व–हास्य–प्रत्याख्यानान्यनुवीचि भाषणं च पञ्च ।।५ ।। शून्यागार–विमोचितावास–परोपरोधाकरण–भैक्ष्यशुद्धिसद्धधर्माविसंवादाः पञ्च ।।६ ।। स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीर–

संस्कार-त्यागाः पञ्च ।।७।। मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष-वर्जनानि पंच ।।८।। हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ।।९।। दुःखमेव वा ।।१०।। मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्व-गुणाधिकक्लिश्यमाना-विनेयेषु ।।११।। जगत्काय-स्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम् ।।१२।। प्रमत्तयोगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा ।।१३।। असदभिधानमनृतम् ।।१४।। अदत्तादानं स्तेयम् ।।१५।। मैथुनमब्रह्म ।।१६।। मूर्च्छा परिग्रहः ।।१७।। निःशल्यो व्रती ।।१८।। अगार्यनगारश्च ।।१९।। अणुव्रतोऽगारी ।।२०।। दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिक-प्रोषधोपवासोपभोग-परिभोग-परिमाणातिथि-संविभाग-व्रत-संपन्नश्च ।।२१।। मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ।।२२।। शंका-कांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ।।२३।। व्रत-शीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ।।२४।। बन्ध-वधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ।।२५।। मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेख-क्रियान्यासापहार-साकारमन्त्रभेदाः ।।२६।। स्तेन-प्रयोग-तदाहृतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपक-व्यवहाराः ।।२७।। परविवाहकरणेत्वरिका परिगृहीतापरिगृहीता-गमनानंगक्रीडा-कामतीव्राभिनिवेशाः ।।२८।। क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्ण-धनधान्य-दासीदास-कुप्यप्रमाणातिक्रमाः ।।२९।। ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि ।।३०।। आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्द-रूपानुपात-पुद्गलक्षेपाः ।।३१।। कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्या-धिकरणोप-भोगपरिभोगानर्थक्यानि ।।३२।। योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनु-पस्थानानि ।।३३।। अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितो त्सर्गादान-संस्तरोपक्रमणा-नादरस्मृत्यनुपस्थानानि ।।३४।। सचित्त-सम्बन्ध-संमिश्राभिषवदुः-पक्वाहाराः ।।३५।। सचित्तनिक्षेपापिधान-पर-व्यपदेश-मात्सर्य्यकालाति-क्रमाः ।।३६।। जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध-निदानानि ।।३७।। अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ।।३८।। विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः ।।३९।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अष्टम अध्याय

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ।।१ ।। सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ।।२ ।। प्रकृति-स्थित्यनुभाग-प्रदेशास्तद्विधयः ।।३ ।। आद्यो ज्ञानदर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ।।४ ।। पञ्च-नवद्व्यष्टाविंशति-चतुर्द्विचत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा यथाक्रमम् ।।५ ।। मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानाम् ।।६ ।। चक्षुरचक्षुरवधि-केवलानां निद्रा-निदानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च ।।७ ।। सदसद्वेद्ये ।।८ ।। दर्शन-चारित्र-मोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रि-द्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषायकषायौ हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुन्नपुंसक वेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः ।।९ ।। नारक-तैर्यग्योनमानुष-दैवानि ।।१० ।। गति-जाति-शरीरांगोपांग-निर्माणबन्धन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघात-परघातातपोद्योतोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय-यशःकीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ।।११ ।। उच्चैर्नीचैश्च ।।१२ ।। दान-लाभभोगोपभोग-वीर्याणाम् ।।१३ ।। आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम-कोटिकोट्यः परा स्थितिः ।।१४ ।। सप्ततिर्मोहनीयस्य ।।१५ ।। विंशतिर्नाम-गोत्रयोः ।।१६ ।। त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ।।१७ ।। अपरा द्वादश-मुहूर्ता वेदनीयस्य ।।१८ ।। नामगोत्रयोरष्टौ ।।१९ ।। शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ।।२० ।। विपाकोऽनुभवः ।।२१ ।। स यथानाम ।।२२ ।। ततश्च निर्जरा ।।२३ ।। नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-विशेषात् सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्त-प्रदेशाः ।।२४ ।। सद्वेद्य-शुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम् ।।२५ ।। अतोऽन्यत्पापम् ।।२६ ।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ।।८ ।।

नवम अध्याय

आस्रव-निरोधः संवरः ।।१।। स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रैः ।।२।। तपसा निर्जरा च ।।३।। सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ।।४।। ईर्या-भाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ।।५।। उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तप स्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ।।६।। अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ।।७।। मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ।।८।। क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्याक्रोशवधयाचनालाभरोग-तृणस्पर्श-मलसत्कार-पुरस्कारप्रज्ञाज्ञानाऽदर्शनानि ।।९।। सूक्ष्मसाम्पराय-छद्मस्थवीतराग-योश्चतुर्दश ।।१०।। एकादश जिने ।।११।। बादरसाम्पराये सर्वे ।।१२।। ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ।।१३।। दर्शनमोहान्तराय योरदर्शनालाभौ ।।१४।। चारित्रमोहे नाग्न्यारति-स्त्री-निषद्याक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्काराः ।।१५।। वेदनीये शेषाः ।।१६।। एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतिः ।।१७।। सामायिक-च्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यातमिति चारित्रम् ।।१८।। अनशनावमौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रस-परित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः ।।१९।। प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ।।२०।। नव-चतुर्दश-पञ्च-द्वि-भेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ।।२१।। आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेद-परिहारोपस्थापनाः ।।२२।। ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ।।२३।। आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्षग्लानगण-कुल-संघ-साधु-मनोज्ञानाम् ।।२४।। वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ।।२५।। बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ।।२६।। उत्तम-संहननस्यैकाग्र-चिन्ता-निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ।।२७।। आर्त्त-रौद्रधर्म्य-शुक्लानि ।।२८।। परे मोक्ष-हेतू ।।२९।। आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः ।।३०।। विपरीतं मनोज्ञस्य ।।३१।। वेदनायाश्च ।।३२।। निदानं

च ।।३३ ।। तदविरतदेशविरत-प्रमत्तसंयतानाम् ।।३४ ।। हिंसानृतस्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः ।।३५ ।। आज्ञापाय-विपाकसंस्थान-विचयाय धर्म्यम् ।।३६ ।। शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ।।३७ ।। परे केवलिनः ।।३८ ।। पृथक्त्वैकत्ववितर्क- सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति व्युपरतक्रियानिवर्तीनि ।।३९ ।। त्र्यैकयोग-काययोगा-योगानाम् ।।४० ।। एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे ।।४१ ।। अवीचारं द्वितीयम् ।।४२ ।। वितर्कः श्रुतम् ।।४३ ।। वीचारोऽर्थ-व्यञ्जनयोग-संक्रान्तिः ।।४४ ।। सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षप कोपशमकोपशान्त-मोहक्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येय-गुणनिर्जराः ।।४५ ।। पुलाक-वकुश-कुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ।।४६ ।। संयम-श्रुत-प्रतिसेवनातीर्थ-लिंग-लेश्योपपाद-स्थानविकल्पतः साध्याः ।।४७ ।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ।।९ ।।

दशम अध्याय

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ।।१ ।। बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः ।।२ ।। औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ।।३ ।। अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ।।४ ।। तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यलोकान्तात् ।।५ ।। पूर्वप्रयोगाद-संगत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ।।६ ।। आविद्धकुलालचक्र-वद्व्यपगतलेपालांबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ।।७ ।। धर्मास्तिकाया-भावात् ।।८ ।। क्षेत्र-काल-गति-लिंग-तीर्थचारित्र-प्रत्येकबुद्ध-बोधित-ज्ञानावगाहनान्तर-संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ।।९ ।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।।१० ।।

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ।।

कोटिशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्ष्याण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्या-मेतद्श्रुतं पंचपदं नमामि ।।१ ।।
अरहंत भासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सव्वं।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाण-महोवयं सिरसा ।।२ ।।
अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसंधिविवर्जितरेफम्।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ।।३ ।।
दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ।।४ ।।
तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं गृद्ध्रपिच्छोपलक्षितम्।
वंदे गणीन्द्रसंजात-मुमास्वामि-मुनीश्वरम् ।।५ ।।
जं सक्कइ तं कीरइ जं पण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं ।।६ ।।
तव यरणं वयधरणं संजमसरणं च जीवदयाकरणम्।
अंते समाहिमरणं चउविह दुक्खं णिवारेई ।।७ ।।

इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम तत्त्वार्थाधिगममोक्षशास्त्रं समाप्तम्।

****

सिद्धों के दरबार में

हमको भी बुलवालो भगवन, सिद्धों के दरबार में ।।टेक ।।
जीवादिक सातों तत्वों की, सच्ची श्रद्धा हो जाये ।।
भेदज्ञान से हमको भी प्रभु, सम्यक्दर्शन हो जाये।
मिथ्यातम के कारण स्वामी, हम डूबे संसार में ।।
हमको भी बुलवालो स्वामी ।।१ ।।

आत्मद्रव्य का ज्ञान करें हम, निज स्वभाव में आ जायें।
रत्नत्रय की नाव बैठकर, मोक्ष महल को पा जायें।
पर्यायों की चकाचौंध से, बहते हैं मझधार में ।।
हमको भी बुलवालो स्वामी ।।२ ।।

भक्ति खण्ड

देवभक्ति

(१)

एक तुम्हीं आधार हो जग में, अय मेरे भगवान।
कि तुम-सा और नहीं बलवान।।
सँभल न पाया गोते खाया, तुम बिन हो हैरान।
कि तुम-सा और नहीं बलवान।।टेक।।
आया समय बड़ा सुखकारी, आतम-बोध कला विस्तारी।
मैं चेतन, तन वस्तु न्यारी, स्वयं चराचर झलकी सारी।।
निज अन्तर में ज्योति ज्ञान की अक्षयनिधि महान।।
कि तुम-सा और नहीं बलवान।।१।।
दुनिया में इक शरण जिनंदा, पाप-पुण्य का बुरा ये फंदा।
मैं शिवभूप रूप सुखकंदा, ज्ञाता-दृष्टा तुम-सा बंदा।।
मुझ कारज के कारण तुम हो, और नहीं मतिमान।।
कि तुम-सा और नहीं बलवान।।२।।
सहज स्वभाव भाव दरशाऊँ, पर परिणति से चित्त हटाऊँ।
पुनि-पुनि जग में जन्म न पाऊँ, सिद्ध समान स्वयं बन जाऊँ।।
चिदानन्द चैतन्य प्रभु का है 'सौभाग्य' प्रधान।।
कि तुम-सा और नहीं बलवान।।३।।

(२)

तिहारे ध्यान की मूरत, अजब छवि को दिखाती है।
विषय की वासना तज कर, निजातम लौ लगाती है।।टेक।।
तेरे दर्शन से हे स्वामी! लखा है रूप मैं मेरा।
तजूँ कब राग तन-धन का, ये सब मेरे विजाती हैं।।१।।

जगत के देव सब देखे, कोई रागी कोई द्वेषी।
किसी के हाथ आयुध है, किसी को नार भाती है।।२।।
जगत के देव हठग्राही, कुनय के पक्षपाती हैं।
तू ही सुनय का है वेत्ता, वचन तेरे अघाती हैं।।३।।
मुझे कुछ चाह नहीं जग की, यही है चाह स्वामी जी।
जपूँ तुम नाम की माला, जो मेरे काम आती है।।४।।
तुम्हारी छवि निरख स्वामी, निजातम लौ लगी मेरे।
यही लौ पार कर देगी, जो भक्तों को सुहाती है।।५।।

(३)

मेरे मन-मन्दिर में आन, पधारो महावीर भगवान।।टेक।।
भगवन तुम आनन्द सरोवर, रूप तुम्हारा महा मनोहर।
निशि-दिन रहे तुम्हारा ध्यान, पधारो महावीर भगवान।।१।।
सुर किन्नर गणधर गुण गाते, योगी तेरा ध्यान लगाते।
गाते सब तेरा यशगान, पधारो महावीर भगवान।।२।।
जो तेरी शरणागत आया, तूने उसको पार लगाया।
तुम हो दयानिधि भगवान, पधारो महावीर भगवान।।३।।
भगत जनों के कष्ट निवारें, आप तरें हमको भी तारें।
कीजे हमको आप समान, पधारो महावीर भगवान।।४।।
आये हैं हम शरण तिहारी, भक्ति हो स्वीकार हमारी।
तुम हो करुणा दयानिधान, पधारो महावीर भगवान।।५।।
रोम-रोम पर तेज तुम्हारा, भू-मण्डल तुमसे उजियारा।
रवि-शशि तुम से ज्योतिर्मान, पधारो महावीर भगवान।।६।।

(४)

निरखो अंग-अंग जिनवर के, जिनसे झलके शान्ति अपार।।टेक।।
चरण-कमल जिनवर कहें, घूमा सब संसार।
पर क्षणभंगुर जगत में, निज आत्मतत्त्व ही सार।।
यातैं पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।१।।

हस्त-युगल जिनवर कहें, पर का कर्ता होय।
ऐसी मिथ्याबुद्धि से ही, भ्रमण चतुरगति होय।।
यातैं पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।२।।
लोचन द्वय जिनवर कहें, देखा सब संसार।
पर दुःखमय गति चतुर में, ध्रुव आत्मतत्त्व ही सार।।
यातैं नाशादृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।३।।
अन्तर्मुख मुद्रा अहो, आत्मतत्त्व दरशाय।
जिनदर्शन कर निजदर्शन पा, सत्गुरु वचन सुहाय।।
यातैं अन्तर्दृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।४।।

(५)

आओ जिन मंदिर में आओ,
श्री जिनवर के दर्शन पाओ।
जिन शासन की महिमा गाओ,
आया-आया रे अवसर आनन्द का।।टेक।।
हे जिनवर तव शरण में, सेवक आया आज।
शिवपुर पथ दरशाय के, दीजे निज पद राज।।
प्रभु अब शुद्धातम बतलाओ,
चहुँगति दुःख से शीघ्र छुड़ाओ।
दिव्य-ध्वनि अमृत बरसाओ।
आया-प्यासा मैं सेवक आनन्द का।।१।।
जिनवर दर्शन कीजिए, आतम दर्शन होय।
मोहमहातम नाशि के, भ्रमण चतुर्गति खोय।।
शुद्धातम को लक्ष्य बनाओ।
निर्मल भेद-ज्ञान प्रकटाओ।
अब विषयों से चित्त हटाओ,
पाओ-पाओ रे मारग निर्वाण का।।२।।

चिदानन्द चैतन्यमय, शुद्धातम को जान।
निज स्वरूप में लीन हो, पाओ केवलज्ञान।।
नव केवल लब्धि प्रकटाओ,
फिर योगों को नष्ट कराओ।
अविनाशी सिद्ध पद को पाओ,
आया-आया रे अवसर आनन्द का।।३।।

(६)

धन्य-धन्य आज घड़ी कैसी सुखकार है।
सिद्धों का दरबार है ये सिद्धों का दरबार है।।टेक।।
खुशियाँ अपार आज हर दिल में छाई हैं।
दर्शन के हेतु देखो जनता अकुलाई है।
चारों ओर देख लो भीड़ बेशुमार है।।१।।
भक्ति से नृत्य-गान कोई है कर रहे।
आतम सुबोध कर पापों से डर रहे।।
पल-पल पुण्य का भरे भण्डार है।।२।।
जय-जय के नाद से गूँजा आकाश है।
छूटेंगे पाप सब निश्चय यह आज है।।
देख लो 'सौभाग्य' खुला आज मुक्ति द्वार है।।३।।

(७)

वीर प्रभु के ये बोल, तेरा प्रभु! तुझ ही में डोले।
तुझ ही में डोले, हाँ तुझ ही में डोले।
मन की तू घुंडी को खोल, खोल-खोल-खोल।
तेरा प्रभु तुझ ही में डोले।।टेक।।
क्यों जाता गिरनार, क्यों जाता काशी,
घट ही में है तेरे, घट-घट का वासी।
अन्तर का कोना टटोल, टोल-टोल-टोल।।१।।

चारों कषायों को तूने है पाला,
आतम प्रभु को जो करती है काला।
इनकी तो संगति को छोड़, छोड़-छोड़-छोड़।।२।।
पर में जो ढूँढा न भगवान पाया,
संसार को ही है तूने बढ़ाया।
देखो निजातम की ओर, ओर-ओर-ओर।।३।।
मस्तों की दुनिया में तू मस्त हो जा,
आतम के रंग में ऐसा तू रँग जा।
आतम को आतम में घोल-घोल-घोल।।४।।
भगवान बनने की ताकत है तुझमें,
तू मान बैठा पुजारी हूँ बस मैं।
ऐसी तू मान्यता को छोड़, छोड़-छोड़-छोड़।।५।।

शास्त्रभक्ति

(१)

हे जिनवाणी माता! तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम।
शिवसुखदानी माता! तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम।।टेक।।
तू वस्तु-स्वरूप बतावे, अरु सकल विरोध मिटावे।
हे स्याद्वाद विख्याता! तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम।।१।।
तू करे ज्ञान का मण्डन, मिथ्यात कुमारग खण्डन।
हे तीन जगत की माता! तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम।।२।।
तू लोकालोक प्रकाशे, चर-अचर पदार्थ विकाशे।
हे विश्वतत्त्व की ज्ञाता तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम।।३।।
शुद्धातम तत्त्व दिखावे, रत्नत्रय पथ प्रकटावे।
निज आनन्द अमृतदाता! तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम।।४।।
हे मात! कृपा अब कीजे, परभाव सकल हर लीजे।
'शिवराम' सदा गुण गाता तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम।।५।।

(२)

जिनवर चरण भक्ति वर गंगा, ताहि भजो भवि नित सुखदानी।
स्याद्वाद हिम-गिरि तैं उपजी, मोक्ष महासागरहि समानी।।टेक।।
ज्ञान-विज्ञान रूप दोऊ ढाये, संयम भाव लहर हित आनी।
धर्मध्यान जहँ भँवर परत है, शम-दम जामें सम-रस पानी।।१।।
जिन-संस्तवन तरंग उठत है, जहाँ नहीं भ्रम-कीच निशानी।
मोह-महागिरि चूर करत है, रत्नत्रय शुध पंथ ढलानी।।२।।
सुर-नर-मुनि-खग आदिक पक्षी, जहाँ रमत निज समरस ठानी।
'मानिक' चित्त निर्मल स्थान करी, फिर नहीं होत मलिन भव प्राणी।।३।।

(३)

जिनवाणी माता रत्नत्रय निधि दीजिये।।टेक।।
मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरण में, काल अनादि घूमे,
सम्यग्दर्शन भयौ न तातैं, दुःख पायो दिन दूने।।१।।
है अभिलाषा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण दे माता।
हम पावैं निजस्वरूप आपनो, क्यों न बनैं गुणज्ञाता।।२।।
जीव अनन्तानन्त पठाये, स्वर्ग-मोक्ष में तूने।
अब बारी है हम जीवन की, होवे कर्म विदूने।।३।।
भव्यजीव हैं पुत्र तुम्हारे, चहुँगति दुःख से हारे।
इनको जिनवर बना शीघ्र अब, दे दे गुण-गण सारे।।४।।
औगुण तो अनेक होत हैं, बालक में ही माता।
पै अब तुम-सी माता पाई, क्यों न बने गुणज्ञाता।।५।।
क्षमा-क्षमा हो सभी हमारे दोष अनन्ते भव के।
शिव का मार्ग बता दो माता, लेहु शरण में अबके।।६।।
जयवन्तो जिनवाणी जग में, मोक्षमार्ग प्रवर्तो।
श्रावक 'जयकुमार' बीनवे, पद दे अजर अमर तो।।७।।

(४)

जिन-बैन सुनत मोरी भूल भगी।।टेक।।
कर्मस्वभाव भाव चेतन को, भिन्न पिछानन सुमति जगी।।१।।
निज अनुभूति सहज ज्ञायकता, सो चिर रुष-तुष-मैल पगी।।२।।
स्याद्वाद धुनि निर्मल जलतैं, विमल भई समभाव लगी।।३।।
संशय-मोह-भरमता विघटी, प्रकटी आतम सोंज सगी।।४।।
'दौल' अपूरव मंगल पायो, शिवसुख लेन होंस उमगी।।५।।

(५)

जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ।।टेक।।
प्रथम देव अरहन्त मनाऊँ, गणधरजी को ध्याऊँ।
कुन्दकुन्द आचार्य हमारे, तिनको शीश नवाऊँ।।१।।
योनि लाख चौरासी माहीं, घोर महादुःख पायो।
ऐसी महिमा सुनकर माता, शरण तुम्हारी आयो।।२।।
जानै थाँको शरणो लीनों, अष्ट कर्म क्षय कीनो।
जनम-मरण मिटा के माता, मोक्ष महापद दीनो।।३।।
ठाड़े श्रावक अरज करत हैं, हे जिनवाणी माता।
द्वादशांग चौदह पूरव का, कर दो हमको ज्ञाता।।४।।

(६)

महिमा है, अगम जिनागम की।।टेक।।
जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूरति आतम की।।१।।
रागादिक दुःख कारन जानैं, त्याग बुद्धि दीनी भ्रम की।।२।।
ज्ञान-ज्योति जागी उर अन्तर, रुचि बाढ़ी पुनि शम-दम की।।३।।
कर्मबंध की भई निरजरा, कारण परमपरा क्रम की।।४।।
'भागचन्द' शिव-लालच लाग्यो, पहुँच नहीं है जहँ जम की।।५।।

(७)

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।।टेक।।

मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को प्रकाशा।
आपा-पराया-भासा, हो भानु के समानी।।१।।
षट् द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भवफन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी।।२।।
रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में।
ठाड़े हैं मोक्ष-मग में, तकरार मोसों ठानी।।३।।
दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे 'सुदर्शन' साता, नहिं जग में तेरी सानी।।४।।

(८)

नित पीज्यो धी धारी, जिनवाणी सुधा-सम जानिके।।टेक।।
वीर मुखारविंदतैं प्रकटी, जन्म-जरा भयटारी।
गौतमादि गुरु-उर घट व्यापी, परम सुरुचि करतारी।।१।।
सलिल समान कलिल मल गंजन, बुधमन रंजन हारी।
भंजन विभ्रम धूलि प्रभंजन, मिथ्या जलद निवारी।।२।।
कल्याणक तरु उपवन धरिनी, तरनी भवजल तारी।
बंधविदारन पैनी छैनी, मुक्ति-नसैनी सारी।।३।।
स्व-परस्वरूप प्रकाशन को यह, भानुकला अविकारी।
मुनिमन कुमुदिनि-मोदन शशिभा, शमसुख सुमन सुवारी।।४।।
जाके सेवत बेवत निजपद, नसत अविद्या सारी।
तीन लोकपति पूजत जाको, जान त्रिजग-हितकारी।।५।।
कोटि जीभ सों महिमा जाकी, कहि न सके पविधारी।[१]
'दौल' अल्पमति केम कहै यह, अधम-उधारन हारी।।६।।

(९)

साँची तो गंगा यह वीतरागवाणी।
अविच्छिन्न धारा निजधर्म की कहानी।।टेक।।

---
१. इन्द्र

जामें अति ही विमल अगाध ज्ञानपानी।
जहाँ नहीं संशयादि पंक की निशानी।।१।।
सप्तभंग जहँ तरंग उछलत सुखदानी।
संतचित मरालवृन्द रमैं नित्य ज्ञानी।।२।।
जाके अवगाहनतैं शुद्ध होय प्राणी।
'भागचन्द' निहचैं घटमाहिं या प्रमानी।।३।।

(१०)

धन्य-धन्य है घड़ी आज की, जिनधुनि श्रवणपरी।
तत्त्वप्रतीत भई अब मेरे, मिथ्यादृष्टि टरी।।टेक।।
जड़ तैं भिन्न लखी चिन्मूरत, चेतन स्वरस भरी।
अहंकार ममकार बुद्धि पुनि, पर में सब परिहरी।।१।।
पाप-पुण्य विधि बन्ध अवस्था, भासी अति दुःखभरी।
वीतराग-विज्ञानभावमय, परनति अति विस्तरी।।२।।
चाह दाह विनसी बरसी पुनि, समता मेघ झरी।
बाढ़ी प्रीति निराकुल पद सों, 'भागचन्द' हमरी।।३।।

(११)

केवलि-कन्ये, वाङ्मय गंगे, जगदम्बे, अघ नाश हमारे।
सत्य-स्वरूपे, मंगलरूपे, मन-मन्दिर में तिष्ठ हमारे।।टेक।।
जम्बूस्वामी गौतम-गणधर, हुए सुधर्मा पुत्र तुम्हारे।
जगतैं स्वयं पार ह्वै करके, दे उपदेश बहुत जन तारे।।१।।
कुन्दकुन्द, अकलंकदेव अरु, विद्यानन्दि आदि मुनि सारे।
तव कुल-कुमुद चन्द्रमा ये शुभ, शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे।।२।।
तूने उत्तम तत्त्व प्रकाशे, जग के भ्रम सब क्षय कर डारे।
तेरी ज्योति निरख लज्जावश, रवि-शशि छिपते नित्य विचारे।।३।।

भव–भय पीड़ित, व्यथित–चित्त जन, जब जो आये शरण तिहारे।
छिन भर में उनके तब तुमने, करुणा करि संकट सब टारे।।४।।
जब तक विषय–कषाय नशै नहीं, कर्म–शत्रु नहिं जाय निवारे।
तब तक 'ज्ञानानन्द' रहै नित, सब जीवन तैं समता धारे।।५।।

(१२)

धन्य–धन्य जिनवाणी माता, शरण तुम्हारी आये।
परमागम का मन्थन करके, शिवपुर पथ पर धाये।।
माता दर्शन तेरा रे! भविक को आनन्द देता है।
हमारी नैया खेता है।।१।।
वस्तु कथंचित् नित्य–अनित्य, अनेकांतमय शोभे।
परद्रव्यों से भिन्न सर्वथा, स्वचतुष्टयमय शोभे।।
ऐसी वस्तु समझने से, चतुर्गति फेरा कटता है।
जगत का फेरा मिटता है।।२।।
नय निश्चय–व्यवहार निरूपण, मोक्षमार्ग का करती।
वीतरागता ही मुक्तिपथ, शुभ व्यवहार उचरती।।
माता! तेरी सेवा से, मुक्ति का मारग खुलता है।
महा मिथ्यातम धुलता है।।३।।
तेरे अंचल में चेतन की, दिव्य चेतना पाते।
तेरी अमृत लोरी क्या है, अनुभव की बरसातें।।
माता! तेरी वर्षा में, निजानन्द झरना झरता है।
अनुपमानन्द उछलता है।।४।।
नव–तत्त्वों में छुपी हुई जो, ज्योति उसे बतलाती।
चिदानन्द ध्रुव ज्ञायक घन का, दर्शन सदा कराती।।
माता! तेरे दर्शन से, निजातम दर्शन होता है।
सम्यग्दर्शन होता है।।५।।

(१३)

धन्य-धन्य वीतराग वाणी, अमर तेरी जग में कहानी।
चिदानंद की राजधानी, अमर तेरी जग में कहानी।।टेक।।
उत्पाद-व्यय अरु ध्रौव्य स्वरूप, वस्तु बखानी सर्वज्ञ भूप।
स्याद्वाद तेरी निशानी, अमर तेरी जग में कहानी।।१।।
नित्य-अनित्य अरु एक-अनेक, वस्तु कथंचित् भेद-अभेद।
अनेकांतरूपा बखानी, अमर तेरी जग में कहानी।।२।।
भाव शुभाशुभ बंधस्वरूप, शुद्ध-चिदानन्दमय मुक्तिरूप।
मारग दिखाती है वाणी, अमर तेरी जग में कहानी।।३।।
चिदानंद चैतन्य आनन्द धाम, ज्ञानस्वभावी निजातम राम।
स्वाश्रय से मुक्ति बखानी, अमर तेरी जग में कहानी।।४।।

(१४)

सुनकर वाणी जिनवर की,
म्हारे हर्ष हिये न समाय जी।।टेक।।
काल अनादि की तपन बुझानी,
निज निधि मिली अथाह जी।।१।।
संशय, भ्रम और विपर्यय नाशा,
सम्यक् बुद्धि उपजाय जी।।२।।
नर-भव सफल भयो अब मेरो,
'बुधजन' भेंटत पाय जी।।३।।

(१५)

मुख ओंकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै।
रचि-रचि आगम उपदेसै भविक जीव संशय निवारै।।
सो सत्यारथ शारदा, तासु भक्ति उर आन।
छंद भुजंगप्रयाततैं, अष्टक कहौं बखान।।

(भुजंगप्रयात)

जिनादेश ज्ञाता जिनेन्द्रा विख्याता, विशुद्धा प्रबुद्धा नमों लोकमाता।
दुराचार-दुर्नैहरा शंकरानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी।।१।।

सुधाधर्म संसाधनी धर्मशाला, सुधाताप निर्नाशिनी मेघमाला।
महामोह विध्वंसिनी मोक्षदानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी।।२।।
अखैवृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा, कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा।
चिदानंद-भूपाल की राजधानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी।।३।।
समाधानरूपा अनूपा अक्षुद्रा, अनेकान्तधा स्याद्वादांक मुद्रा।
त्रिधा सप्तधा द्वादशाङ्गी बखानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी।।४।।
अकोपा अमाना अदंभा अलोभा, श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञान शोभा।
महापावनी भावना भव्य मानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी।।५।।
अतीता अजीता सदा निर्विकारा, विषै वाटिका खंडिनी खड्ग धारा।
पुरापाप विक्षेप कर्त्ता कृपाणी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी।।६।।
अगाधा अबाधा निरध्रा निराशा, अनन्ता अनादीश्वरी कर्मनाशा।
निशंका निरंका चिदंका भवानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी।।७।।
अशोका मुदेका विवेका विधानी, जगज्जन्तुमित्रा विचित्रावसानी।
समस्तावलोका निरस्ता निदानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी।।८।।

जे आगम रुचिधरैं, प्रतीति मन माहिं आनहिं।
अवधारहिंगे पुरुष, समर्थ पद अर्थ आनहिं।।
जे हित हेतु 'बनारसी', देहिं धर्म उपदेश।
ते सब पावहिं परम सुख, तज संसार कलेश।।

(१६)

भ्रात जिनवाणी-सम नहिं आन, जान श्रुतपंचमि पर्व महान।।टेक।।
एकान्तों का नहीं ठिकाना, स्याद्वाद का लखा निशाना।।
मिटता भव-भव का अज्ञान, जान श्रुतपंचमि पर्व महान।।१।।
केवलज्ञानी की यह वाणी, खिरे निरक्षर तदि समझानी।
सुर-नर तिर्यंच सुनते आन, जान श्रुतपंचमि पर्व महान।।२।।
गणधर हृदय विराजी माता, ज्ञानस्वभाव सहज झलकाता।
सुनत चिन्तत हो भेद-ज्ञान, जान श्रुतपंचमि पर्व महान।।३।।

भविजन प्रीति सहित चित धारे, रवि–शशि–सम तम केपरिहारे।
उर घट प्रकटे पूरन आन, जान श्रुत पंचमि पर्व महान।।४।।
मोक्षदायिका है जिनमाता, तुम पूजक सम्यक् निधि पाता।
'नंद' भी अपने आश्रित जान, जान श्रुतपंचमि पर्व महान।।५।।

गुरु भक्ति

(१)

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं।।टेक।।
आप तरैं अरु पर को तारैं, निष्पृही निर्मल हैं।।१।।
तिल तुष मात्र संग नहिं जिनके, ज्ञान–ध्यान गुण बल हैं।।२।।
शांत दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मन्दर तुल्य अचल हैं।।३।।
'भागचन्द' तिनको नित चाहें, ज्यों कमलनि को अलि हैं।।४।।

(२)

धन–धन जैनी साधु जगत के, तत्त्वज्ञान विलासी हो।।टेक।।
दर्शन बोधमई निज मूरति जिनको अपनी भासी हो।
त्यागी अन्य समस्त वस्तु में अहंबुद्धि दुःखदासी हो।।१।।
जिन अशुभोपयोग की परिणति सत्तासहित विनाशी हो।
होय कदाच शुभोपयोग तो तहँ भी रहत उदासी हो।।२।।
छेदत जे अनादि दुःखदायक दुविधि बंध की फाँसी हो।
मोह क्षोभ रहित जिन परिणति विमल मयंक विलासी हो।।३।।
विषय चाह दव दाह बुझावन साम्य सुधारस रासी हो।
'भागचन्द' पद ज्ञानानन्दी साधक सदा हुलासी हो।।४।।

(३)

परम गुरु बरसत ज्ञान झरी।
हरषि–हरषि बहु गरजि–गरजि के मिथ्या तपन हरी।।टेक।।
सरधा भूमि सुहावनि लागी संशय बेल हरी।
भविजन मन सरवर भरि उमड़े समुझि पवन सियरी।।१।।

स्याद्वाद नय बिजली चमके परमत शिखर परी।
चातक मोर साधु श्रावक के हृदय सु भक्ति भरी।।२।।
जप तप परमानन्द बढ्यो है, सुखमय नींव धरी।
'द्यानत' पावन पावस आयो, थिरता शुद्ध करी।।३।।

(४)

वे मुनिवर कब मिली हैं उपगारी।
साधु दिगम्बर, नग्न निरम्बर, संवर भूषण धारी।।टेक।।
कंचन-काँच बराबर जिनके, ज्यों रिपु त्यों हितकारी।
महल-मसान, मरण अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी।।१।।
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी।
शोधत जीव सुवर्ण सदा जे, काय-कारिमा टारी।।२।।
जोरि युगल कर 'भूधर' विनवे, तिन पद ढोक हमारी।
भाग उदय दर्शन जब पाऊँ, ता दिन की बलिहारी।।३।।

(५)

ऐसे मुनिवर देखे वन में, जाके राग-द्वेष नहीं मन में।।टेक।।
ग्रीष्म ऋतु शिखर के ऊपर, मगन रहे ध्यानन में।।१।।
चातुरमास तरुतल ठाड़े, बूँद सहे छिन-छिन में।।२।।
शीत मास दरिया के किनारे, धीर धरें ध्यानन में।।३।।
ऐसे गुरु को मैं नित प्रति ध्याऊँ, देत ढोक चरणन में।।४।।

(६)

परम दिगम्बर मुनिवर देखे, हृदय हर्षित होता है।।
आनन्द उलसित होता है, हो-हो सम्यग्दर्शन होता है।।टेक।।
वास जिनका वन-उपवन में, गिरि-शिखर के नदी तटे।
वास जिनका चित्त गुफा में, आतम आनन्द में रमे।।१।।
कंचन-कामिनि के हो त्यागी, महा तपस्वी ज्ञानी-ध्यानी।
काया की ममता के त्यागी, तीन रतन गुण भण्डारी।।२।।

परम पावन मुनिवरों के, पावन चरणों में नमूँ।
शान्त-मूर्ति सौम्य-मुद्रा, आतम आनन्द में रमूँ।।३।।
चाह नहीं है राज्य की, चाह नहीं है रमणी की।
चाह हृदय में एक यही है, शिव-रमणी को वरने की।।४।।
भेद-ज्ञान की ज्योति जलाकर, शुद्धातम में रमते हैं।
क्षण-क्षण में अन्तर्मुख हो, सिद्धों से बातें करते हैं।।५।।

(७)

संत साधु बन के विचरूँ, वह घड़ी कब आयेगी।
चल पड़ूँ मैं मोक्ष पथ में, वह घड़ी कब आयेगी।।टेक।।
हाथ में पीछी कमण्डलु, ध्यान आतम राम का।
छोड़कर घरबार दीक्षा की घड़ी कब आयेगी।।१।।
आयेगा वैराग्य मुझको, इस दुःखी संसार से।
त्याग दूँगा मोह ममता, वह घड़ी कब आयेगी।।२।।
पाँच समिति तीन गुप्ति, बाईस परिषह भी सहूँ।
भावना बारह जु भाऊँ, वह घड़ी कब आयेगी।।३।।
बाह्य उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चिंतन करूँ।
निर्विकल्प होवे समाधि, वह घड़ी कब आयेगी।।४।।
भव-भ्रमण का नाश होवे, इस दुःखी संसार से।
विचरूँ मैं निज आतमा में, वह घड़ी कब आयेगी।।५।।

(८)

धन्य मुनीश्वर आतम हित में छोड़ दिया परिवार,
कि तुमने छोड़ दिया परिवार।
धन छोड़ा वैभव सब छोड़ा, समझा जगत असार,
कि तुमने छोड़ दिया संसार।।टेक।।

काया की ममता को टारी, करते सहन परीषह भारी।
पंच महाव्रत के हो धारी, तीन रतन के हो भंडारी।।
आत्म स्वरूप में झुलते करते, निज आतम-उद्धार,
कि तुमने छोड़ा सब घर बार।।१।।
राग-द्वेष सब तुमने त्यागे, वैर-विरोध हृदय से भागे।
परमातम के हो अनुरागे, वैरी कर्म पलायन भागे।।
सत् सन्देश सुना भविजन को, करते बेड़ा पार,
कि तुमने छोड़ा सब घर बार।।२।।
होय दिगम्बर वन में विचरते, निश्चल होय ध्यान जब करते।
निजपद के आनंद में झुलते, उपशम रस की धार बरसते।।
मुद्रा सौम्य निरख कर, मस्तक नमता बारम्बार,
कि तुमने छोड़ा सब घर बार।।३।।

(९)

म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर आया, सब मिल दर्शन कर लो,
हाँ, सब मिल दर्शन कर लो।
बार-बार आना मुश्किल है, भाव भक्ति उर भर लो,
हाँ, भाव भक्ति उर भर लो।।टेक।।
हाथ कमंडलु काठ को, पीछी पंख मयूर।
विषय-वास आरम्भ सब, परिग्रह से हैं दूर।।
श्री वीतराग-विज्ञानी का कोई, ज्ञान हिया विच धर लो, हाँ।।१।।
एक बार कर पात्र में, अन्तराय अघ टाल।
अल्प-अशन लें हो खड़े, नीरस-सरस सम्हाल।।
ऐसे मुनि महाव्रत धारी, तिनके चरण पकड़ लो, हाँ।।२।।
चार गति दुःख से टरी, आत्मस्वरूप को ध्याय।
पुण्य-पाप से दूर हो, ज्ञान गुफा में आय।।
'सौभाग्य' तरण-तारण मुनिवर के, तारण चरण पकड़ लो, हाँ।।३।।

(१०)

मैं परम दिगम्बर साधु के गुण गाऊँ गाऊँ रे।
मैं शुध उपयोगी सन्तन को नित ध्याऊँ ध्याऊँ रे।
मैं पंच महाव्रत धारी को शिर नाऊँ नाऊँ रे।।टेक।।
जो बीस आठ गुण धरते, मन-वचन-काय वश करते।
बाईस परीषह जीत जितेन्द्रिय ध्याऊँ ध्याऊँ रे।।१।।
जिन कनक-कामिनी त्यागी, मन ममता त्याग विरागी।
मैं स्वपर भेद-विज्ञानी से सुन पाऊँ पाऊँ रे।।२।।
कुंदकुंद प्रभुजी विचरते, तीर्थंकर-सम आचरते।
ऐसे मुनि मार्ग प्रणेता को, मैं ध्याऊँ ध्याऊँ रे।।३।।
जो हित-मित वचन उचरते, धर्मामृत वर्षा करते।
'सौभाग्य' तरण-तारण पर बलि-बलि जाऊँ जाऊँ रे।।४।।

(११)

नित उठ ध्याऊँ, गुण गाऊँ, परम दिगम्बर साधु।
महाव्रतधारी धारी...धारी महाव्रत धारी।।टेक।।
राग-द्वेष नहिं लेश जिन्हों के मन में है..तन में है।
कनक-कामिनी मोह-काम नहिं तन में है...मन में है।।
परिग्रह रहित निरारम्भी, ज्ञानी वा ध्यानी तपसी।
नमो हितकारी...कारी, नमो हितकारी।।१।।
शीतकाल सरिता के तट पर, जो रहते..जो रहते।
ग्रीष्म ऋतु गिरिराज शिखर चढ़, अघ दहते...अघ दहते।।
तरु-तल रहकर वर्षा में, विचलित न होते लख भय।
वन अँधियारी...भारी, वन अँधियारी।।२।।
कंचन-काँच मसान-महल-सम, जिनके हैं...जिनके हैं।
अरि अपमान मान मित्र-सम, जिनके हैं..जिनके हैं।।
समदर्शी समता धारी, नग्न दिगम्बर मुनिवर।
भव जल तारी...तारी, भव जल तारी।।३।।

ऐसे परम तपोनिधि जहाँ-जहाँ, जाते हैं...जाते हैं।
परम शांति सुख लाभ जीव सब, पाते हैं...पाते हैं।।
भव-भव में सौभाग्य मिले, गुरुपद पूजूँ ध्याऊँ।
वरूँ शिवनारी... नारी, वरूँ शिवनारी।।४।।

(१२)

हे परम दिगम्बर यति, महागुण व्रती, करो निस्तारा।
नहिं तुम बिन हितू हमारा।।
तुम बीस आठ गुणधारी हो, जग जीव मात्र हितकारी हो।
बाईस परीषह जीत धरम रखवारा, नहिं तुम बिन हितू हमारा।।१।।
तुम आतम ज्ञानी ध्यानी हो, प्रभु वीतराग वनवासी हो।
है रत्नत्रय गुण मण्डित हृदय तुम्हारा, नहिं तुम बिन हितू हमारा।।२।।
तुम क्षमा शांति समता सागर, हो विश्व पूज्य नर रत्नाकर।
है हित-मित सद् उपदेश तुम्हारा प्यारा, नहिं तुम बिन हितू हमारा।।३।।
तुम धर्म मूर्ति हो समदर्शी, हो भव्य जीव मन आकर्षी।
है निर्विकार निर्दोष स्वरूप तुम्हारा, नहिं तुम बिन हितू हमारा।।४।।
है यही अवस्था एक सार, जो पहुँचाती है मोक्ष द्वार।
'सौभाग्य' आप-सा बाना होय हमारा, नहिं तुम बिन हितू हमारा।।५।।

(१३)

है परम-दिगम्बर मुद्रा जिनकी, वन-वन करें बसेरा।
मैं उन चरणों का चेरा, हो वन्दन उनको मेरा।।
शाश्वत सुखमय चैतन्य-सदन में, रहता जिनका डेरा।
मैं उन चरणों का चेरा, हो वन्दन उनको मेरा।।टेक।।
जहाँ क्षमा-मार्दव-आर्जव-सत् शुचिता की सौरभ महके।
संयम-तप-त्याग-अकिंचन स्वर परिणति में प्रतिपल चहके।
है ब्रह्मचर्य की गरिमा से, आराध्य बने जो मेरा।।१।।

अन्तर-बाहर द्वादश तप से, जो कर्म-कालिमा दहते।
उपसर्ग परीषह-कृत बाधा, जो साम्य-भाव से सहते।
जो शुद्ध-अतीन्द्रिय आनन्द-रस का, लेते स्वाद घनेरा।।२।।
जो दर्शन-ज्ञान-चरित्र-वीर्य-तप, आचारों के धारी।
जो मन-वच-तन का आलम्बन तज, निज चैतन्य विहारी।।
शाश्वत सुख दर्शन-ज्ञान-चरण में, करते सदा बसेरा।।३।।
नित समता स्तुति वन्दन अरु, स्वाध्याय सदा जो करते।
प्रतिक्रमण और प्रति-आख्यान कर, सब पापों को हरते।।
चैतन्यराज की अनुपम निधियाँ, जिनमें करें बसेरा।।४।।

(१४)

होली खेलें मुनिराज शिखर वन में, रे अकेले वन में, मधुवन में।
मधुवन में आज मची रे होली, मधुवन में।।टेक।।
चैतन्य-गुफा में मुनिवर बसते, अनन्त गुणों में केली करते।
एक ही ध्यान रमायो वन में, मधुवन में।।होली.।।१।।
ध्रुवधाम ध्येय की धूनी लगाई, ध्यान की धधकती अग्नि जलाई।
विभाव का ईंधन जलायें वन में, मधुवन में।।होली.।।२।।
अक्षय घट भरपूर हमारा, अन्दर बहती अमृत धारा।
पतली धार न भाई मन में, मधुवन में।।होली.।।३।।
हमें तो पूर्ण दशा ही चहिये, सादि-अनंत का आनंद लहिये।
निर्मल भावना भाई वन में, मधुवन में।।होली.।।४।।
पिता झलक ज्यों पुत्र में दिखती, जिनेन्द्र झलक मुनिराज चमकती।
श्रेणी माँडी पलक छिन में, मधुवन में।।होली.।।५।।
नेमिनाथ गिरनार पे देखो, शत्रुंजय पर पाण्डव देखो।
केवलज्ञान लियो है छिन में, मधुवन में।।होली.।।६।।
बार-बार वन्दन हम करते, शीश चरण में उनके धरते।
भव से पार लगाये वन में, मधुवन में।।होली.।।७।।

****